'एक' का खेल

सर्वशक्तिमान ईश्वर जो कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्डों का निर्माणकर्ता, पालनकर्ता व संहारकर्ता है, वस्तुतः स्वयं में निराकार है। एक ईश्वर के असंख्य नाम एवं असंख्य रूपों में अनेक **विशेष आकार** हैं, लेकिन ईश्वर का स्वयं में किसी एक नाम व एक रूप में कोई **आकार विशेष** नहीं है। पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित व संहारित प्रपंचमय मायिक सृष्टि साकार है। पंच-महाभूतों पर आधारित इस मायिक प्रपंच में ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट, चमत्कारिक एवं विशेष रूप से परम रहस्यमयी सुकृति **'मानव-देह'** है। ईश्वर ने अपने मानस-पुत्र जीवात्मा को दृष्टा बनाकर इस सम्पूर्ण मायिक प्रपंच का रसास्वादन करने के लिए मानव-देह से नवाज़ा है। कोई भी मानव-देह स्वयं में **विशेष देह** है और युगों-युगान्तरों के भूत, भविष्य एवं वर्तमान सहित समस्त मायिक जगत की मात्र एक प्रतिनिधि है।

निराकार का विज्ञान निराकार की ही तरह शाश्वत् एवं स्थिर है। साकार का विज्ञान देह सहित साकार जगत की तरह परिवर्तनशीलता के कारण बदलता रहता है। देह सहित साकार जगत वस्तुतः निराकार मानसिकतानुसार देह भाव का प्रकाट्य है। मन स्वयं में निराकार है। मानस में समाहित भाव, स्वभाव, संस्कार, मान्यताएँ आदि निराकार होती हैं। सुषुप्ति में देह भाव नहीं होता, इसलिए मेरे लिए देह नहीं होती और तदनुसार जगत भी नहीं होता। लेकिन सुषुप्ति में **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं में जीव-भाववश आच्छादित रहता हूँ, इसलिए सुषुप्ति जड़तामयी स्थिति है। निद्रा से उठते ही निराकार मानस के विविध भाव उस समय की मानसिकता के

अनुसार देह सहित जगत बनकर प्रकट होते हैं। माया की विशिष्ट विधा के अनुसार देह भाव का देह सहित जगत बनकर प्रकट होना, बिजली के स्विच के ऑन होते ही बल्ब सहित कक्ष के प्रकाशित होने की तरह है। देह सहित जगत साथ-साथ, स्वतः तथा तद्नुसार प्रकट होता है। किसी भी विशेष देह की अवचेतना में आते ही देह सहित जगत प्रकट हो जाता है।

चेतन **'मैं'** (जीवात्मा) ने अवचेतना में जीव-सृष्टि में उतर कर एक विशेष देह के साथ तद्रूपता कर ली, जिसके कारण समय-समय पर विशिष्ट मायिक चैनल में उस समय का जगत पृथक् भासने लगा। यह ईश्वर की माया है, जिसमें अनेक देहें, आकाश, पाताल, समुद्र, नभचर, जलचर, थलचर, जीव-जन्तु, कीट-पतंगे, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, बादल, बिजली, हवा और न जाने क्या-क्या है। देह भाव अति सूक्ष्म है और स्वयं में अदृश्य एवं निराकार है। जब प्रकट होता है, तो देह सहित जगत में ईश्वर की माया के विविध एवं बहुरंगी साकार रूपों में दृश्यमान होता है।

अनेकानेक समस्त आकारों का निर्माण, संचालन, प्रतिपादन, नियमन, नियन्त्रण, संहार और जो कुछ भी होता है, सब की बागडोर '**एक'** निराकार के हाथ में है। **'एक'** ऊंकार, **'एक'** ममकार, **'एक'** अहंकार में **'ऊंकार'** सृष्टि का मूल है। एक (जीव) का एक अहंकार (मैं देह हूँ) और एक ममकार (देह मेरी है) सम्पूर्ण सृष्टियों में व्याप्त है। **एक 'मानव देह'** एक अहंकार (मैं देह हूँ) और एक ममकार (देह मेरी है) के कारण असंख्य देहों का संगम एवं समूह है, परन्तु सबका निराकार 'एक' ही है। सर्वोपरि 'एक' **'हुंकार'** है, जो **'एक'** अहंकार और **'एक'** ममकार को हमेशा के लिए निगल जाती है तथा 'एक' निराकार परमात्मा में समाहित कर देती है। 'अहं ब्रह्मस्मि' यह 'हुंकार' एक अदम्य, अज्ञात दैवी शक्ति है, जो जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिला देती है। 'हुंकार' सद्गुरु का आह्वान एवं प्रेरणा है, जो जन्मों-जन्मान्तरों के **'अहंकार'** और **'ममकार'** को लीलकर 'एक' निराकार की अनुभूति करा देती है—'सोऽहम्' परमात्मा परिपूर्ण है, जीवात्मा परिपूर्ण है और मानव-देह भी स्वयं में परिपूर्ण है। एक जीवात्मा, जीवकोटि में मानव-

देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में तद्रूपता **सी** के कारण अनेक होकर बंट गया और अधूरा सा हो गया। जीवात्मा की तद्स्वरूपता परमात्मा के साथ है ही। एक जीवात्मा से एक (परमात्मा) में समाहित होने की बजाय इसकी जीव सृष्टि में परमात्मा से विमुखता **सी** हुई और यह देह के साथ तद्रूप सा हो गया। वह देह जो न थी, न रहेगी। देह का न रहना, क्षणिक, क्षण भंगुर एवं नश्वर होना देह का अधूरापन नहीं, देह का सद् है। देह मिली है और जाएगी ही। कैसे भी जा सकती है, रुग्ण होकर, वृद्ध होकर या अति वृद्ध होकर भी जा सकती है। पूर्णस्वस्थ, बाल्यावस्था, युवावस्था अथवा किसी भी समय, स्थान, स्थिति में जा सकती है। दृष्टा (जीवात्मा) कोई साकार देह नहीं बल्कि निराकार, अदृश्य एवं शाश्वत् परमात्म-तत्त्व है, जिसका प्रकाट्य **'मैं'** शब्द में होता है।

जीवात्मा को देह के सान्निध्य में पहले देहाधिपत्य हुआ, कि 'यह देह मेरी है' और फिर देहाध्यास हो गया, कि 'मैं देह हूँ।' साधारणतः जिन पदार्थों और साकार जगत की जिन विभिन्न विधाओं को हम अपना मानते और कहते हैं, उन्हें अपना स्वरूप नहीं समझते। 'देह मेरी है' की तरह हम घर, धन, सम्पत्ति, वाहन आदि को भी अपना कहते हैं। घर मेरा है, धन मेरा है, प्रौपर्टी मेरी है, कार मेरी है। घर में पालतू पशुओं घोड़ा, गधा, गाय, ऊँट, बकरी, भेड़, बैल आदि को भी अपना कहते हैं, लेकिन कोई नहीं कहता, कि मैं घोड़ा, मैं गाय आदि आदि हूँ। परन्तु देह मेरी है, कहते-कहते 'मैं देह हूँ', कहना और मानना मेरा (जीव का) स्वभाव बन गया। इसका उत्तर मैं यही देता हूँ, कि ऐसा तो सभी कहते हैं।

'मैं' ने कभी विचार नहीं किया, कि सभी और अनेक तब हैं, जब मैं देह-रूप में एक हूँ। मैं एक (देह) हूँ, तो ही अनेक (विभिन्न नाम रूपात्मक जगत) हैं और अनेक (अन्य एक) में से कोई भी है, तो मैं एक तो हूँ ही। इसका अर्थ है, मैं देह-रूप में एक कभी नहीं होता। मैं देह-रूप में **'एक में अनेक'** होता हूँ। यदि मैं एक हूँ तो अनेक भी **'मैं'** ही हूँ। अनेक लोग, देह मेरी है और मैं देह हूँ, कहते हैं, इसलिए एक **'मैं'** (जीवात्मा) भी जीव कोटि

में ऐसा ही कहने और मानने लगा। इस प्रकार मैं एक होते हुए भी अनेकों की दलदल में फंस गया।

इस रहस्य को देह के रहते जानना, मानना और सद्गुरु कृपा से अनुभूतिगम्य करना ही मानव-देह व मानव-जीवन का लक्ष्य है। **'मैं'** जीव रूप में एक देह हूँ, तो अनेक अर्थात् अन्य एक (देह रूप में अनेक नामरूपी जगत) है। अन्य भी एक ही है, क्योंकि जीव है तो एक है। मैं देह रूप में एक नहीं हूँ, तो अन्य+1 (जगत सहित देह) = अनेक भी नहीं हैं। मुझे स्वयं को समझने व जानने के लिए अनेक = अन्य+एक अर्थात् अपनी व्यष्टिगत समष्टि को जानना होगा। एक ही अनेक हुआ है। एक से अनेक नहीं हुआ बल्कि एक ही अनेक हुआ है। मानव-देह जीव की व्यष्टिगत समष्टि है। सबमें **'मैं'** समान है। मैं अनेक की दलदल में इसलिए फँसा, क्योंकि मैंने जीव सृष्टि व नाम-रूप की अवचेतना में अनेक को स्वयं से भिन्न मान लिया, कि **'मैं'** एक देह रूप में पृथक् हूँ और शेष जगत मुझसे पृथक् है।

देहत्व या जीवत्व एक भाव है। जीव है तो एक ही है, क्योंकि उस एक के होने से अनेक होते हैं। अनेक होंगे तो वह **एक** होगा ही। एक विशेष देह धारण करने पर भी **'मैं'** एक ही है। असद् का सद् में मन्थन होने से वह **सदासद्** (सद्+असद्) हो जाता है। सबकी **'मैं'** एक ही है, क्योंकि **'मैं'** (जीवात्मा) एक ही है। मानव-देहें अनेक हैं। नाम-रूप सबके अलग-अलग हैं। सबके गुण, धर्म, कर्म-कर्तव्य, परिवार देश-काल, लिंग, पद, ज्ञान-अज्ञान, डिग्रियाँ, आर्थिक, सामाजिक स्तर, मान्यताएँ, धारणाएँ, स्वभाव एवं संस्कार बिल्कुल पृथक्-पृथक् हैं। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि में विभिन्नताओं का आधार **'जीवात्मा'** की जीव कोटि में किसी भी एक विशेष मानव-देह के साथ अवचेतना में नाम-रूप की मान्यता है। **'मैं'** किसी भी एक **विशेष देह** के नाम-रूप की अवचेतना में हूँ, तभी जगत है और यही विशेष **'देह'** त्रिकाल सृष्टि के सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों को स्वयं में समाहित किए हुए है।

एक विशेष देह के साथ तद्रूपता जीव भाव में मेरी धारणा बन गई, क्योंकि जन्मों-जन्मान्तरों में **'मैं'** (जीव) ने देह का पीछा नहीं छोड़ा। कोई

भी विशेष देह, जिसमें मैंने अध्यास किया था, वह और उस पर आधारित समय-समय का जगत जीव भाव की इस तद्रूपता में तद्विपरीत हो गया। ईश्वर प्रदत्त मेरे (जीवात्मा के) समस्त गुण एवं विभूतियाँ उस सुकृति (मानव-देह) में विपरीततावश अवगुण एवं विकृतियाँ बन गए। **मैं** और **देह** दोनों विकृत एवं असद् से हो गए। अपने (जीवात्मा) और देह के सद् प्रकाट्य के लिए मुझे देह का अन्तिम सद् अधिगृहीत करना होगा। भस्मी प्रत्येक विशेष देह का निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य है। देह साकार एवं दृश्यमान है और भस्मी निराकार व दृश्यमान है। साकार देहें असंख्य एवं भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन भस्मी एक ही एवं एक जैसी है। मुझे जीवन-काल में देह के रहते अपनी देह की भस्मी के साथ तद्रूपता करनी होगी, ताकि मेरा देहाध्यास ही भस्माध्यास में रूपान्तरित हो जाए। तभी मुझे देह के रहते अपने विशुद्ध, सर्वव्यापक, देहातीत एवं निराकार जीवात्मा स्वरूप की अनुभूति होगी।

प्रत्येक विशेष देह का अन्तान्त भस्मी है, लेकिन भस्मी होकर वह अन्तान्त किसी देह विशेष का नहीं होता। किसी विशेष देह की भस्मी, किसी भी देह की है, जो आज तक मृतक हो चुकी हैं, वर्तमान में जीवित हैं अथवा भविष्य में पैदा होंगी। उनमें से किसी का भी नाम ले लो, भस्मी किसी की भी हो सकती है। भस्मी यदि बोल सकती हो तो यही कहेगी, कि आज तक युगों-युगान्तरों में जो भी मर चुके हैं, मैं किसी का भी **वर्तमान** हूँ। जो जीवित हैं, उन सबका मैं निश्चित, परिलक्षित व दर्शित **भविष्य** हूँ और जो आगे जन्म लेंगे, उनका मैं **अतीत** हूँ। भस्मी त्रिकाल में व्याप्त एवं स्वयं में अकाल है।

माया ईश्वर की है और ईश्वर की माया है। ईश्वर एक है और उसकी माया भी एक है। देहें अनेक होते हुए भी उन सबकी **'भस्मी एक'** है। अब विशेष देह असंख्य हैं, थीं और होंगी। लेकिन उनकी भस्मी एक है। ईश्वर **एक,** माया **एक** और भस्मी **एक**। जीव को देह धारणा में अपनी विशेष देह के मूल्य, महत्त्व, सर्वोत्कृष्टता एवं चमत्कारिता का आकलन जीवन काल में, देह के रहते उसकी भस्मी की अवधारणा के बाद ही होगा। एक विशेष देह

नाम-रूप की अवचेतना में समस्त साकार जगत का आधार है। विशेष देह होगी तभी जगत होगा और जगत होगा तो विशेष देह अवश्य होगी। **'भस्मी'** उसका अस्तित्व है। **'भस्मी'** पंच-महाभूतों की देह सहित जगत में छिपा वह तत्त्वातीत तत्त्व है, जो शिव की अतिशक्ति **'विरक्ति'** का प्रतिनिधि है। देहकाल के दौरान यह अदृश्य रहता है और संहार के बाद जब देह अग्निदहन द्वारा पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, तब यह तत्त्वातीत तत्त्व प्रकट व दृश्यमान होता है। सद्‌गुरु-कृपा से जीते जी जीवन-काल में देह के रहते **'मैं'** अपनी देह के इस देहातीत तत्त्व (भस्मी) के साथ अध्यास करते हुए अवधारणा करता हूँ, कि मैं भस्मी हूँ, तो मुझे अपनी विषम तथा असम देह की विशेषता एवं असमान्तरता की अनुभूति होने लगती है।

एक (विशेष मानव-देह), अनेक (अन्य+**एक**), एकान्त (**एक**+अन्त), **एक** (जीवात्मा) और **एक** (परमात्मा) पाँच शब्द हैं। इन पाँचों में **'एक'** Common है। यह **'एक'** परमात्मा है। सारा खेल एक परमात्मा का अपने अभिन्न एवं एकमात्र मानस पुत्र जीवात्मा के लिए ही है और एक माया है। एक परमात्मा और एक जीवात्मा में अद्वैत में द्वैत सा है और परमात्मा तथा जीवात्मा **'एक'** प्रभु की दो ब्रह्ममय विधाएँ हैं। परमात्मा और जीवात्मा दोनों निराकार हैं और माया साकार है। माया में एक और अनेक हैं। पंच-महाभूतों पर आधारित साकार चराचर मायिक जगत प्रपंच है। माया **'एक-अनेक'** होते हुए भी **'एक'** ही है। यहाँ **'एक'** में ही देह सहित जगत **अद्वैत** में **द्वैत सा** है। एक और अनेक में यह माया अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अकाट्य एवं अबाध रूप से सतत् परिवर्तनशील होते हुए भी परम विशिष्ट, अति सारगर्भित, उद्देश्यपूर्ण, संक्षिप्त एवं गुणात्मक है। सद्‌गुरु-कृपा से एक (जीव) **'एकान्त'** के अवलम्बन से एक (परमात्मा) के सम्मुख हो सकता है।

एक-अनेक में यह मायिक प्रपंच स्वयं में इतना सशक्त है, कि इसमें परमात्मा एवं जीवात्मा की तरह अद्वैत में द्वैत सा आभासित होता है। एक-अनेक (अन्य+एक) **'एक'** मानव देह में है। एक-अनेक परस्पर विरोधी नहीं अपितु परिपूरक हैं। माया का प्रभाव विध्वंसक एवं घातक तब हुआ, जब

एक-अनेक विरोधी हो गए। जबकि अनेक, **'एक'** का विस्तार है और **'एक'** ही **'अनेकों'** का संघनित स्वरूप एवं प्रत्यक्ष प्रतिनिधि है। अनेक में **एक भी** है और अनेकों का **आधार एक ही** है। एक सहित अनेक का अस्तित्व परमात्मा है। **समस्त मायिक प्रपंच जो एक-अनेक में है, उसका आधार** नाम-रूप की अवचेतना में **एक भाव है, कि मैं देह हूँ।** एक व अनेक (अन्य एक) में अद्वैत होते हुए भी जीवभाव की अवचेतना में विकराल द्वैत आभासित होता है। इस द्वैत में अद्वैत की अनुभूति **'एकान्त'** में प्रविष्टि के लिए प्रथम एवं एकमात्र आवश्यकता है अन्यथा जीव इस मायिक प्रपंच के वास्तविक लक्ष्य एवं अर्थ के विषय में सोच भी नहीं सकता।

हम मानव, युगों-युगान्तरों से विभिन्न जन्मों-जन्मान्तरों में मायिक प्रपंच के तथाकथित एवं काल्पनिक द्वैत में उद्देश्यहीन भटक रहे हैं। यह भटकन दिशाहीन, निरर्थ एवं व्यर्थ ही नहीं अनर्थकारी है, क्योंकि **'मैं'** (जीव) ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से अपने परम ऐश्वर्यवान, सौन्दर्यवान, ज्ञानवान, ख्यातिवान, सशक्त एवं वैरागवान निराकार विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप को साकार जगत की विविध विधाओं में पाना चाहता हूँ, जोकि असम्भव है। भौतिक साकार जगत भी स्वयं में विशिष्ट, सोद्देश्य, गुणात्मक, सारगर्भित और संक्षिप्त है, जिसकी विशिष्टता, उद्देश्य, गुण, सार एवं संक्षिप्तता हम नहीं जानते। इस भटकन में भटकन के जितने आयाम एवं स्रोत हैं, उनमें जीव **जीवन में** अपनी चाहतों के विषय में विवेक बुद्धि से विचार करे और निर्णय करे कि मैं कुल **जीवन से** क्या चाहता हूँ?

मानव को ईश्वर ने कल्पना-शक्ति दी है, उसका हम सदुपयोग करें। जो भी हम जीवन में अधिकतम प्राप्त करना या बनना चाहते हैं, चरम सीमा तक उसके होने या बनने की कल्पना कर लें अथवा जिनके पास है और जो बने हुए हैं, उन्हें देख लें, तो पाएंगे कि अधिकतर हमारी चाहतें व एषणाएँ निरर्थक एवं अनर्थक हैं। माया में प्रकट अथवा अप्रकट हर प्रपंचमय विधा का हम सदुपयोग कर सकते हैं, क्योंकि उसका अस्तित्व मात्र **'सद्'** ही है। अध्यात्म में प्रविष्टि के लिए यह सकारात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है। प्रकट

प्रपंच में निर्माण, पालन, विलय में हर गति **'सद्'** से है। मानव-देह भी प्रपंच में है। यह आज तक **'एक'** रूप में रही नहीं और आगे रहेगी नहीं। सम्बन्ध, मान्यताएँ, धारणाएँ, विचार, भाव, स्थान, स्थितियाँ आदि समयानुसार बदलती रहती हैं, जो मेरे हाथ में नहीं हैं। इस सबका अस्तित्व **सद्** है, जो कभी नहीं बदलता।

देहातीत क्षेत्र, देह का है, इसका मापदण्ड देह है। प्रपंच में असीमता की भी सीमाएँ हैं। ईश्वर स्वयं में असीम एवं प्रपंचातीत है। अतः प्रपंच **में** होते हुए प्रपंच **का** उल्लंघन करके ही पंच परमेश्वर (प्रपंच के स्वामी ईश्वर) तक पहुँचा जा सकता है। नहीं तो मेरी साकार में **आसक्ति** बनी रहेगी। **'विरक्ति' के लिए प्रपंच का उल्लंघन चाहिए।** इसलिए ईश्वर ने जीवात्मा को प्रपंच की सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह से नवाज़ा। मानव-देह ही इस प्रपंच की ऐसी संघनित संरचना है, जिसे पाकर जीवात्मा इस प्रपंच (मानव-देह) द्वारा प्रपंच में प्रकट मायिक सृष्टि (एक-अनेक) से परे हो सकता है।

पंच-महाभूतों की माया में **'एक-अनेक' जीव-सृष्टि** है। पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित और विलय होती यह मायिक सृष्टि प्रपंच है। निर्माण, पालन, संहार पंच-महाभूतों में होती गति के कारण हैं। हर गति के लिए शक्ति चाहिए। शिव की अतिशक्ति **'विरक्ति'** और उससे प्रस्फुटित पंच-प्राणों की महाशक्ति में स्वतः, स्वान्तः सुखाय और स्वयं में हुई क्रीड़ा के एवज़ में प्रकट पंच-महाभूत परम सशक्त होते हुए भी स्वयं में सहज जड़ हैं। इसलिए इनकी दशानन (अविरल, अकाट्य, अबाध, निरन्तर, चिरन्तन, सारगर्भित, विशिष्ट, सूक्ष्म व संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) गतियाँ शिव की अतिशक्ति विरक्ति के कारण हैं। यह विरक्ति ही पंच-महाभूतों के कण-कण में समानतया अदृश्य भस्मी के रूप में समाहित है। अविरलता, अकाट्यता, अबाधता, निरन्तरता एवं चिरन्तनता इस गति के अंग हैं तथा सारगर्भितता, विशिष्टता, सूक्ष्मता अथवा संक्षिप्तता, गुणात्मकता एवं उद्देश्यात्मकता गति के गुण या विशेषण हैं। साथ ही गति अदृश्य है।

मायिक प्रपंच में गति है और गति की प्राणशक्ति विरक्ति है।

निर्माण, पालन और संहार मायिक प्रपंच की तीन विधाएँ हैं। पंच-महाभूतों का संगम जीवात्मा को दी गई मानव-देह इसी प्रपंच की सर्वोत्कृष्ट, परम रहस्यमय और विलक्षण सुकृति है। जीव को मानव-देह की धारणा युगों-युगान्तरों से है। मैं देह के नाम-रूप की अवचेतना में जीव कोटि में आता हूँ, तो देह से सम्बद्ध देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, जाति, पद, प्रतिष्ठा, समाज, आदि सब कुछ मेरी अनेकता का प्रतीक है, जो साथ होता ही है। नाम ही मेरी जाति, धर्म व समूह का द्योतक है। हमारी छोटी से छोटी विधा भी स्वयं में अनेकों के साथ होती है। किसी से नाम व परिचय पूछा जाए, कि मैं मि. गुप्ता अर्थात् गुप्ता समूह में से वह एक है। मैं देहरादून में रहता हूँ, अर्थात् देहरादून में रहने वाले अनेकों में से मैं एक हूँ। मेरा धर्म हिन्दू है अर्थात् अनेक हिन्दुओं में से **'मैं'** एक हूँ। साकार में हमारा हर परिचय व पहचान अनेकों को साथ लिए हुए होता है। हमारा पद, शिक्षा, आर्थिक स्तर, स्पर्धाएँ, प्रतिस्पर्धाएँ, वैर, वैमनस्य, प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष सब कुछ अनेक से है। इस प्रकार गुणों-अवगुणों का वर्णन अनेक की दलदल में दलित होने का द्योतक है। जब भी हमने अपना परिचय देह के नाम, जाति, धर्म, कर्म, खानदान, प्रतिस्पर्धाओं, प्रतिष्ठाओं, मैडल और तमगों आदि से दिया, तो हम दलदल में फंसते, फिसलते एवं धंसते हैं। दल का अर्थ है समूह और यह दल हमें दलित कर देता है। 'कुल' समूह का द्योतक है। **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं में निराकुल हूँ।

जीव कोटि में चेतन जीवात्मा आच्छादित हो गया और दो विकल्प हुए—जड़ता अथवा अवचेतना। इससे एक जीव जन्मों-जन्मान्तरों में और आच्छादित होता रहता है। देह रूप में अपनी पहचान से मैं स्वयं की पहचान खो बैठा। इस तथाकथित (देह रूप में) एक से मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता। मेरा स्वरूप जाति, धर्म, देश, काल, कर्म, समाज, पद, प्रतिष्ठा, सम्बन्ध एवं कुल सबसे परे, बिल्कुल निराकुल है। अपने विशुद्ध स्वरूप में जीवात्मा किसी भी वस्तु के लिए न आकुल है, न व्याकुल है। पहले **'मैं'** (जीव) ने देह

के साथ धारणा की, कि **'मैं'** देह हूँ' फिर इस धारणा को हृष्ट, पुष्ट और तुष्ट करने के लिए देह से सम्बन्धित अनेकानेक धारणाओं की दलदल में फंसता ही चला गया।

परमात्मा और जीवात्मा की तरह मायिक प्रपंच देह (एक) एवं जगत (अनेक) में भी अद्वैत है। जब माया की सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह के साथ मुझे (जीव को) धारणा हो गई, कि मैं यह देह हूँ, तो माया में एक-अनेक का द्वैत हो गया। मैं कर्ता बनते हुए जीवन में अनेक आसक्तियों, एषणाओं, वासनाओं, प्रेम, वैर, वैमनस्य, मोह, राग-द्वेष में उलझ गया। नाम-रूप की एक देह की अवचेतना में आते ही प्रकट अथवा अप्रकट अनेक से **'मैं'** (जीव) आच्छादित होता रहता हूँ। मुझे देह की धारणा की दलदल से निकलना होगा। यदि मैं देह हूँ, तो उस समय का प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट जगत भी **'मैं'** हूँ। इसकी अनुभूति एकान्त में ही होगी। एक और अनेक में तो पशु, अन्य प्राणी जगत एवं तथाकथित मानवदेहधारी सभी मिलते हैं। मिलते हैं और बिछुड़ जाते हैं। जीवात्मा वास्तव में परमात्मा से कभी बिछुड़ा ही नहीं। मात्र भ्रम हो गया था इसलिए बिछुड़ा **सा** था। जीवात्मा और परमात्मा का मिलन 'एकान्त' का मिलन है। इसके लिए दो मार्ग हैं, या तो अपना सब कुछ अपने सद्‌गुरु या इष्ट को मान लो, कि मेरा धर्म, कर्म, जाति, पद, प्रतिष्ठा, सम्बन्ध सब कुछ तू है। जो तू करवाए वही मेरा कृत्य है। दूसरा मार्ग 'समाधि' का है, एकान्त का है।

माया पृथक् है और माया में उलझन पृथक् है। माया वास्तव में ईश्वर के निराकार अस्तित्व का साकार प्रकाट्य है। समस्त माया **एक ईश्वर** की है। युगों-युगान्तरों के सम्पूर्ण महाब्रह्माण्डों रूपी चराचर मायिक प्रपंच का संघनित रूप, प्रतिनिधि एवं साकार प्रकाट्य का प्रत्यक्ष आधार मानव-देह है। पंच महाभूतों के अति विलक्षण संगम इस मानव देह में स्वयं में सहज जड़ पंच-महाभूतों की समस्त दशानन गतियों का सूक्ष्म प्रतिनिधित्व है। ईश्वर स्वयं में निराकार एवं अदृश्य है। देह सहित दृश्यमान समस्त साकार मायिक प्रपंच **ईश्वरास्तित्व** की पुष्टि के लिए है। ईश्वर स्वयं भी कभी-कभी

लीला करने के लिए अथवा अपने भक्तों की आर्तनाद पर इस मायिक प्रपंच में उतर आता है और कोई भी देह धारण कर लेता है। इसी प्रकार माया, ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि है और इस मायिक प्रपंच का सद्त्व अथवा अस्तित्व परमात्मा है।

कहीं दूर उठता हुआ धुआँ वहाँ अर्ध ज्वलित अथवा सुलगती हुई अग्नि की पुष्टि है। धुआँ वास्तव में किसी भी रूप में अग्नि की उपस्थिति का प्रतीक है। धुआँ है तो अग्नि अवश्य है। जब अग्नि पूर्णतः प्रचण्ड हो जाएगी, तो धुआँ समाप्त हो जाएगा। जीव की मानव-देह के साथ तद्रूपता ने उस चेतना रूपी अग्नि को अवचेतना रूपी धुएँ से आच्छादित कर दिया। माया में लिप्तता से धुआँ और बढ़ गया। मैंने अग्नि को प्रज्ज्वलित किया नहीं और धुआँ बढ़ता गया। धुएँ और अग्नि में अद्वैत में द्वैत है। धुआँ तब होगा जब अग्नि होगी और अग्नि प्रचण्ड होगी तो धुआँ समाप्त हो जाएगा। अपना स्वरूप पाने के लिए जब जीव की मानव-देह में अप्रकट जिज्ञासा रूपी अग्नि, प्रकट अग्नि (सद्गुरु) के सतसंग द्वारा प्रज्ज्वलित हो जाएगी, तो जीव के लिए एक और अनेक (अन्य+एक) में द्वैत रूपी धुआँ समाप्त हो जाएगा। जिज्ञासा रूपी अप्रकट अग्नि प्रचण्ड होकर जीव को अनेक से एक में सिमटा कर एकान्त में प्रविष्टि दिला देती है। इसलिए पहले अनेक से एक में सिमटना है।

मेरे भीतर दो तरह के अनेक हैं, प्रकट अनेक और अप्रकट अनेक। जो अधिक दमघोटू धुआँ है, वह अप्रकट अनेक का है। जो प्रकट अनेक है, वह बड़ी समस्या नहीं है, क्योंकि उससे परे होकर, नेत्र व कान मूंद कर **'मैं'** (जीव) अकेला अपनी देह के साथ बैठ सकता हूँ। एक **'मैं'** जितना आच्छादित होऊँगा, उतने अनेक होंगे और जितने अनेक होंगे, उतना अधिक मैं आच्छादित होऊँगा। धुआँ जितना ज्यादा होगा, उतनी ही अग्नि आच्छादित होगी और आच्छादित अग्नि धुएँ को और बढ़ाएगी। अत्यधिक धुएँ का आच्छादन अति शीघ्र प्रज्ज्वलित भी हो सकता है। कभी हवन में बहुत धुआँ उठ रहा हो तो ज़रा सी चिंगारी दिखाने से लपटें प्रचण्ड हो जाती

हैं। अनेक देहों में विस्तार धुआँ है और अनेक का एक में अद्वैत अग्नि का प्रज्ज्वलन है। यह मायिक प्रपंच भी विशिष्ट और सोद्देश्य है। मैं भटक रहा हूँ तो उसकी व्यर्थता, निरर्थता और अनर्थता सबमें **'अर्थ'** छिपा हुआ है।

गहन एवं प्रगाढ़ निद्रा में कभी कोई स्वप्न नहीं आता। हर स्वप्न अर्ध सुषुप्तावस्था में आता है। यह पूर्ण जड़ता की स्थिति नहीं है। **जड़तामयी अवचेतना** में स्वप्न आते हैं। स्वप्न-सृष्टि का कोई सिर-पैर नहीं होता। मैं कुछ ही क्षणों में कहीं का कहीं पहुँच जाता हूँ। स्वप्न मेरी Disturbed Consciousness है। जब मैं निद्रा से उठकर तथाकथित जाग्रत होता हूँ, तो यह सृष्टि **अवचेतना** में है। स्वप्न Disturbed Consciousness में आता है और इस तथाकथित जागृति के स्वप्न की अवचेतना या Consciousness मुझे Disturb करती है।

एक और अनेक (अन्य+एक) में Common Factor **'एक'** है। एक के बिना न एक है, न अनेक हैं। इसलिए एक से एक है और एक से अनेक हैं। एक परमात्मा है, तो एक जीवात्मा है। एक जीवात्मा देह रूप में एक जीव है, तो अन्य+एक = अनेक (विभिन्न नाम-रूपों में देह सहित समय-समय का जगत) भी हैं। साकार देह रूप में एक और अनेक का अस्तित्व, सदत्व या तत्व एक (परमात्मा व जीवात्मा का अद्वैत) है। यह अद्वैत है, तो देह रूप में एक व अनेक का अद्वैत में द्वैत सा है, जो युगों-युगान्तरों में कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की असंख्य साकार सृष्टियों में शिव-शक्ति क्रीड़ा के आनन्द का प्राकट्य है।

मैं इसे पुनः स्पष्ट करूँगा, कृपया एकाग्र करें। जीवात्मा एक है, परमात्मा एक है और मानव देह भी एक है। एक परमात्मा व एक जीवात्मा, निराकार अद्वैत में द्वैत सा है, तो देह रूप में साकार में एक व अनेक का द्वैत सा है। अनेक का सन्धि-विच्छेद करें, तो हुआ अन्य+एक। अब एक और अनेक में **'एक'** Common Factor हुआ। इस 'एक' (Common Factor) को ब्रैकिट से बाहर रखें–एक (अन्य+1) जो बाहर एक शब्द है, वह परमात्मा और जीवात्मा का अद्वैत है; जो ब्रैकिट में अंक 1 है, वह 1 (देह)+अन्य (जगत) रूपों

में द्वैत सा है। अद्वैत एक है तो द्वैत में 1 + अन्य है :–

''तू है, तो मैं हूँ,
तू, तू है, मैं, मैं हूँ,
तू एक है, मैं एक हूँ,
तू एक शब्द है, मैं एक अंक हूँ।''

समस्त वेदों, शास्त्रों, पुराणों, उपनिषदों, गीता, आदि ग्रन्थों का सार हम इष्ट-कृपा से आप समस्त परम जिज्ञासुओं के सम्मुख रख रहे हैं। परमात्मा एक शब्द-ब्रह्म है। जीवात्मा को **'1+ अन्य'** अंकों (देहों) में भ्रम हो गया। शब्द ब्रह्म **'मात्र'** एक **'ॐ'** है और अंक मात्राएँ (अनेक नाम-रूपों में त्रिगुणमयी माया) अनेक में हैं। समस्त अंकों अथवा मात्राओं को एक मात्र (लिंग) ने स्वयं में समेटा हुआ है। यही अद्वैत में द्वैत सा है। परमात्मा पूर्ण है, जीवात्मा पूर्ण है और देह भी पूर्ण है।

परमात्मा एक और जीवात्मा एक में अन्तर यह है, कि जीवात्मा का अस्तित्व परमात्मा है। परमात्मा एक है तो जीवात्मा है। मैं (जीव) एक देह के रूप में एक हूँ तो अन्य है। जीवात्मा स्वयं में भ्रमित नहीं है, यदि अपने अस्तित्व शब्द ब्रह्म (एक) को अपने साथ रख लें। क्योंकि उसकी 1 देह व अन्य देहों का द्वैत उसके और परमात्मा के अद्वैत की वजह से है। इस प्रकार तीन महा तत्त्व हैं। **'एक'** शब्द-ब्रह्म है, **'1'** (जीव) अंक, शब्द का प्रतिनिधि है और अन्य (उस पर आधारित समय-समय का देह सहित जगत) सहायक हैं। 1 और अन्य देखने में दो से लगते हैं, लेकिन हैं एक ही और इनका अस्तित्व एक (शब्द-ब्रह्म) है। **'एक'** शब्द के बिना **'1'** और अन्य अर्थहीन हैं और **'एक'** लगा दिया जाए, तो दोनों सार्थक हैं।

पारब्रह्म परमेश्वर एक (1 ॐ) है। एक से कहानी या खेल नहीं हो सकता। किसी भी खेल में कम से कम दो का होना आवश्यक है। एक प्रारम्भ है, एक अन्त है। मध्य में वह 1+अन्य = अनेक (देह सहित जगत) हो जाता है। यह जीवात्मा है। देह कभी एक नहीं होती। एक देह एक सी लगती है, लेकिन स्वयं में **'एक'** कभी नहीं होती। एक देह की उत्पत्ति के

लिए कम से कम दो चाहिए। उन दो को अनेकों ने मिलकर मिलाया, इसलिए देह रूप में एक के पैदा होने से पहले वह अनेकों से हुआ। अनेकों से एक हुआ और अनेकों में जीव **'एक'** ही होता है। जब मैं एक जीवात्मा होता हूँ, उस समय मैं अनेक (1+अन्य) नहीं होता। न 1 देह, न अन्य, वह मेरी एकान्त की स्थिति है। वह विशुद्ध जीवात्मा है, जो एक ही है। जब जीवात्मा एक देह (जीव) रूप में प्रकट **सा** होता है, तो अनेक भी होते हैं। ये अनेक चाहे प्रकट रूप से हों, चाहे अप्रकट रूप से हों। परमात्मा एवं जीवात्मा का अटूट, अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अनादि, अनन्त **'युग्म'** द्वैत में अद्वैत एवं अद्वैत में द्वैत है। मिलन 'एकान्त' में ही होता है। 'जहाँ कोई एक स्वयं को एक या अनेक से पहचान रहा है, वह एकान्त की मानसिक स्थिति से कोसों दूर है। वह स्वयं अपनी पहचान खो चुका है। एक' स्वयं अपना अनुसरण करते-करते एकान्त में पहुँच जाता है, कि मैं एक कौन हूँ ? **'कोऽहम्'** यदि मैं कोई देह हूँ, तो कौन सी देह हूँ।

शव, शिव नहीं है। शिव की ओर जाने के लिए **'शव'** भूमिका अथवा सोपान है। **'शान'** शब्द को यदि उल्टा कर दें तो नशा बन जाएगा। जीव को झूठी शान ईश्वर से **'परे'** सा करते हुए परेशान करती है और उसे **'नशा'** करने पर विवश कर देती है। यह नशा (चाहे वह देह व देहों के लिए पदार्थों की शान का नशा हो अथवा शराब आदि मादक द्रव्यों के सेवन का हो) उसे अनर्थ की अनन्त गर्त व दलदल में पतित कर देता है। शिव का वास शमशान में है। **शमशान वह मानसिक स्थिति है जहाँ शान का शमन हो जाता है।** देह रूप में जीव हर शान को शमशान का स्पर्श दे दे, तो शान स्वयं में नशा बन कर उसे शिवत्व का **आभास** कराते हुए परमात्मा के सम्मुख कर देगी। शवार्थ लिया गया श्वास (शव+आस) ही श्वास है अन्यथा सांस तो पशु पक्षी भी लेते हैं। श्वास अर्थात् शव आस, जिस श्वास में शव आस पूरी हो जाए अर्थात् मानसिक स्थिति शववत् हो जाए; वही मेरी शाश्वतता की ओर गति है। किसी में कोई हस्तक्षेप न हो। धर्म होते हुए भी धर्मातीत, सम्बन्ध होते हुए भी सम्बन्धातीत, कर्म होते हुए भी कर्मातीत, देश होते हुए भी देशातीत, काल

होते हुए भी कालातीत स्थिति ही शवत्व की मानसिक स्थिति है। शव का गन्तव्य लक्ष्य मात्र शमशान है, जहाँ झूठी शान का शमन हो जाए। शिवत्व की अनुभूति के लिए **'शवत्व'** की सिद्धि परमावश्यक है।

जिज्ञासुओं की लिप्सा एवं पिपासा शवत्व पर समाप्त नहीं होती। शवत्व की अनुभूति, आत्मानभूति है और भस्मी तत्त्व की अनुभूति ब्रह्मानुभूति है। जैसे **'मैं'** तत्त्व सब देहों का एक ही था, है और रहेगा, उसी प्रकार 'भस्मी' तत्त्वातीत तत्त्व है जो पंच-महाभूतों की समस्त देहों का एक ही था, है और रहेगा। सद्गुरु कहता है, कि ''जैसे तेरी एक **'मैं'** सबकी है, उसी प्रकार तेरी देह की भस्मी भी सबकी एक ही है। **'मैं'** activating factor और 'भस्मी' inactivating factor है। दोनों 'एक' के **'एक'** ही हैं, थे और रहेंगे। एक है तो एक है, एक था तो एक था, एक होगा तो एक होगा। एक से एक है। एक का एक है। एक के लिए एक है। एक है, तो एक है। जिस प्रकार परमात्मा एक है, तो जीवात्मा एक है। परमात्मा स्रष्टा है और जीवात्मा दृष्टा है। शंकर का सद् चिन्तन **'भस्मी-चिन्तन'** है। भस्मी देह का देहान्तान्त अथवा शवान्त है इसलिए एकान्तान्त है। वहाँ देहों (एक-अनेक) की धारणा ही समाप्त हो जाती है। देह की प्रतीति अथवा एक देह भाव, इस स्थिति में भस्मी भाव में रूपान्तरित हो जाता है। जहाँ **'एक'** का अन्त हो जाए और इस अन्त का भी अन्त हो जाए, उस **'एकान्तान्त'** (एकान्त+अन्त) स्थित्यातीत स्थिति में परमात्मा और जीवात्मा में भेद नहीं रहता।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(6 मई, 30, 31, अक्टूबर,
7 नवम्बर 2008 एवं 11 से 29 मार्च 2009)

देह-कर्म

एक नितान्त अशिक्षित मानव भी होश सम्भालने पर यदि विचार करे तो जान जाता है, कि मेरी देह के भीतर मेरी अपनी बुद्धि की पहुँच से परे असंख्य एवं गणनातीत क्रियाएँ सतत्, अविरल एवं अबाध रूप से चलती रहती हैं। इन भीतरी क्रियाओं के सुचारू एवं संतुलित क्रियान्वयन से ही मेरे जीवन और मेरी बाह्य क्रियाओं का अस्तित्व है। उन भीतरी क्रियाओं, कार्य-प्रणालियों, अवयवों तथा अंगों की गतिविधियों पर मेरा अपना कोई अधिकार नहीं है। ये कब प्रारम्भ हुईं, कब तक व किस प्रकार चलेंगी और कब बंद होंगी, न मैं जानता हूँ और न जान सकता हूँ। देह की भीतरी क्रियाओं का संचालन एवं सम्पादन किसी अदृश्य शक्ति के निर्देशन में होता है। इन पर कभी भी किसी का कोई नियन्त्रण हो ही नहीं सकता। उस अदृश्य सत्ता को चाहे ईश्वर कह दें, प्रकृति कह दें अथवा किसी भी महाशक्ति या पीर-पैगम्बर का नाम दे दें, ये क्रियाएँ उसीके हाथ में हैं।

एक अबोध शिशु को अपनी देह के भीतर होती इन क्रियाओं का ज्ञान नहीं होता और यह भी ज्ञान नहीं होता, कि इनका सुचारू क्रियान्वयन मेरे हाथ में न होकर मात्र ईश्वर के हाथ में है। साथ ही शिशु यह भी नहीं जानता, कि देह के भीतर होती इन क्रियाओं के कारण ही मेरे जीवन एवं बाह्य क्रियाओं का अस्तित्व है। **अपनी बोधता में जब कोई विवेकशील मानव, देह के भीतर होने वाली असंख्य एवं अगणित प्रक्रियाओं के अस्तित्व को जान लेता है तथा उनके सुचारू रूप से कार्यान्वित होने के**

कारण अपने जीवन के अस्तित्व को मान लेता है एवं इनके पीछे ईश्वरीय सत्ता का अनुभव कर लेता है, तो उस बोधशील मानव का यही ज्ञान उसे, उसके मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचा देता है।

सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड जिसे हम अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखते, स्पर्श करते, चखते, सुनते और सूँघते हैं, वह ईश्वर की माया है। पंच-महाभूतों की मानव-देह के भीतर चल रही असंख्य एवं अगणित क्रियाएँ अदृश्य रहती हैं। ये क्रियाएँ दशानन (अविरल, अकाट्य, अबाध, चिरन्तन, निरन्तर, अति विशिष्ट, संक्षिप्त, गुणात्मक, उद्देश्यात्मक एवं सारगर्भित) हैं। इन्हीं भीतरी क्रियाओं के सुचारू, व्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध होने की वजह से हम जगत का अपनी आँख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा से अधिग्रहण एवं रसास्वादन करते हैं।

देह द्वारा होने वाली किसी छोटी से छोटी क्रिया के लिए मेरी देह की समस्त आन्तरिक कार्य-प्रणालियों का सुसम्बद्ध एवं व्यवस्थित होना परमावश्यक है। भीतर चलने वाली ये क्रियाएँ पापी-पुण्यी, चोर-साहूकार, राजा-रंक, मालिक-नौकर सबकी एक सी और दशानन हैं। भीतर की इन क्रियाओं का कोई कर (Tax) भी हमें नहीं देना पड़ता। पंच-महाभूतों से संगमित देह के भीतर की ये क्रियाएँ उसी प्रकार दशानन हैं, जिस प्रकार पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश की गतियाँ दशानन हैं; क्योंकि इनमें किसी का अपना हस्तक्षेप नहीं होता। प्रश्न उठता है, कि मेरी बाह्य क्रियाएँ अस्त-व्यस्त क्यों हैं, वे दशानन क्यों नहीं हैं? उत्तर भी स्पष्ट है यदि बाह्य क्रियाओं में मेरा अपना हस्तक्षेप न हो, तो वे भी दशानन हो जाएँगी। बाहरी क्रियाएँ भी देह की भीतरी क्रियाओं की भाँति स्वतः होती हैं, लेकिन स्वतः होने वाली बाहरी क्रियाओं को जब मैं कर्ता बनकर करता हूँ तो मेरे अपने हस्तक्षेप के कारण वे अस्त-व्यस्त एवं विश्रृंखलित हो जाती हैं।

मानव-देह के रूप में मेरा एक ही कर्म है, कि मैं स्वतः होते ईश्वरीय कृत्यों में हस्तक्षेप न करूँ और अपने मन-बुद्धि को उस शक्ति के आगे तहेदिल व रूह से समर्पित कर दूँ, जो देह के भीतर असंख्य एवं गणनातीत

क्रियाओं की प्रेरक, संचालक, सम्पादक एवं प्रतिपादक हैं। समस्त आकारों का निराकार **'एक'** है और **'एक'** के समस्त आकार हैं। निराकार का विज्ञान कभी नहीं बदलता। साकार के विज्ञान में नित्य नवीन शोध होती रहती है। देह के भीतर होने वाली क्रियाओं का विज्ञान हमने पढ़ा और फिर सोचा, कि आकार के भीतर होने वाली गतियों का कारण कौन है, जो सभी देहों को चला रहा है। देह के भीतर के किसी भी अंग की कार्यप्रणाली यदि विश्रंखलित हो जाए, तो मेरी अपनी बाह्य क्रियाएँ तुरन्त प्रभावित हो जाएँगी। देह के भीतर की सुव्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध क्रियाओं के कारण ही मेरा देखना, सुनना, सूँघना, चलना, फिरना, खाना-पीना, करना-करवाना और कोई भी छोटी से छोटी क्रिया होती है। इसलिए कोई भी बाहरी क्रिया मेरे अधीन नहीं है। जिस शक्ति से मेरी देह के भीतर की समस्त क्रियाएँ आजीवन दस रूपों में होती हैं, मैं उसी शक्ति से प्रार्थना करूँ, कि "प्रभु ! मेरी बाह्य क्रियाएँ भी आप ही करवाओ।" वस्तुतः करवा वही रहा है, देहाध्यास एवं अज्ञानवश यह मेरा भ्रम ही है, कि मैं कर रहा हूँ। इस भ्रम के कारण ही मैं स्वयं को व्यस्तता के नाम पर अस्त-व्यस्त रखता हूँ।

मन का भाव और बुद्धि की सोच दोनों निराकार हैं। अनेकानेक साकार देहों के भीतर अदृश्य रूप से होने वाली दशानन गतिशीलता का समस्त नियन्त्रण ईश्वरीय मन और बुद्धि के अधीन है। साकार दृश्यमान देह में हो रही आन्तरिक क्रियाएँ एवं गतियाँ अदृश्य हैं। लेकिन देह द्वारा देह सहित जगत में हो रही बाह्य क्रियाएँ दृश्यमान हैं। मानव-मस्तिष्क को खोपड़ी में देखा जाता है, लेकिन सोच अदृश्य रहती है। कोई अपने दिमाग से जो सोच रहा है और किसी के मन में जो भाव आ रहा है, वह अदृश्य रहता है। हमारी देह सहित बाह्य जगत में समस्त बाह्य क्रियाएँ हमारे मन और बुद्धि के पारस्परिक सम्बन्धों का बाह्य प्रकाट्य होती है। मन और बुद्धि दोनों निराकार एवं अदृश्य हैं तथा देह सहित जगत का आकार है। जब हम अहंवश मन को अपना मन और बुद्धि की सोच को अपनी स्वयं की सोच मान लेते हैं, उस स्थिति में मन और बुद्धि में समन्वय हो ही नहीं सकता।

उनमें परस्पर क्लैश या कुछ तालमेल सा होगा। अतः साकार बाह्य प्रकाट्य भी असद्, विश्रंखलित एवं अस्त-व्यस्त होता है।

ईश्वरीय मन मूलतः आनन्द का स्रोत है और बुद्धि चेतना की द्योतक है तथा इन दोनों में समन्वय होता ही है; जिससे बाह्य रूप में प्रकट समस्त कृत्य **'सद्'** ही होते हैं। साकार देह के भीतर की दशानन गतियाँ पूर्णतः मात्र ईश्वरीय मन और बुद्धि के अधीन हैं। देह के भीतर अविरल चलती इन क्रियाओं का Best Utilisation, Utilisation, Mis-utilisation और Dis-utilisation पूर्णतः हमारे अपने मन-बुद्धि के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करता है। यदि हमारा मन और बुद्धि समर्पित होते हुए ईश्वर के अधीन हो जाए, तो बाह्य क्रियाएँ भी सद् एवं दशानन हो जाएँगी।

देह के भीतर होने वाली क्रियाएँ मेरे मन-बुद्धि के हाथ में नहीं हैं। समस्त बाह्य साकार जगत ईश्वर की ही माया है। परमात्मा ने किसी को भी बाह्य जगत की, किसी क्रिया का अधिकार नहीं दिया। मेरे द्वारा भी वही होगा जो वह परमात्मा चाहेगा, लेकिन मैं अपने मन-बुद्धि के हस्तक्षेप को रोक नहीं पाता। इसलिए जो हो रहा है उसे तथाकथित अपने प्रतिकूल मानते हुए **'विघ्न'** समझ लेता हूँ। मैं अपनी छोटी सी सीमित बुद्धि से जो चाहता था, वह नहीं हुआ। हुआ वह जो मेरी देह सहित जगत का स्वामी चाहता था। ईश्वर के किसी कार्य में विघ्न आ ही नहीं सकता। मेरी देह के भीतर की असंख्य क्रियाओं को ईश्वरीय मन-बुद्धि की सोच क्रियान्वित कर रही है। अन्दर झांक कर अपनी देह के भीतर होती उन कतिपय क्रियाओं को मैं अनुभव भी कर सकता हूँ और उसी के एवज में मेरी समस्त बाह्य क्रियाएँ होती हैं। उन स्वतः होती बाह्य क्रियाओं का मैं स्वयं को अज्ञानवश कर्ता मान लेता हूँ। मैं अपने द्वारा डाले गए विघ्नों को विघ्नपूर्वक दूर करने में आजीवन अमूल्य समय नष्ट करता रहा हूँ।

मन-बुद्धि के समन्वय से जो कृत्य होते हैं, वे किए नहीं जाते। उनका कर्ता मात्र ईश्वर ही होता है। इसलिए उन कृत्यों में समस्त समष्टि सहायक होती है। ईश्वर सबसे जो करवाना चाहता है, करवा लेता है। मैं मानव होने

के नाते ईश्वर से अवश्य प्रार्थना कर सकता हूँ, कि ''प्रभु ! आप मेरी देह में इतना सब कुछ चला रहे हैं, उनका क्रियान्वयन मैं अनुभव कर रहा हूँ। जो कुछ बाह्य जगत में करवाना होगा, वह भी आप ही करवाओ।'' यह आपकी अपनी मन-बुद्धि का समर्पण है। जिसकी मन-बुद्धि ईश्वर के चरणों में समर्पित है, उस देह पर आधारित जगत और वह देह आपके (जीवात्मा) के लिए होती है। फिर आपके द्वारा दैवीय कृत्य होंगे, जिसमें आपका कर्ताभाव तो क्या निमित्तता का भाव भी नहीं होगा। आपके द्वारा ऐसे कार्य होंगे, जो सर्व हिताय ही होंगे।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(7, 8 मई, 2008)

तदनुसारता

शिव स्वयं में वैराग का संघनित स्वरूप है और उसका एकमात्र मानस-पुत्र जीवात्मा भी उसी के समान सच्चिदानंद, ठोस-घन-शिला एवं उसकी सभी विभूतियों से युक्त है। अज्ञानवश मानव-देह के साथ तद्‌रूपता में जीव असंख्य आसक्तियों को लेकर अतृप्त, असंतुष्ट एवं आसक्त रहता हुआ जीव-सृष्टि के काल्पनिक काल-चक्र में भटकता रहता है। जन्मों-जन्मान्तरों में यह तद्‌रूपता देह-धारणा बन जाती है। पैदा होने से पहले और मरने के बाद भी किसी न किसी देह को अपना स्वरूप मानने की इसकी धारणा बनी रहती है। इस प्रकार इसकी देह धारणा हृष्ट-पुष्ट-तुष्ट होती हुई असंख्य आसक्तियों को लिए अधिकाधिक परिपुष्ट रहती है। मैं देह था, देह हूँ और देह ही रहूँगा इस जीवभाव में स्वयं में निराकार एवं अदृश्य होते हुए भी जीवात्मा साकार देह की धारणा से मुक्त नहीं हो पाता।

जीव भाव में कौन सी, किस आयु, किस आर्थिक स्तर, किस सम्बन्ध, किस देश-काल, किस मानसिक स्तर, किस पद-प्रतिष्ठा, किस अवस्था, किस शैक्षिक स्तर की देह के साथ जीवात्मा की तद्‌रूपता हुई है? वस्तुतः जीवात्मा को कुल साकार देह के साथ समग्रता में अध्यास हुआ। देह तो पल-पल परिवर्तनशील है। कुल देह अर्थात् देह जब भी, जैसी भी, जिस भी स्थिति, स्थान, अवस्था, धर्म-कर्म-कर्तव्य, आयु एवं परिस्थिति में हो, **'मैं'** (जीव) उसके साथ तद्‌रूप होकर परिवर्तित **सा** होने लगा। जब हम किसी से जुड़ना चाहते हैं, तो वह वस्तु, प्राणी, शक्ति या विधा हमारे अनुसार होनी आवश्यक है; नहीं तो हम उससे जुड़ना नहीं चाहेंगे और यदि जुड़ेंगे तो दुःखी रहेंगे। हमारी हर

चाहत के पीछे एक मनोविज्ञान है। हम विशिष्ट वस्तु को मात्र अपनी माँग पूरा करने के लिए ही प्राप्त करना नहीं चाहते, बल्कि उसका अपने अनुसार Utilisation भी चाहते हैं। जब मूल आवश्यकता पूरी हो जाती है, तब हमारा अपना चुनाव और अपनी पसन्द के अनुसार डिज़ाइन या बनावट की मांगें प्रारम्भ हो जाती है। मानव-देह की मूल आवश्यकता रोटी, कपड़ा, मकान है, जब वह पूरा हो जाता है, तो उसके बाद तदनुसार चाहतों को सिलसिला शुरू हो जाता है। पशु-पक्षी अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र से संतुष्ट रहते हैं। जहाँ कोई पशु, पक्षी, कीट, पतंगा पैदा होता है, वहाँ उसके अनुकूल उसकी मूल आवश्यकताएँ प्रकृति पूरा करती है। इससे अधिक पशुओं की मांग ही नहीं होती। मुझे प्रभु ने मानव-देह से नवाज़ा है जिसका मनोविज्ञान ही ऐसा है, कि इसके अनुकूल मूल आवश्यकता पूरी होने के बाद ही तदनुसार चाहतें शुरू होती हैं।

मैं जो चाहता हूँ मुझे मिल गया। इसके बाद वह मेरे अनुसार उचित नहीं है, तो उसमें फिर परिवर्तन की अपेक्षा होती है। अब इस वृत्ति का हम लाभ उठाएँ। हमारे भीतर यह ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा है, कि स्वतः प्राप्त और अनुकूल आवश्यकताओं को हम चाहे अस्थाई तौर पर ही सही अपने अनुसार भी बना लेते हैं। हमारी समस्त सक्रियताओं का लक्ष्य, जीवन की दिशा व प्रेरणा, आर्थिक स्थिति का मूल, हमारी दीवानगी यह है, कि हम स्वतः प्राप्त देह सहित जगत को अपने अनुसार चाहते हैं और इसी के लिए आजीवन संघर्षरत रहते हैं। इसमें कुछ हद तक सफल भी हो जाते हैं, लेकिन हमारी असंतुष्टि बनी रहती है।

'मैं' (जीव) ने ईश्वर प्रदत्त कुल साकार देह (शिशु से लेकर शव बनने तक) के साथ तादात्म्य किया। बच्चा, युवा, वयस्क, प्रौढ़, वृद्ध, अति वृद्ध, मरणासन्न; हर देह के साथ मैंने अपनी **'मैं'** को लगाया। हर सम्बन्ध के साथ **'मैं'** को लगाया। देह के कुछ रूप और स्तर हम छिपाना चाहते हैं और कुछ जानबूझ कर दिखाना चाहते हैं। जो मेरे अनुसार नहीं होते उन्हें छिपा कर और जो मेरे अनुसार हैं; विषय न भी हो तो भी दूसरों के सामने प्रकट

करते रहते हैं। इस प्रकार प्रदर्शन द्वारा स्वयं को अस्थाई तौर पर सन्तुष्ट सा अनुभव करते हैं। हम ईश्वर प्रदत्त अपनी देह सहित जगत की हर स्थिति का भरपूर मन्थन और प्रशंसा करें, उसका **'सद्'** ग्रहण करें, तो सद्‌गरु-कृपा से हम उससे बाहर आ जाएँगे और हमारी असीम आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रविष्टि हो जाएगी।

हम जीवन **में** सारे भविष्यों को स्वयं में आत्मसात् करते हैं और उन्हीं के लिए हर वर्तमान में निरन्तर संघर्षरत रहते हैं। जीवन में अनेक भविष्य पूरे भी हो जाते हैं, लेकिन एक की पूर्ति होने पर असंख्य और भविष्य खड़े हो जाते हैं। क्योंकि हर वर्तमान में हमारी स्थितियाँ (शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक) हमारे अनुसार नहीं होतीं। ये समस्त भविष्य हमारे हर वर्तमान को भय और विष से युक्त करके चिन्तायुक्त, त्रसित व तनावित बनाए रखते हैं। जीवात्मा (**'मैं'**) ने जीव-सृष्टि में देह के साथ अध्यास किया, लेकिन देह ने उसका अध्यास नहीं किया। देह का एक-एक रोम उसी ईश्वर द्वारा निर्मित है, जिसका जीवात्मा (**'मैं'**) मानस-पुत्र है। देह को अपने अनुसार चलाने के लिए **'मैं'** (जीवात्मा) ने देह पर अधिपत्य (देह मेरी है) और अध्यास (मैं देह हूँ) किया। परमात्मा के एकमात्र युवराज का देह पूर्णतः विरोध तो नहीं कर सकी लेकिन तद् (जीवात्मा के) विपरीत हो गई। आत्मानुभूति के आधार पर यह **'सद्'** हम आध्यात्मिक इतिहास में प्रथम बार उद्‌घोषित कर रहे हैं, कृपया पूर्ण एकाग्रता एवं श्रद्धा से इसका श्रवण एवं पठन-पाठन करें।

'मैं' देह नहीं है। **'मैं'** जीवात्मा है; जो स्वयं में अदृश्य, निराकार एवं अकाल है। देह दृश्यमान, साकार एवं जन्म-मृत्यु के दोनों छोरों में बँधी कालबद्ध है। **'मैं'** एक ही है और देहें असंख्य हैं। इन असंख्य एवं अनेकानेक देहों का आधार अवचेतना में जीवात्मा (**'मैं'**) को दी गई उसकी **एक** मानव-देह होती है। **'मैं'** (जीवात्मा) देह रूप में **एक** होता हूँ तो अनेक देहें होती हैं और यदि अनेक देहें होती हैं, तो **'मैं'** (जीवात्मा) एक (देह) होता ही हूँ। इसलिए जब **'मैं'** (जीवात्मा) ने एक देह के साथ नाम-रूप में अध्यास किया, तो केवल एक देह ही मेरे विपरीत नहीं हुई उस पर आधारित

प्रकट-अप्रकट समस्त जगत भी उसी समय मेरे विपरीत हो गया।

सम्पूर्ण दृश्यमान साकार महाब्रह्माण्ड सहज जड़ पंच-महाभूतों पर आधारित प्रपंच है। इसका क्रियान्वयन, गति एवं सक्रियता के पीछे शिव की विरक्ति शक्ति है, जो अदृश्य भस्मी के रूप में पंच-महाभूतों में समानतया समाहित है। पंच-महाभूतों की समस्त माया का प्रकाट्य, पालन और विलय शिव की अतिशक्ति **'विरक्ति'** द्वारा होता है। पंच-महाभूतों की देह सहित जगत की प्राण शक्ति **'अदृश्य भस्मी'** है और अदृश्य भस्मी का नाम विरक्ति है। पंच-महाभूतों के अपने-अपने नाद हैं। पृथ्वी का नाद है–'थर, थर, थर', वायु का नाद है–'सर, सर, सर', जल का नाद है–'कल, कल, कल', आकाश का नाद है–'घर्र, घर्र, घर्र', अग्नि का नाद है– हर-हर-हर। **हर'** शिव का नाम है। प्रपंच का विलय अग्नि द्वारा ही होता है। पंच-महाभूतों की किसी देह के शव को अग्नि उस देह की अग्नि सहित पंच-महाभूतों में विलय कर देती है। विलय के बाद वह अदृश्य भस्मी दृश्यमान होकर **प्रकट** हो जाती है। यह प्रकट भस्मी इस तथ्य की पुष्टि करती है, कि देह सहित जगत में समस्त प्रपंच का प्रकाट्य करने वाली, पालन, सम्पादन, संचालन करने वाली एवं संहार के बाद पंच-महाभूतों में विलय करने वाली **'शक्ति'** उस महाशिव की **'विरक्ति'** ही है।

'मैं' शब्द जीवात्मा का प्रकाट्य है। **'मैं'** (जीवात्मा) को केवल शब्द रूप में सुना जा सकता है, देखा नहीं जा सकता। देह के साथ अध्यास की दुर्घटना में सबसे बड़ी हानि यह हुई, कि वैराग के पुंज शिव का यह मानस-पुत्र देह की आसक्ति में विरक्ति को भूल कर अधोगति को प्राप्त हो गया। देह की विपरीतता को **'मैं'** (जीवात्मा) समझ ही नहीं पाया। विपरीतता में देह इससे आजीवन वह करवाती रहती है जो जीवात्मा (**'मैं'**) के विपरीत हो, क्योंकि मैंने देह के खिलाफ देह पर अधिपत्य व अध्यास कर लिया था। विरक्ति के आसक्ति बनते ही जीवात्मा की ईश्वर प्रदत्त सभी विभूतियाँ, विकृतियों में रूपान्तरित हो गईं। सौन्दर्य–काम, ऐश्वर्य–लोभ, शक्ति–क्रोध, ख्याति–मोह एवं ज्ञान–अहंकार बन गया। क्योंकि जीवात्मा को दी गई एक देह ही

इसके विपरीत नहीं हुई, बल्कि देह के साथ प्रकट-अप्रकट समस्त जगत भी पूर्णतः विपरीत हो गया। इसीलिए देह धारणा में जीवात्मा देह पर देह लेता हुआ जन्म-दर-जन्म और-और आच्छादित होता रहा। धारणा जन्मों-जन्मान्तरों की है। जबकि **'मैं'** (जीवात्मा) ने देह के साथ तदरूपता देह की अनुकूलता के लिए की थी। सद्गुरु कहता है, कि "हे जीवात्मा ! देह को तदनुसार करने के लिए तुझे देह की उन स्थितियों से तद्रूप होना होगा, जिन स्थितियों में **'देह'** वर्तमान में **'मैं'** को अपने साथ लगाने की स्थिति में नहीं होती।"

किसी स्थान से बाहर आने के लिए उस स्थान का समग्र रूप से अध्ययन आवश्यक है। जिस कमरे में **'मैं'** रह रहा हूँ उससे बाहर आने के दरवाजे कितने हैं। सुविधाजनक, सरल, सम्भावित एवं आपत्कालीन निकास कौन-कौन से हो सकते हैं? बाहर आने का एक सामान्य मार्ग होता है, एक असामान्य होता है। इस प्रकार आपत्कालीन स्थिति में भी बाहर निकासी का रास्ता हमें पता होना चाहिए। मैं देहाध्यास में फँसा हूँ और देह की ही किसी ऐसी स्थिति की अवधारणा द्वारा बाहर आ सकता हूँ, जो देह से बाहर, देहातीत हो। धारणा मेरी है, अवधारणा मेरी है, चेतन भी मैं हूँ, अवचेतन भी मैं हूँ, अध्यास मेरा है और अधिपत्य मेरा है। देह की हर अवस्था और हर रूप से मुझे तद्रूपता हो गई। मैं सोया था, मैं मूर्च्छित था, मैं मरूँगा, मैं भस्मी बनूँगा। देह होगी तभी मैं कहूँगा, कि मैं सोया था, मैं मरूँगा या भस्मी बनूँगा।

देह के साथ तद्रूपता में देह की किसी अवस्था, किसी भी सम्बन्ध, किसी भी आर्थिक स्तर, किसी भी पद-प्रतिष्ठा, किसी भी लाभ-हानि की स्थिति में मैं मर सकता हूँ और मेरी भस्मी बन सकती है। देह की एक अवस्था जो दर्शित और निश्चित थी उस पर जीवात्मा ने धारणा नहीं की; वह थी—'देह का शव'। 'देह की भस्मी' वह अवस्था थी, जो दर्शित एवं निश्चित होने के साथ परिलक्षित भी थी। उसके साथ भी जीवात्मा ने न धारणा की, न अधिपत्य किया, न अध्यास किया। कोई कहे कि अपना शव किसने देखा है और जब शव ही नहीं देखा तो **'भस्मी'** देखने का तो प्रश्न ही

नहीं उठता। सद्गुरु कहता है, कि अपनी निद्रा भी तो किसी ने नहीं देखी, परन्तु उसकी तो नित्य ही धारणा हो जाती है, कि मैं सोऊँगा अथवा मैं सोया था; अब मैं उठ गया हूँ। आरामदायक निद्रा के लिए अपने शयनकक्ष में वातानुकूलन और सौन्दर्य के लिए ईरानी कालीन, मुलायम बिस्तर आदि की व्यवस्था सब करते हैं। मृत्यु की तरह अपनी निद्रा भी नहीं देखी, लेकिन आरामदायक निद्रा के लिए ही हम चिन्तित क्यों रहते हैं? अपने शव की धारणा हमने नहीं की, क्योंकि वह अवस्था हमारे अनुकूल नहीं है, हमें पसन्द नहीं है। किसी जन्म में सद्गुरु-कृपा से देह ही जीवात्मा को अपने रहस्य बताती है। देह, जीवात्मा से कहती है, कि ''मुझे निद्रा की तरह शव और भस्मी भी पसन्द है, क्योंकि शमशानवासी शिव, भस्मी को धारण करता है। यदि तू मुझे अपने अनुकूल करना चाहता है, तो मेरी इन स्थितियों के साथ तद्रूपता कर ले।''

पहले **'मैं'** (जीवात्मा) देह से तद्रूप हुआ था, फिर वह देह, जीवात्मा के लिए तरसती है। जब **'मैं'** (जीवात्मा) देह की मृतकावस्था (शव) और भस्मी से प्यार करने लगता हूँ, तो देह मेरे (जीवात्मा के) अनुसार हो जाती है। वह देह, जीवात्मा से इश्क करती है और अपने समस्त रहस्य जीवात्मा के सम्मुख अनावृत करने लगती है। देह, जीवात्मा से कहती है कि ''हे जीवात्मा ! तुम आसमान की चीज़ हो, मैं धरती की वस्तु हूँ, तुम कभी भी मुझे छोड़ सकते हो। तुम मुझे अपने अनुसार करना चाहते हो। मैं तुम्हारे ही पिता द्वारा निर्मित हूँ, वही मेरा पालनकर्ता है। तुम (जीवात्मा) निराकार हो मैं (देह) साकार हूँ। तुम्हारा अपना स्थान है, मेरा अपना स्थान है। मैं (देह) सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड के समस्त प्रपंच का प्रतिनिधित्व करती हूँ। तू (जीवात्मा) मेरा (देह का) सरपंच है। **'मैं'** तुम्हें दी गई हूँ तुम्हारे लिए हूँ। तुमने मेरा अध्यास व अधिपत्य कर लिया। मेरी जो विधाएँ (मृत्यु एवं भस्मी) तुम्हें पसन्द नहीं है, तुम उन्हें छिपाते हो तो मैं तुम्हारे विपरीत हो जाती हूँ। लेकिन अब तुम मेरी इन दोनों (मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) अवस्थाओं को भी देखना चाहते हो, तो मैं (देह) चाहे फना हो जाऊँगी लेकिन तुम्हें (जीवात्मा को) तुम्हारा

स्वरूप दे दूँगी।'' यह देह ही अपने शव और भस्मी से जीवात्मा को उसका विशुद्ध अभावमय आनन्द स्वरूप प्रकट कर देती है। देह की समस्त विकृतियाँ काम,ञ क्रोध, लोभ, मोह और अहं दिव्य उत्प्रेरक बनकर इसकी सुकृतियाँ बन जाते हैं।

साकार देह को निराकार (जीवात्मा) से तद्रूपता हो जाती है। अन्ततः वह देह जीवात्मा की इतनी चहेती हो जाती है, कि अपना जन्म-मृत्यु, पाप-पुण्य, खोना-पाना, लाभ-हानि, प्रारब्ध, रोग-दोष सब भूल जाती है। जब **'मैं'** देह से बँधा तो देह विपरीत होती है और जब देह, जीवात्मा (मैं) से बँधती है, तो वह विदेह-देह होती है। जीवात्मा को परमात्मा की सम्मुखता में सहायक होती है। देह की हर प्रतिभा, सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति, ऐश्वर्य जीवात्मा के लिए होता है। देह ही अपनी **निद्रा** से **जागृति**, **मृत्यु** से **अमरत्व** और **भस्मी** से **शिवत्व** के समस्त रहस्य जीवात्मा के सम्मुख अनावृत कर देती है।

समस्त वक्तव्य का सार है, कि जब जन्मों-जन्मान्तरों की देह धारणा में जीव देह से तद्रूप हुआ तो देह को तद् (अपने) अनुसार देखना चाहता है, जबकि देह पूर्णतः तद् (जीवात्मा के) विपरीत हो जाती है। जब इष्ट व सद्गुरु-कृपा से यह देह की मृतकावस्था (शवावस्था) और विशेषतः भस्मावस्था (जो पूर्व जन्मों-जन्मान्तरों और भविष्य में होने वाली देहों की भी है) के साथ तद्रूप हुआ तो देह, जगत सहित इसके (तद्) अनुसार हो जाती है, न केवल तद्नुसार बल्कि साकार होते हुए भी जीवात्मा की ही भाँति विदेह हो जाती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(31 मई, 2008)

जागृति

(भाग – 1)

समस्त 'दृश्यमान' साकार जगत ईश्वर **की** माया है। इस प्रकार साकार **'माया'**, निराकार (ईश्वर) से प्रकट होकर उसी में चलती है और वहीं समाहित हो जाती है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों में जो प्रभु की माया का विस्तार है, उसमें सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह है। यह मानव-देह, जो युगों-युगान्तरों की समस्त माया का एकमात्र प्रतिनिधित्व करती है, समस्त साकार प्रकाट्य का आधार भी है। गहन सुषुप्ति (स्वप्न-रहित निद्रा) में मुझे अपनी देह सहित जगत के स्थान, समय और स्थिति का कोई ज्ञान नहीं होता। सुषुप्ति एक निराकार मानसिक स्थिति है, जिसमें मेरी साकार देह मेरे लिए नहीं होती, इसलिए जगत भी नहीं होता। जब मैं अपनी देह की अवचेतना में उठता हूँ, तो स्वतः, साथ-साथ एवं उसी देह की मायिक स्थिति या योनी के अनुसार मेरा जगत भी अवश्य होता है। अतः वह स्थिति मात्र मेरी एक देह पर लागू नहीं होती, बल्कि उस समय की कुल समष्टि पर लागू होती है, क्योंकि वह देह उस समय के मेरे सम्पूर्ण प्रकट एवं अप्रकट जगत का आधार होती है।

मेरी एक देह सहित समस्त प्रकट-अप्रकट जगत उसी मायिक योनि या चैनल से प्रकट होता है, जिसमें मैं अवचेतना में होता हूँ। समय और स्थान का निर्धारण **मेरी स्थिति** करती है। उस महाकालेश्वर ने देह के काल (स्थान, स्थिति और समय) को अपने हाथ में रखा है। दृश्यमान साकार देह काल से बँधी है और काल, कालेश्वर के अधीन है। जब कोई भी स्थिति मेरे

हाथ में नहीं है, तो मेरी देह व जीवन का **'अस्तित्व'** क्या है? मैं कुछ करूँ न करूँ, पाना-खोना सब कुछ ईश्वर के हाथ में है। फिर मुझ पर यह स्थितियाँ लागू क्यों होती हैं? जैसे ही मैं अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तो कोई न कोई मायिक स्थिति लग जाती है। सुषुप्ति के दौरान **'मैं'** नहीं कहता, कि मैं सो रहा हूँ और तब कोई भी मायिक स्थिति लागू नहीं होती। मैं एक देह की अवचेतना (Consciousness) में उठा और उस समय की मेरी देह की स्थिति के अनुसार स्वतः एवं साथ-साथ एक जगत भी प्रकट हुआ। वह जगत मुझसे बिल्कुल भी भिन्न नहीं है। मेरी एक व्यष्टि देह की अवचेतना उस समय की देह सहित समस्त जगत का आधार है। समस्या तब हुई, जब देह को तो मैंने अपना मान लिया और जगत को अपने से भिन्न मान लिया। यदि जगत को मैंने स्वयं से भिन्न मान लिया तो समझ लेना चाहिए, कि मेरी देह भी मुझसे विपरीत है और वह देह सहित जगत मेरे लिए तनाव का हेतु ही बनेगा।

सुषुप्ति से उठते ही सर्वप्रथम मैं देह को पहचानता हूँ। मुझसे पूछा जाए, कि आप कौन हैं?'' तो मैं यही कहता हूँ, कि ''मैं अमुक-अमुक (देह का नाम-रूप) हूँ।'' सद्गुरु पूछता है, कि ''जब सोए हुए थे तब भी आप देह थे। उस समय यह क्यों नहीं कहा, कि मैं सोया हुआ हूँ। देह के सुषुप्ति से उठने के साथ ही आप कह रहे हैं, कि मैं उठ गया हूँ और मैं देह हूँ। देह की हर क्रिया के साथ आप **'मैं'** लगाते हैं, कि मैं चल रहा हूँ, मैं खा रहा हूँ, मैं नहा रहा हूँ, मैं देख रहा हूँ, लेकिन देह की सुषुप्ति के दौरान आप **'मैं'** नहीं लगा सकते। देह के साथ तद्रूपता में **'मैं'** (जीवात्मा) ने भी स्वयं को सोया हुआ मान लिया। **'मैं'** देह नहीं है, **'मैं'** जीवात्मा है, जो ईश्वर की ही भाँति सच्चिदानंद, अजर-अमर एवं शाश्वत् है। **'मैं'** सर्वदा जाग्रत है:–

''ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखराशि।''

सुषुप्तावस्था में श्वास-प्रश्वास और देह की समस्त भीतरी क्रियाएँ होती रहती हैं। जीवात्मा (**'मैं'**) भी ईश्वर की भाँति सच्चिदानंद है, वह कैसे सो सकता है? परन्तु देह के साथ तद्रूपता के भ्रम में स्वयं को सोया हुआ मान लेता है। किसी की **'मैं'** दिखाई नहीं देती, क्योंकि **'मैं'** अदृश्य है, **'मैं'**

को केवल सुना जा सकता है। **'मैं'** जीवात्मा का शब्द रूप में प्राकट्य है। स्त्री-पुरुष, बड़ा-छोटा, ऊँचा-नीचा, सुखी-दुःखी, रोगी-डॉक्टर, बाप-बेटा, राजा-रंक, पति-पत्नी सभी एक ही **'मैं'** लगाते हैं। **'मैं'** दिखाई नहीं देती, लेकिन देहें दिखाई देती हैं। निद्रा से उठते ही **'मैं'** (जीवात्मा) ने स्वयं को एक देह के नाम-रूप के साथ पहचाना, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, तो इसे शास्त्र में **'देहाध्यास'** कहा गया है। सुषुप्ति में देह सहित जगत की अवचेतना नहीं रहती, लेकिन परिपुष्ट देहाध्यास के कारण **'मैं'** (चेतना) भी नहीं रहती।

जीवात्मा जब देह के साथ **'मैं'** लगाने की **स्थिति** में होता है, तो इसे State of Consciousness या अवचेतन स्थिति कहते हैं। यह चेतना नहीं होती। पशु जगत भी इसी प्रकार निद्रा से उठकर सारा दिन भागता-दौड़ता रहता है। **'मैं'** चेतना है और **'देह'** स्वयं में सहज जड़ पंच-महाभूतों का पिण्ड है। 'मैं देह हूँ', कहते ही चेतन और जड़ की ग्रन्थि सी बन गई। यह **'मैं'** (जीवात्मा) की अवचेतना है। हमारा सुख-दुःख, रोग-दोष, पाप-पुण्य, आधि-व्याधि-उपाधि, मान-अपमान, उन्नति-अवनति, अमीरी-गरीबी, धर्म-कर्म, वैर-वैमनस्य, मित्रता-शत्रुता, ईर्ष्या-द्वेष, राग और सब कुछ इस अवचेतना में ही है। दृश्यमान साकार देह सहित जगत की कोई विधा चेतना (समाधि) अथवा जड़ता (सुषुप्ति) दोनों में नहीं है। निद्रा **'मैं'** (देह के साथ तद्रूप जीवात्मा) की जड़ता की स्थिति है। जब कहा, कि मैं अमुक-अमुक (देह का नाम-रूप) उठ गया हूँ, तो **'मैं'** देह के साथ अवचेतना में उठ गया। इस अवचेतन स्थिति में जीवात्मा (**'मैं'**) देह के साथ तद्रूपता एवं जीव-सृष्टि में लेना-देना, भाग-दौड़, धर्म-कर्म-कर्तव्य, देश-काल, सम्बन्ध, परिवार, मान-अपमान, उन्नति-अवनति, नाम-बदनामी, पद-प्रतिष्ठा और माया के तीनों गुणों में बँध सा गया और चौरासी लाख स्थितियों या योनियों (मायिक विधाओं अथवा चैनल) में जन्म-दर-जन्म भटकने लगा।

किसी विशिष्टतम जन्म में ईश्वर की अकारण कृपा से वह निराकार सत्ता विशेष देह में सद्गुरु के रूप में अवतरित होती है। सद्गुरु चिरकाल से देहधारणा में जड़ और अवचेतन जीव बने जीवात्मा को जाग्रत करता है।

सद्गुरु कहता है–''**उत्तिष्ठ-जाग्रत;** तू निद्रा से उठ गया है अर्थात् तेरी देह उठ गई है। तू अब जड़ नहीं है, तू अवचेतन है, इसलिए उठकर, अब तू जाग। **'मैं'** तेरी चेतना है, इसलिए तू उठ गया है, तो अब अपनी **'मैं'** को पहचान। अपनी उस चेतन स्थिति को पहचान जिसमें तेरी देह सहित जगत नहीं होता और तू देह की चौरासी लाख मायिक चैनलों या स्थितियों से मुक्त होता है।''

सद्गुरु जाग्रत करते हुए कहता है, कि '' **'मैं'** सबकी एक है क्योंकि **'मैं'** (चेतना) एक ही है और देहें सबकी पृथक्-पृथक् इसलिए हैं, क्योंकि तेरी देह एक ही है। वह एक देह, अनेकों का आधार है। यदि तू एक देह (देह का नाम-रूप) है, तो अनेक भी तू ही है। देह रूप में तेरे एक के होने से अनेक देहें होती हैं। इसलिए चेतन **'मैं'** रूप में, तू **एक ही** सब देहों में व्याप्त (You are one in all) है। जब तू अपनी एक देह के नाम-रूप की अवचेतना में नहीं होता, तो एक (देह रूप) के साथ अनेक देहें भी तेरे लिए नहीं होतीं, वह तेरी एकान्त की स्थिति है। तेरा एकान्त, अनेकान्त भी है। इसलिए वास्तव में तू न एक है न अनेक (You are none in all) है।'' यह एकान्त **'मैं'** की चेतना अथवा समाधि स्थिति है। जिसमें उसकी **'मैं'** देह सहित जगत की चौरासी लाख मायिक स्थितियों से मुक्त होती है। यह **'मैं'** की जागृति है। इस जाग्रत अवस्था में ही **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं को पहचान सकता है। मानव-देह पाकर जो जाग्रत नहीं है, वह चौरासी लाख पशुयोनियों में से किसी योनि में मात्र उठा हुआ है। मानव-देह धारण करके जब तक हमने अपनी **'मैं'** (चेतना अथवा जीवात्मा) को नहीं पहचाना अथवा स्वयं को पहचानने की जिज्ञासा नहीं हुई, तब तक हम पशुयोनियों में ही भटकते रहते हैं। हम भौतिक दृष्टि से कुछ भी बन जाएँ, कुछ भी पा लें, वह नश्वर ही होगा। वह शाश्वत् हो ही नहीं सकता।

सद्गुरु कहता है, कि ''तू निद्रा से उठ गया है, अब तू जाग और ईश्वर के ध्यान में बैठ।'' सद्गुरु अपने सद्शिष्य के स्वभाव एवं भावानुसार उसे इक्कीस प्रकार की समाधियों में से किसी भी समाधि में ले जाता है। सम+धी, जहाँ बुद्धि स्थिर हो जाए। समाधि और निद्रा में मानसिक स्थिति

एक सी होते हुए भी बहुत अन्तर है। निद्रा जड़ता है और समाधि चेतना है। निद्रा जड़ता की स्थिति इसलिए है, क्योंकि इस स्थिति में जीवात्मा (**मैं**) को अपनी देह सहित जगत तथा अपनी **'मैं'** किसी की भी होश नहीं होती। इसलिए निद्रा से उठने के बाद जागने के लिए सद्गुरु-कृपा से **'मैं'** अपनी निद्रा को देख लूँ। अपनी तथाकथित जागृति में जीवात्मा निद्रा को देख ले, वही वास्तविक जागृति होगी। जो निद्रा को देखेगा, वह चेतन होगा। वही मेरा जीवात्मा स्वरूप होगा। वह देह की अवचेतना से ग्रसित नहीं होगा। वह आनन्द से आविर्भूत होगा। इसे समाधि कहा गया है। आधि-व्याधि और उपाधि का तोड़ समाधि है। सुषुप्ति से उठकर **'धी'** अर्थात् बुद्धि सम करके, जीवात्मा निद्रा की मानसिक स्थिति को अपने सम्मुख देखता है। जिसमें वह देशकाल, सम्बन्ध, लिंग, धर्म, कर्म, कर्तव्य, माया के तीनों गुणों, सुख-दुःख सबसे परे होता है। यह वह मानसिक स्थिति है, जिसमें **'मैं'** चेतन होता हूँ और देह की अवचेतनामयी समस्त विधाओं से परे होता हूँ। यही **'मैं'** (जीवात्मा) की जागृति है:—

''सच्चिदानंदोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।''

मानव-जीवन का यही लक्ष्य है। जब तक **'मैं'** अपनी देह सहित जगत की अवचेतना के प्रति चेतन नहीं होता तब तक मानव-देह धारण करके भी मानव-जीवन जीने का अधिकारी नहीं होता। जीव+न=**जीवन**, मैं जीव नहीं, जीवात्मा हूँ। मुझे मेरी **'मैं'** (चेतना) का ज्ञान हो जाए। इसके लिए मुझे निद्रा से मात्र उठना नहीं होगा, उठकर जागना भी होगा। यहाँ महत्त्वपूर्ण यह है, कि **जागने के लिए निद्रा से उठना आवश्यक है।** मैं कुछ कर रहा हूँ या मैंने कुछ करना है, यह ख्याल तब आता है, जब **'मैं'** (जीवात्मा) देह की अवचेतना में होगा। Awareness या चेतना में यह ख्याल नहीं आएगा। अवचेतना में **'मैं'** (जीव) देह रूप में मात्र उठता है। जहाँ देह रूप में मैं अवचेतना में होऊँगा, तो मैं जगत को अपने से भिन्न मानकर स्वयं कर्ता अवश्य बन जाऊँगा। जब निद्रा से देह के नाम-रूप की अवचेतना में उठकर मैं ध्यान में समाधिस्थ होऊँगा, तो **'मैं'** (जीवात्मा या विशुद्ध चेतना) जाग्रत हो जाएगी।

जीव सृष्टि में 'मैं' चेतन होते हुए भी देहमयी होने के कारण अवचेतन होगी। समाधि से उठी 'मैं' रूप, देह भी (मैं मयी) चेतन और जाग्रत होगी। मैं जब स्वयं (चेतन सत्ता) को देख लूँगा, वही मेरी आनन्द की स्थिति है। मानव-देह लेकर आनन्दमय मानव-जीवन जीना इतना सरल नहीं है। मुझे जाग्रत होना ही होगा। समाधि, ध्यान, सद्गुरु-सेवा द्वारा उसकी कृपा से अपनी चेतना की अनुभूति करनी होगी। जीवन में यदि कोई विकास है, तो वह मात्र यही है। इस समाधि की स्थिति में प्रविष्टि और जागृति मात्र सद्गुरु-कृपा से सम्भव है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(21 जुलाई, 2008)

जागृति

(भाग – 2)

संसार, सारहीन व निस्सार नहीं, **'स सार'** (सार सहित) है। संसार का सार ग्रहण करने के लिए हमें मानव-देह एवं मानव-जीवन मिला है। संसार में तीन वस्तुएँ अति दुर्लभ मानी गई हैं। सर्वप्रथम मानव-देह मिलना, दूसरा दुर्लभतर है, कि **'सद्'** जानने की जिज्ञासा होना और तीसरा दुर्लभतम है, कि सद् जनवाने के लिए किसी सन्त या सद्गुरु का जीवन में पदार्पण। मानव-देह स्वयं में ईश्वर-प्रदत्त कैरियर है एवं ईश्वर की सुकृति है। इसकी नश्वरता, परिवर्तनशीलता, अवधि से बँधा होना और अन्ततः निश्चित रूप से भस्मी बन जाना, इसका शाश्वत् **'सद्'** है। जीवात्मा अजर एवं अमर, अकाल-पुरुष का एकमात्र मानस-पुत्र है और जो स्वयं में सच्चिदानंद है। देह सतत्, अविरल एवं हर क्षण परिवर्तनशील है। नश्वरता व परिवर्तनशीलता देह का सद् है। देह की तद्रूपता में नश्वर एवं अवधि से बँधी देह के गुण-धर्म जीव पर आरोपित हो गए।

ईश्वर ने मानव-देह में शारीरिक व बौद्धिक सीमित शक्तियों के साथ अपनी असीम आध्यात्मिक व मानसिक शक्ति भी दी। मानव-देह को ईश्वर ने परम रहस्यमयी, अद्भुत, असीम एवं चमत्कारिक मानसिक शक्ति के रूप में ऐसी विधा दी, जिससे यह अपने विशुद्ध स्वरूप को पहचान सकता है। कभी किसी जन्म में विशिष्टतम प्रभु-कृपा से इसे सद्गुरु मिल जाता है। सद्गुरु कहता है, **''उत्तिष्ठ ! जाग्रत** ! तू अपना असीम द्वार देख और यहाँ से जीव-सृष्टि से बाहर निकल जा। तू कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक

सच्चिदानंद एवं छः विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति एवं वैराग) से ओत-प्रोत निराकार परमात्मा का इकलौता युवराज है, उसी का अंश है। तू किसी तरह अपनी मानव-देह की असीमता को पहचान। देह की सीमित शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों ने तेरी देह-धारणा के कारण तुझे भी नश्वर देह व जगत की सीमित सीमाओं में बाँध लिया। किसी भी प्रकार से **'समाधि'** की उस मानसिक स्थिति में प्रविष्टि पा ले, जिसमें तेरे लिए देह सहित जगत का लोप हो जाए। तभी तुझे जीव-सृष्टि से बाहर निकलने का द्वार दिखाई दे जाएगा।''

समाधि-दर्शन, अभावमय आनन्द की स्थिति है, जहाँ देह सहित जगत की सीमित सीमाओं का कुछ भी नहीं होता, वहाँ जीवात्मा को अपनी असीमता की झलक मिल जाती है। जीव-कोटि में जन्मों- जन्मान्तरों में पापों-पुण्यों, सम्बन्धों, सुखों-दुःखों, भय-त्रास, धर्मों-कर्मों-कर्तव्यों, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप एवं आवरण में भटकते-भटकते किसी भी स्थिति में वह देह की असीम शक्ति से अपने ईश्वर से सम्पर्क साध सकता है। देह सहित सीमित जगत की सीमाओं का उल्लंघन एवं अतिक्रमण करके ही असीम मानसिक शक्ति का सदुपयोग सम्भव है। इसके लिए इसे अपनी देह सहित समस्त साकार जगत की सीमित शक्तियों का तहे-मन एवं रूह से समर्पण करना होगा। तभी अपना वह असीम क्षेत्र इसे नज़र आएगा और यह परमात्मा के साथ अपने अद्वैत में द्वैत एवं अंश-अंशी भाव की अनुभूति कर पाएगा।

हमें मानव-देह धारण करके यदि देहाभास, देहाधिपत्य एवं देहाध्यास है, लेकिन **ईश्वराभास** नहीं है, तो यह जीवन की जड़ता है। मानव-देह मिलना ही जीवन नहीं है। जीव+न अर्थात् मैं जीव नहीं जीवात्मा हूँ, इस दिशा में जिया गया जीवन ही मानव-जीवन है। निद्रा से उठ कर किसी भी प्रकार से समाधि में होने पर **ईश्वराभास** होगा। इसलिए सद्‌गुरु कहता है—**'उत्तिष्ठ ! जाग्रत' !** ''तू निद्रा से उठ गया है, अब उठ कर अपनी समाधि की मानसिकता का आभास करेगा, तो तू जाग्रत हो जाएगा। शवाभास करेगा, तो अमरत्व को प्राप्त हो जाएगा और भस्माभास से तुझमें

शिवत्व प्रकट हो जाएगा।'' परम सद्‌गुरु-कृपा से जब हम देह की उन स्थितियों, जिनमें देह **'मैं'** लगाने की स्थिति में नहीं होती, उनका आभास करते हैं, तो हमारी विशुद्ध **'मैं'** (जीवात्मा) जाग्रत होने लगती है। जीवात्मा (**'मैं'**) सदा जाग्रत ही है, लेकिन देह के साथ तद्‌रूपतावश नाम-रूप की अवचेतना में जीव-कोटि में आ जाती है।

जीव-कोटि में देह सहित जगत में चेतना (**'मैं'**) की मुख्य तीन अवस्थाएँ हैं—जड़ता, अवचेतना और चेतना। जड़ता और चेतना में बाह्य रूप से बहुत समानता सी है। निद्रा जड़ता है और समाधि चेतना है। (**'जागृति भाग–1'** में इसका सविस्तार वर्णन हुआ है)। जब मैं गहन सुषुप्ति में होता हूँ, उस समय **'मैं'** देह रूप में नहीं होता। मुझे अपने घर-परिवार, सन्तान, पति-पत्नी, अन्य सम्बन्ध, धर्म-कर्म-कर्तव्य, देश-काल, लिंग, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, लाभ-हानि, मान-अपमान, उन्नति-अवनति, माया के तीनों गुण और साकार देह से सम्बन्धित किसी साकार अथवा निराकार विधा का कोई ज्ञान नहीं होता। इसे शास्त्र ने जड़ता कहा है; जो देहधारणा में जीव की निम्नतम स्थिति है। **'मैं'** सुषुप्ति से उठता हूँ, तो मैं मात्र एक नाम-रूप की देह ही होता हूँ। उस एक देह के साथ जगत भी होता है, परन्तु **'मैं'** जगत रूप में नहीं होता। यदि होता भी हूँ, तो नाम-रूप की एक देह पर आधारित छोटे से जगत के रूप में होता हूँ। देह के साथ तद्‌रूपतावश सुषुप्ति मैं (चेतना) की जड़ता है और निद्रा से एक देह के रूप में उठना और समस्त जगत को अपने से पृथक् मानना देह की अवचेतना में भी निम्नतम स्थिति है। देह और जगत कालबद्ध एवं साकार है और **'मैं'** अकाल व निराकार हूँ। जब **'मैं'** देह रूप में ही होता हूँ, तो वह ममतामयी, करुणा व सौहार्द्रमयी, सुरभित, सुगन्धित, सौन्दर्यमयी, ज्ञानमयी, ख्यातियुक्त, ऐश्वर्यमयी देह सद् से असद् हो जाती है। **'मैं'** अपने अभावमय-आनन्द स्वरूप से वंचित होकर अभाव **में** आता हुआ विकृत हो जाता हूँ। इसी में कर्मबन्धन, पाप-पुण्य, वैर, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, रोग-दोष, काम-क्रोध, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप, आवरण, लोभ, मोह और अहंकार आदि विकृतियाँ हैं।

सुषुप्ति और सुषुप्ति से उठने के बीच में कुछ क्षण विस्मृति की सी अवस्था रहती है। पहले **'देहाभास'** होता है, फिर देहाधिपत्य और फिर देहाध्यास के साथ ही उस समय का जगत प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार **शैशव** में शिशु को **देहाभास** होता है, उसे न देहाधिपत्य होता है, न देहाध्यास होता है। बाल्यावस्था में देहाधिपत्य होता है, लेकिन देहाध्यास नहीं होता। अवचेतनामयी देह सहित जगत का प्राकट्य देहाध्यास होने पर ही होता है। अतः देहाधिपत्य एवं देहाध्यास का मूल देहाभास है। गहन सुषुप्ति से किसी को उठाया जाए, तो उसमें कभी-कभी काफी देर तक मात्र देहाभास रहता है, लेकिन वह स्वयं को और किसी को पहचानने की स्थिति में नहीं होता।

निद्रा से उठने पर देह उठी, तो **'मैं'** (देह के साथ तद्‌रूप जीव) **देहमयी ही** हो गई। इसलिए सद्‌गुरु कहता है, ''अब **'जाग'**। सुषुप्ति की जड़ता में **'देह'** सोई तो तूने स्वयं को सोया हुआ मान लिया। अवचेतना में देह ने कुछ किया, तूने स्वयं को कर्ता मान लिया। देह थकी तूने स्वयं को थका हुआ मान लिया। देह के साथ तद्‌रूपता में देह की हर अवस्था एवं स्थिति के साथ तूने स्वयं को परिवर्तित होता मान लिया। तू परमात्मा का अंश जीवात्मा है जो स्वयं में चेतन एवं अपरिवर्तनीय है। **'निद्रा'** से उठकर तू कहेगा, कि **'मैं'** सोया था, लेकिन **'शव'** बनकर तू उठ नहीं सकेगा। मृतक यह नहीं कहेगा, कि मैं मरा था, मैं शव था। मैं सोया था या मैं सोऊँगा, मैं मरूँगा, मैं भस्मी बनूँगा। **'मैं मरा था, मैं भस्मी बना था,** यह कहने में नहीं आता। मूर्च्छावस्था, सुषुप्ति, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था का **'वर्तमान'** किसी ने नहीं देखा। **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं वर्तमान से परे कालातीत है। जिसका वर्तमान नहीं है, उसका भूत और भविष्य कैसे हो सकता है?

अवचेतना क्या है? जब निद्रा से उठकर **'मैं'** मात्र देहमयी ही हो गई, तो एक देह के साथ तद्‌रूपता में **'मैं'** भूल गया, कि साथ ही प्रकट हुआ जगत भी **'मैं'** हूँ और **'मैं'** स्वयं को भूल गया, कि **'मैं'** जीवात्मा हूँ, देह नहीं हूँ। इसलिए यही अवचेतना है। यह **'मैं मयी'** होती तो चेतना होती और देह के साथ जगतमयी भी होती, तो भी चेतना होती। जब एकान्त या समाधि

स्थिति में मैं देख लूँगा, कि देह और जगत के होते हुए भी न मैं देह हूँ, न जगत हूँ तो पाऊँगा कि तीनों (मैं, देह, जगत) का अस्तित्व **एक** (परमात्मा) ही है। दो दर्शन हैं—एक **'मैं'** का दर्शन, एक **'तू'** का दर्शन। जागृति में हमें स्वयं का दर्शन होता है, कि नाम-रूप की देह से हमारी अपनी पहचान ही मिथ्या है। नाम-रूप की देह मिथ्या नहीं है, क्योंकि इसके उठने के बाद ही सद्‌गुरु-कृपा से **'मैं'** (देह के साथ तद्‌रूप जीव) जाग्रत हो सकता है। देह रूप में जब उठते हैं, तो प्रारब्ध अथवा किस्मत काम करती है। **जागृति कृपा-साध्य है। जागृति का कारण और परिणाम सब कृपा है।** जागना ही कर्म है जो मात्र कृपा-साध्य है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(24एवं 28 जुलाई, 2008)

जागृति
(भाग – 3)

अध्यात्म की यात्रा देह-चिन्ता से नहीं, देह-चिन्तन से प्रारम्भ होती है। देह-चिन्ताओं का अध्यात्म में कोई स्थान नहीं है। देह-चिन्तन अर्थात् नाम-रूप की अवचेतना में विभिन्न नाम-रूपात्मक साकार जगत मेरे (जीवात्मा के) लिए प्रकट होता है, जिसमें मेरी एक नाम-रूप की देह भी है। उस समय वह देह युगों-युगान्तरों की प्रकट या अप्रकट समस्त साकार माया का प्रतिनिधित्व करती है और आधार भी होती है। यह देहसहित जगत अवचेतना में है। इसमें मैं कौन हूँ? मेरी देह सहित जगत, जिस देह में है, मेरी वह देह कौन सी है? उस देह में मेरा आकार, वज़न, धर्म, लिंग, गुण-अवगुण, आयु, व्यापार-कारोबार क्या है? यह देह-चिन्तन है। यह देह-चिन्तन इसी एक नाम-रूप की देह में होता है। वह देह पंच-महाभूतों की हाड़-माँस की देह न होकर मानस-देह है। लेकिन वह देह मेरे ख्याल व ख्वाब में काल की तीनों विधाओं (समय, स्थान, स्थिति) और समय के तीनों रूपों (भूत, भविष्य, वर्तमान) में जो कुछ भी है, या नहीं है, उसका भी साक्षात् प्रतिनिधित्व करती है।

अवचेतना में स्वयं को देह के नाम-रूप से पहचाना, तो जगत साथ होगा ही। जगत को स्वयं से पृथक् नहीं मान सकते। देह की अवचेतना में होते ही साथ-साथ एवं तदनुसार उस समय का देह सहित जगत स्वतः प्रकट होता है। इसलिए निराकार **'मैं'** (जीवात्मा) जगत सहित देह अथवा देह सहित जगत के रूप में साकार में प्रकट होता हूँ। मेरी एक साकार देह

उस समय के समस्त जगत का आधार होते हुए, प्रतिनिधित्व भी करती है। परमात्मा मेरे लिए नित नूतन देह सहित जगत प्रकट करता है और यह प्राकट्य मेरे हाथ में नहीं है। **'मैं'** जीवात्मा हूँ और यह देह सहित जगत मेरे लिए है। यहाँ सब कुछ करने-कराने वाला परमात्मा है। मानव होने के नाते मुझे दृष्टा रूप में यह देखना है, कि यह देह व जगत क्यों व कैसे मेरे लिए है। **'मैं'** इस सद् की अनुभूति कर लूँ, कि यह नाम-रूपात्मक साकार जगत अवचेतना में है, तो मुझे सद् व चेतना की अनुभूति होनी प्रारम्भ हो जाएगी। किसी चोर को यह ज्ञान हो जाए, कि वह चोर है और चोरी दुर्गुण है, तो इसका अर्थ है, कि उसका विकार समाप्त होना प्रारम्भ हो गया है। मैं अवचेतना द्वारा देह सहित जगत की अवचेतना से बाहर आ सकता हूँ। क्योंकि देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में तद्रूपता मेरा जीव सृष्टि में भ्रम है। मैं चेतन जीवात्मा हूँ। चेतना की अवचेतना में भी बहुत शक्ति है। अवचेतना को सिद्ध करने में चेतना सिद्ध हो जाएगी।

हमारा कोई भी कृत्य व्यक्तिगत नहीं है। देह में और देह द्वारा स्वतः कर्म होते हैं। जीवन-काल में जब तक श्वास चलती है देह के भीतर असंख्य और अगणित दैहिक कार्य-प्रणालियाँ एवं अवयव अविरल, सुसम्बद्ध एवं संतुलित रूप से क्रियाशील रहते हैं, जिनका स्वयं में कोई कर्ता नहीं बन सकता। कोई नहीं कहता, कि मैं अपने दिल की धड़कन चलाता हूँ, खाना पचाता हूँ, शरीर में रक्त संचार करता हूँ, पसीना निकालता हूँ आदि-आदि। देह रूप में **'मैं'** देह के भीतर अदृश्य रूप से एवं ज्ञात-अज्ञात चल रही इन दशानन (अविरल, अबाध, अकाट्य, निरन्तर, चिरन्तन, सारगर्भित, विशिष्ट, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यपूर्ण) क्रियाओं का कर्ता नहीं बनता। इनके संतुलित एवं सुसम्बद्ध चलने के कारण ही मेरी बाह्य दैहिक क्रियाएँ होती हैं—लिखना, पढ़ना, पढ़ाना, उठना, बैठना, प्रेम करना, क्रोध करना, चलना, नृत्य करना, संगीत, गायन, वादन और जो कुछ भी साकार देह से प्रकट हो रहा है, मैं भ्रमवश उनका कर्ता बनकर अवचेतना (तथाकथित जागृति) एवं जड़ता (सुषुप्ति) में जन्म-दर-जन्म भटकता रहता हूँ।

दुर्लभ मानव-देह में मानव-जीवन जीने के लिए जीवन का लक्ष्य इस दिशा में रखना आवश्यक है, कि मैं अन्ततः अपने कुल जीवन **से** क्या चाहता हूँ? What do I want out of life? To know that I have to get out of life, during life. उस स्थिति का नाम एकान्त है। देह के साथ नाम-रूप में तद्रूप सा होकर एक से अनेक और अनेकानेक होने में **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं अनेक (नेकी रहित) हो गया। एकान्त द्वारा मुझे अपने विशुद्ध स्वरूप की अनुभूति करनी है। जब **'मैं'** एक (देह) होता हूँ तो साथ ही स्वतः प्रकट अनेक (उस समय के जगत में प्रकट या अप्रकट अन्य नाम-रूप) भी होते हैं और अनेक होते हैं, तो **'मैं'** एक (देह) अवश्य होता हूँ।

कोई नहीं कह सकता, कि मैं रेगिस्तान में बिल्कुल अकेला था; वहाँ मेरे अलावा कोई नहीं था। **'मैं'** यदि एक देह रूप में था, तो अनेक थे ही। उस समय के जगत में कोई प्राणी न हो, लेकिन पृथ्वी, आकाश, वायु तो अवश्य ही होंगे। यदि वह रेगिस्तान है तो उसमें रेत भी होगी, कोई छोटा-बड़ा पेड़-पौधा और कीड़ा-मकौड़ा भी होगा। मेरे दिल-दिमाग की कोई सोच, कोई ख्याल, भूत की किसी घटना की स्मृति, भविष्य की कोई योजना-परियोजना आदि रूपों-अरूपों में जो भी होता है, वह मेरा उस समय का जगत (अनेक) होता है। किसी भी प्रकार से प्रकट अथवा अप्रकट जगत तब होता है, जब मैं देह के नाम-रूप की अवचेतना में होता हूँ। उस एक-अनेक (अनेक सहित **'एक'** और **'एक'** आधारित अनेक) में मैं मात्र एक देह के रूप में ही जन्मों-जन्मान्तरों में, युगों-युगान्तरों से धक्के खा रहा हूँ।

जब मैं अपनी देह की अवचेतना में होता हूँ, तो उस समय प्रकट या अप्रकट समस्त जगत का आधार मेरी एक देह होती है। मैं भ्रमवश, एवं देहाध्यासवश जगत को पृथक् मान लेता हूँ। देहें अलग-अलग हैं और असंख्य हैं। मेरे **'स्व'** (Individual) का हर कृत्य मेरे **'सर्व**' (Totality) की वजह से होता है। इस **'सर्व'** में दैहिक भीतरी **'सर्व'** और देह पर आधारित समय-समय का बाह्य जगत दोनों आ जाते हैं। सुषुप्त देह की भीतरी समस्त कार्य प्रणालियाँ सुसम्बद्ध चलती रहती है, लेकिन देह **'मैं'** लगाने की स्थिति

में नहीं होती। देह जब **'मैं'** लगाने की स्थिति में होती है, तभी बाह्य क्रियाएँ करने योग्य होती है और **मैं** देह रूप में कर्म करने योग्य हो जाता हूँ। लेकिन उस समय के जगत के बिना **'मैं'** कोई छोटे से छोटा कार्य भी नहीं कर सकता।

मेरा विशुद्ध स्वरूप निराकार है और मेरी देह सहित जगत की समस्त साकार विधाओं से परे है। देह सहित जगत के रूप में, **'मैं'** (जीवात्मा) साकार रूप में प्रकट होता हूँ। एक विशिष्ट समय में विशिष्ट ख्याल और सोच होती है। विभिन्न नाम-रूपों में जगत प्रकट होता है, जिसमें एक नाम-रूप की मेरी देह भी होती है। इसमें **मैं** कौन हूँ? **मैं** मौसम हूँ अथवा जड़ पदार्थों में से कोई हूँ। **मैं** वह एक नाम-रूप की देह नहीं हूँ, यदि हूँ, तो सब कुछ **मैं** ही **मैं** हूँ। विभिन्न मानसिक स्थितियों में देह के रूप में मेरा रूप बदलता रहता है। तो मेरा स्थिर स्वरूप क्या है?

स्थिर को जानने के लिए स्थिर होना पड़ता है। स्थिर दो प्रकार के हैं— एक **समर्थ स्थिर** होता है, जिसका संकेत मात्र पर्याप्त होता है दूसरा **असमर्थ स्थिर** होता है, उसमें चलने की शक्ति ही नहीं होती। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन व संहार सर्व समर्थ ईश्वर का भृकुटि विलास है। जीवात्मा इसका दृष्टा है। यह स्थिर से स्थिर का संगम है, दोनों परस्पर परिपूरक हैं। जीवात्मा, परमात्मा से कहता है, कि ''प्रभु ! तुम स्थिर हो, मैं भी स्थिर हूँ। तुम्हें चलने की आवश्यकता नहीं है, मैं चल सकता ही नहीं।'' जब **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं में पूर्णतः आश्वस्त हो जाता हूँ, कि मैं चलने में अशक्त हूँ, तो मेरी अपनी गतियाँ समाप्त हो जाती हैं। स्वयं में परम असमर्थ होकर **'मैं'** (जीवात्मा) उस परम समर्थ **'तू'** (परमात्मा) के चरणों में पड़ा रहूँ, यही मेरा कर्म है।

सद्गुरु चिरकाल से अज्ञान और देहाभिमान की मोह-निद्रा में सुषुप्त जीवात्मा को झिंझोड़ कर उठाता है और फिर जगाता है—**''उत्तिष्ठ ! जाग्रत !''** सद्गुरु कहता है, कि ''तू निद्रा से उठा, तो देह रूप में सक्रिय हो गया। तूने भ्रमित अवस्था में स्वयं को वह एक देह ही समझ कर जगत को

अपने से पृथक् मान लिया और तू वह कर्म करने लगा, जो तेरे जगत के बिना हो ही नहीं सकता था। स्वयं को जगत के बिना मात्र एक देह समझते हुए और वास्तव में जगत सहित होते हुए जो कर्म तेरे द्वारा होंगे, तू अकेला उन कर्मों का कर्ता कैसे बन सकता है? तेरे **'स्व'** (देह रूप में एक) के साथ **'सर्व'** (जगत रूप में अनेक) स्वतः, साथ-साथ, तदनुसार प्रकट हुआ। उसमें तू देह रूप में अकेला कर्ता बन गया। जो कार्य **'सर्व'** (जगत रूप में अनेक) सहित तेरे **'स्व'** (देह रूप में एक) से होगा, वह तू कर नहीं सकता। वह स्वतः ईश्वरीय इच्छानुसार होता है। इस प्रकार तथाकथित जागृति में सक्रिय होने में तेरे प्रारब्ध और समस्त दुःखों-सुखों की अन्तहीन श्रंखला जन्मों-जन्मान्तरों से चल रही है। इस कड़ी को तोड़ने के लिए तुझे वास्तव में जागना होगा।''

सद्गुरु कहता है, कि ''तूने एक से अनेक और अनेकानेक का तमाशा बहुत देख लिया। तू अपनी एक देह से समस्त जगत को पृथक् मानता है। मैं तुझे इसी **'एक'** (देह) से **'एकान्त'** में ले जाऊँगा। अनेक और अनेकानेक तेरी इसी **'एक'** (देह) की अवचेतना होने पर प्रकट होते हैं। तू इसी **'एक'** (देह रूप) से अनेक में अस्तव्यस्त होने की बजाय एकान्त (एक+अन्त) की मानसिक स्थिति में जा।'' एकान्त की मानसिक स्थिति में **'मैं'** एक देह रूप में नहीं होता, इसलिए जगत (अनेक) भी नहीं होता, लेकिन **'मैं'** स्वयं (जीवात्मा स्वरूप में चेतन) होता हूँ। एकान्त स्वयं में स्वतः ही अनेकान्त भी है। निद्रा जड़ता है और एकान्त या समाधि, चेतना **(मैं)** की जागृति है। यह अभावमयी आनन्दमय स्थिति **'मैं'** (जीवात्मा) का विशुद्ध स्वरूप है। सद्गुरु अपने शिष्य के भावानुसार उसे एकान्त या समाधि में ले जाता है।

देह के साथ तद्रूपता सी में जीवात्मा **('मैं')** अपनी पहचान खो बैठा। किसी जन्म में विशिष्ट सद्गुरु-कृपा से अपनी चेतना की चाहत इसका एक लक्ष्य एवं जनून बन जाती है। यह आर्तनाद करता है, कि ''हे प्रभु ! मैं तेरे दीदार का हक हमेशा के लिए खो चुका हूँ, क्योंकि मैं स्वयं अपने को खो चुका हूँ। लेकिन मैं यह अवश्य जान गया हूँ, जो **'मैं'** (देह) हूँ, वह **'मैं'** नहीं

हूँ। अतः मैं जानता हूँ, कि मैं नहीं जानता, कि मैं कौन हूँ। साथ ही मैं यह भी जानता हूँ, तुम अवश्य जानते हो, कि मैं कौन हूँ। अब कृपा करके मुझे मेरा दीदार करा दे।''

''मुझे तुमने अपनी सृष्टि में सर्वोत्कृष्ट, विशिष्ट रहस्यमयी एवं परम चमत्कारिक मानव-देह दी है। यह मेरे पास थी नहीं और हमेशा रहेगी नहीं, लेकिन अब यह मेरे साथ है। **यह देह भी तेरी है और मैं भी तेरा हूँ।** अब तू मुझ पर दया कर। इस पहचान के बिना, तू यदि मुझे सारे महाब्रह्माण्ड का एकछत्र सम्राट भी बना देगा, तो भी मैं अतृप्त, असंतुष्ट एवं आसक्त ही रहूँगा। तुमने मुझे मानव-देह के साथ पूरा ब्रह्माण्ड दिया, चौरासी लाख माया की विधाएँ अथवा चैनल दिए। जब-जब तुमने मुझे देह दी, साथ ही जगत भी दिया। मात्र एक देह नहीं, सम्पूर्ण कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड इस देह के साथ तूने मेरे लिए बनाए हैं। इनका कोई सदुपयोग करना तो **'मैं'** जानता ही नहीं, मैं उपयोग करना भी नहीं जानता। आजतक जो मैंने किया है, वह दुरुपयोग ही किया है और आगे भी जो करूँगा, वह दुरुपयोग ही होगा। क्योंकि मैं मात्र दुरुपयोग करना ही जानता हूँ। इसलिए अब मेरी ओर से तुम इसका सदुपयोग करो, ताकि **'मैं'** स्वयं को पहचान सकूँ।''

भ्रमवश देह के साथ तद्रूपता सी में यह खोया हुआ जीवात्मा, (जीव सृष्टि में) है। इसे मानव-देह, एक **साधन** के रूप में मिली है। अपने विशुद्ध स्वरूप की सिद्धि, इसका साध्य है और इसके लिए **श्रद्धा एवं समर्पण** उसकी शक्ति है। सद्गुरु इसकी साधना का दिशा निर्देशन करता है। सद्गुरु कहता है, कि ''तू एक से अनेकों में बिखरता ही चला गया है। अब तू अनेकों से पहले **'एक'** (देह) में सिमट। इसे अच्छी तरह से जान ले और मान ले तथा सद्गुरु-कृपा से अनुभूति कर ले, कि देह रूप में तू **'एक'** होता है, तो ही अनेक होते हैं। जब प्रकट या अप्रकट रूप से अनेकों में कोई एक अथवा अनेक होते हैं, तो प्रकट अथवा अप्रकट रूप में तेरे **'एक'** (देह) का होना आवश्यक है। तू अपनी देह-धारणा का सदुपयोग कर। तूने देहाध्यास कर लिया, तो देह-धारणा पर एक और धारणा कर ले, कि मैं देह हूँ तो जगत

है, जगत है, तो मैं एक देह हूँ ही। तू मात्र एक देह नहीं है, तू जगत सहित है। तू पहले यह जान ले, कि तू कितना फँसा हुआ है। तू फँसने में भी अधूरा है। तेरी मानसिकता बहुत प्रदूषित है। तू आश्वस्त हो जा, कि यदि तू देह है, तो जगत भी तू ही है। समस्त जगत का आधार, देह के साथ तेरी नाम-रूप की अवचेतना में पहचान है।''

सुषुप्ति में **'मैं'** एक देह रूप में नहीं होता, इसलिए तद्नुसार जगत रूप में भी नहीं होता; साथ ही स्वयं **'मैं'** (जीवात्मा) रूप में भी नहीं होता। क्योंकि जीवात्मा (**मैं**) सदा जाग्रत ही है और साकार देह सहित जगत से परे निराकार एवं अदृश्य चेतन तत्त्व है। साकार देह रूप में मैं (अमुक-अमुक नाम-रूप) जब रात्रि 11 बजे सोने लगा था, तो उठा हुआ था और सुबह 5 बजे जब सोकर उठा, तो मैंने फिर स्वयं को उठा हुआ ही देखा। बीच की स्थिति में स्वप्न आया और इसी में चला तथा समाप्त हो गया। स्वप्न में **'मैं'** मात्र देह रूप में ही उठा हूँ, जगत मुझसे पृथक् है। स्वप्न में मैं जगत रूप में नहीं हूँ और स्वयं में **'मैं'** रूप में भी नहीं हूँ। सद्गुरु ने तभी विशुद्ध **'मैं'** को उठा दिया, तो **'मैं'** (जीवात्मा) ने देखा, कि न मैं देह हूँ, न मैं जगत हूँ। स्वप्न सृष्टि का यह एक देहधारी ही स्वयं को **'मैं'** क्यों कह रहा है, कि मेरे साथ ऐसा हुआ। यदि **'मैं'** के साथ एक देह लगाई है, तो उस समय का जगत भी लगाए। क्योंकि देह रूप में सब कुछ **'मैं'** ही **'मैं'** हूँ और वास्तव में **'मैं'** न देह हूँ, न जगत हूँ।

'मैं' निराकार, अदृश्य एवं अकाल है और देहें सब साकार, दृश्यमान और काल (स्थान, समय एवं स्थिति) से बँधी हैं। देह रूप में एक की ही सुषुप्ति है। एक का स्वप्न है और एक ही **'मैं'** (मैमयी देह) के रूप में जाग्रत हूँ। स्वप्न-सृष्टि में मुझ एक के लिए, एक से अनेक कहाँ से आ गए? स्वप्न की इस एक देह ने **'मैं'** को क्यों लगाया? अब **'मैं'** मात्र उठा नहीं, बल्कि सद्गुरु-कृपा से **जाग** गया। यदि मात्र एक देह के साथ **'मैं'** को लगाता है, तो वह जीवात्मा की जीव-सृष्टि है। इस प्रकार **'मैं'** (जीवात्मा) ने जब उठ कर और जाग्रत होकर स्वप्न का विश्लेषण किया, तो मुझे अपनी विशुद्ध **'मैं'**

का ज्ञान हो गया। जिस निद्रा में वह स्वप्न उभरा, चला और समाहित हो गया, उसमें **'मैं'** (जीवात्मा) न देह था, न जगत था। इसलिए मैंने जान लिया, कि वह देह और जगत मेरे लिए ही थे। स्वप्न-सृष्टि की **'मैं'** को देह रूप में **'मैं'** नहीं, **'मैं'** रूप में जगत सहित समष्टि देह होना चाहिए, क्योंकि उस एक देह के स्वप्न से निकलते ही समस्त साकार स्वप्न-सृष्टि निद्रा में समाहित हो गई। जहाँ साकार देह सहित जगत की कोई विधा नहीं थी। **'मैं'** (जीवात्मा) यदि स्वप्न दृष्टा है, तो उसे पहले निद्रा-दृष्टा होना आवश्यक है। निद्रा-दर्शन समाधि स्थिति है, जो मेरी (जीवात्मा की) एकान्त की स्थिति है। जहाँ से वह स्वप्न में एक से अनेक हुआ था, सद्‌गुरु वहीं से उसे एकान्त की स्थिति में ले जाता है।

सद्‌गुरु कहता है, कि "निद्रा, शव और भस्मी भी तेरी देह की स्थितियाँ हैं, इनमें से कुछ भी देख ले, तू एकान्त की मानसिक स्थिति में प्रविष्टि पा लेगा। अन्य किसी भी स्थिति में देह तेरा पीछा नहीं छोड़ेगी और यदि तेरी एक देह होगी, तो उसके साथ अनेक अवश्य होंगे। जिन स्थितियों में तेरी देह वर्तमान में **'मैं'** न लगा सके, उनमें से किसी भी स्थिति से तद्‌रूपता में ही तू अपने निराकार चेतन स्वरूप की अनुभूति कर सकता है। देह होगी, तभी तू देह की उन स्थितियों की अवधारणा कर सकता है। तेरी देह की भस्मी अवश्य बनेगी। अतः तू देह के उस निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य की अवधारणा कर, कि मैं भस्मी हूँ, मैं अग्नि हूँ। भस्मी स्वयं में तेरे लिए नहीं है, लेकिन जब देहधारणा में भस्मी या अग्नि की अवधारणा तेरी धारणा बन जाएगी, तो तेरी देह धारणा हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगी। तेरी **'मैं'** जाग्रत होकर देखेगी, कि मैं न देह हूँ न जगत हूँ। उसके बाद जब तू स्वप्न-सृष्टि में आएगा, तो तेरी देह **'मैं मयी'** हो जाएगी। पहले स्वप्न में तेरी **'मैं' 'देह मयी'** हो गई थी और तुझे जगत पृथक् भासने लगा था और स्वप्न में तुझे वह स्वप्न नहीं लग रहा था। अब तू जाग्रत होकर देह सहित जगत की स्वप्न-सृष्टि का दृष्टा होगा।"

जितना पाप-पुण्य, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, उत्थान-पतन, ईर्ष्या-द्वेष,

वैर-वैमनस्य, स्पर्धा-कटुता, रोग-दोष, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप, आवरण आदि हैं, वे जीव-भाव में रची जीव-सृष्टि में हैं। जिसने देह और जगत को **'मैं'** मान लिया वह देह **'मैं'** मयी हो जाती है। वही सद् देह है और मानव-देह का यही स्वरूप है तथा यही **'मैं'** की जागृति है। **'मैं मयी'** देह (One in all) का अस्तित्व **'मैं'** (जीवात्मा) है और **मैं मयी 'मैं'** (None in all) का अस्तित्व **'तू'** (परमात्मा) है। यदि मैं देह हूँ, तो जगत भी **'मैं'** हूँ और देह सहित जगत की समस्त कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का खेल करने वाला, डिज़ाइन करने वाला **'तू'** (परमात्मा) है। **'तू' 'तू'** है, **'मैं' 'मैं'** हूँ। **'तू'** है तो **'मैं'** हूँ और **'मैं'** मात्र दृष्टा हूँ। अपने इस **'सद्'** स्वरूप की अनुभूति ही मानव-जीवन का लक्ष्य है।

इस सिद्धि के बाद जीवात्मा (**'मैं'**) स्वयं को पहचान लेता है, कि मैं निर्विकार, निर्लेप विशुद्ध जीवात्मा परमात्मा का अंश हूँ। यहाँ से विशुद्ध आत्म-चिन्तन प्रारम्भ होता है। आत्म-चिन्तन के बाद आत्मानुभूति होती है। आत्मानुभूति के साथ ब्रह्म-चिन्तन होता है और फिर अन्ततः ब्रह्मानुभूति होती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(30 जुलाई, 2008)

उत्तरोत्तर

ईश्वरीय संरचनाओं की प्रस्तुति एवं अधिग्रहण—आरम्भ, मध्य एवं अन्त तीनों आयामों में आनन्दमय होता है। आरम्भ से अधिक महत्त्वपूर्ण अन्त है। सारा दिन भटकते हुए कुछ प्राप्ति न होने पर भी यदि रात्रि में चिन्तामुक्त विश्रामदायक निद्रा मिल जाए, तो समझो कि दिन अच्छा बीता है :—

''आग़ाज़ को कौन पूछता है, अन्जाम अच्छा हो ज़िन्दगी का''

अन्तिम परिणाम आनन्दमय हो, यही वास्तविक सफलता है। हम मानव अपनी देह के दौरान होश में आकर होश जाने तक, जो कुछ भी करते हैं, पाते या खोते हैं अथवा जो कुछ भी होता है, वह अन्ततः **'शून्य'** (भस्मी) में विलीन हो जाता है। सम्पूर्ण मानव-देहावधि (निराकार व साकार) के मैंने से पाँच मुख्य खण्ड किए थे। **पहला खण्ड**—प्रारम्भारम्भ, निराकार एवं अकाल है। माँ के गर्भ में एक अदृश्य प्रायः बिन्दु स्वरूप **'भ्रूण'** से 9 महीने में देह का निर्माण हुआ। यह कार्य पूर्णतः ईश्वर के ही अधीन था अर्थात् देह का निर्माणकर्ता मात्र ईश्वर ही है। हम मानव अपनी होश में जिस देह का एक बाल एवं एक नाखून तक नहीं बना सकते, वह पूरी देह एक कोशिका से मेरे लिए बनी और मुझे बनी-बनाई मिली। यह सबसे अधिक चमत्कारिक एवं परम रहस्यमय कार्य था। **दूसरा खण्ड**—जन्म से मेरे होश में आने तक है, जिसमें देह का पालन-पोषण, वस्त्र, भोजन, चिकित्सा, शिक्षा-दीक्षा आदि की व्यवस्था किसी भी प्रकार और किसी से भी ईश्वर के द्वारा करवाई गई। **तीसरा खण्ड**—होश आने से होश जाने तक मेरी होश का है, जिसमें मैं स्वयं

निर्णय ले सकता हूँ, परामर्श दे सकता हूँ और कार्य कर सकता हूँ। **चौथा खण्ड**—मेरी होश जाने से देह के चिता तक पहुँचाए जाने का है। यह होश चाहे किसी भी कारणवश जीवन-काल में ही चली जाए अथवा मेरी मृत्यु हो जाए। दूसरे खण्ड की भाँति यह समस्त व्यवस्था भी ईश्वर के द्वारा किसी भी प्रकार और किसी से भी करवाई गई। **पाँचवे खण्ड** में अग्नि दहन द्वारा देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। पहले खण्ड की ही भाँति यह कार्य भी पूर्णतः ईश्वराधीन ही है।

सम्पूर्ण देह (निराकार एवं साकार) की विभिन्न विधाओं के ये पाँच क्षेत्र हैं, जिनमें मेरी होश का एक खण्ड **'मात्र'** मध्य में है। पहले दो खण्ड और बाद के दो खण्डों में मेरी अपनी होश की कोई भूमिका नहीं होती। लेकिन तीसरे (होश वाले) खण्ड में **'मैं'** (जीवात्मा) भ्रमित हो गया। प्रभु ने यह होश मात्र मानव को ही दी, जो फँसने के लिए नहीं, बल्कि ईश्वरीय मायिक संरचनाओं की आनन्दमय प्रस्तुति एवं अधिग्रहण करते हुए मायातीत व देहातीत होने के लिए दी थी।

सम्पूर्ण मानव-देह के काल में यदि यह मध्य का तीसरा मेरी विशिष्ट होश वाला खण्ड न होता, तो पशु और मानव में कोई अन्तर ही न होता। ईश्वर ने यह खण्ड विशेष रूप से मानव को दिया, कि "ए मानव ! तुझे मैंने अपनी मायिक सृष्टि की परम चमत्कारिक एवं सर्वोत्कृष्ट सुकृति मानव-देह दी है, तू यह सोच, कि सब कुछ कर-करवा **'मैं'** (ईश्वर) ही रहा हूँ। यह देह तेरी नहीं है, क्योंकि इस देह का तू एक बाल भी नहीं बना सकता। मैंने तुझे विशेष चेतनायुक्त बुद्धि दी है, तू इससे सोच-सोच और सोच एवं आश्वस्त हो जा, कि तेरे हाथ में कुछ नहीं है। कोई कृत्य तू व्यक्तिगत रूप से कर ही नहीं सकता। तेरे कृत्य करने के लिए तेरी देह की समस्त आन्तरिक कार्य प्रणालियों का सुसम्बद्ध और व्यवस्थित संचालन एवं क्रियान्वयन मेरे हाथ में है। तेरा हार्ट, किडनी, लिवर आदि की भाँति तेरी बुद्धि भी मैं चला रहा हूँ। यह तू अपनी बुद्धि से सोच, कि मैं तुझसे सुचवा रहा हूँ। यह देह जब चाहे मैं वापिस ले जाऊँगा और इसे जैसे मैं चला रहा हूँ, वैसे ही चलेगी। तू इस पर अधिपत्य व

अध्यास मत कर। तेरे ये सम्बन्ध क्यों हैं, कोई तुझसे कब व क्यों मिलता है और कब व क्यों बिछुड़ता है, तू नहीं जानता। मैंने तुझे विशेष होश दी है, जो साकार देह-काल के मात्र मध्य वाले खण्ड में है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पंच-महाभूतों से सुसज्जित सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र, नदियाँ, प्रपात, झरने, पृथ्वी की सोने-हीरे की खाने, रत्न, मोती, खग, मृग, जलचर पूरा संसार मैंने तेरे लिए बनाया है। तू इनमें से एक वृक्ष की पत्ती, घास का एक तिनका तक नहीं बना सकता। फूलों की ड्राईंग तू कर सकता है, उनमें सुगन्ध नहीं भर सकता।

सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड के प्रपंच में जो माया है, उसका एक तिनका तक तेरे अधीन नहीं है। पंच-महाभूतों की शक्ति, संचालन, प्रतिपादन, सम्पादन कुछ भी तेरे हाथ में नहीं है। मेरे द्वारा दी गई विशेष होश में अपनी बुद्धि से इसके बारे में यदि तू आश्वस्त नहीं हो पा रहा है, तो मैं सम्पूर्ण देह का अन्तिम परिणाम तुझे स्पष्ट दिखा रहा हूँ। यह परिणाम मैंने तथाकथित तेरी देह के बाहर रखा है। वह है—**डेढ़ दो किलो भस्मी**। आजीवन तेरे सब कुछ करने-कराने का जो परिणाम है, वह यह **शून्य** ही है। कोई राजा हो या रंक, मिल-मालिक हो या मज़दूर, मकान-मालिक हो या किराएदार, स्त्री हो या पुरुष, देश का हो या विदेश का हो, भक्त हो या ठग, वृद्ध हो, युवा हो या बालक, नेता हो या अभिनेता सबका अन्तान्त भस्मी ही है। सबकी भस्मी एक ही है। तू देह काल **में** अपने जितने भी भविष्य खड़े कर ले, लेकिन जो सब भविष्यों का भविष्य है, वह यह भस्मी ही है। जिसका भविष्य, अतीत, वर्तमान सब भस्मी ही है। इस समस्त मायिक संसार में जो कुछ बना-बनाया है, वह **'मैं'** (ईश्वर) ही हूँ। जो कुछ हो रहा है वह मुझ **'एक'** के द्वारा, मेरे लिए, मेरा खेल है। सबका निर्माता, पालनकर्ता और विलीन करने वाला केवल **मैं** और **मैं** (ईश्वर) ही हूँ। समस्त देहों का निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य मात्र एक भस्मी ही है।''

अज्ञानवश **'मैं'** (देह से तद्‌रूप हुई जीवात्मा) ने जीवन को एक तथाकथित **'कर्तव्य'** मान लिया। मुझे कुछ बनना है अथवा मुझे कुछ बनाना है का कर्ताभाव मुझमें पनपने लगा। यह होश का सरासर दुरुपयोग था, जो

मेरी अधोगति एवं अनर्थ का कारण बना।

देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपतावश, वह जगत जो मेरे नाम-रूप की अवचेतना में आने पर, देह के साथ स्वतः, साथ-साथ एवं तदनुसार बना-बनाया प्रकट हुआ था, उसमें देह के साथ लगाव होते ही जगत में अलगाव हुआ। इस अलगाव के कुछ अंश में स्वार्थवश, आसक्तिवश, जाने-अनजाने लगाव हुआ, तो लगाव दर लगाव और अलगाव दर अलगाव परिपुष्ट हो गया (विस्तार के लिए देखें **'लगाव-अलगाव'** शीर्षक प्रवचन)। आगे, और आगे और उत्तरोत्तर बढ़ने की चाह ने जीवन को सुख, शान्ति, संतोष, स्वजन, स्वास्थ्य एवं सत्संग से वंचित कर दिया। मैं यह भूल गया, कि जो होश आई है, एक दिन अवश्य जाएगी। मैं मृत्यु को देखते हुए भी अनदेखा करता रहा। मृत्योपरान्त बनने वाली भस्मी निश्चित, दर्शित और परिलक्षित थी, इसलिए जीवन रूपी प्रश्न का उत्तर शून्य आना आवश्यक था।

आज मैं इष्ट-कृपा से अध्यात्म के गहनतम और मात्र श्रुतिगम्य परम रहस्य को अत्यधिक सरल करके आप समस्त जिज्ञासुओं के सम्मुख रख रहा हूँ, कृपया एकाग्र करें। जीवन-काल **में** असंख्य भविष्य हैं। कई बार हम एक ही समय में बहुत से भविष्यों में विचरते हैं। एक भविष्य पूरा नहीं होता, दूसरा खड़ा हो जाता है। हमारी असंख्य आसक्तियाँ एवं चाहतें कोई न कोई भविष्य बना कर खड़ा करती रहती हैं। हम मानव, आजीवन ईश्वर-प्रदत्त समस्त भौतिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियों को जहाँ तक हो सके उन्हीं अनिश्चित एवं पुनः परिवर्तनीय भविष्यों को पूरा करने में लगाए रखते हैं। इसी को अपनी कर्मठता एवं अपने होने की सार्थकता मानते हैं। जीवन **में** ये समस्त प्रश्न अन्तहीन हैं, जिन्हें अक्सर हम अपनी बुद्धि से सुलझाना चाहते हैं।

परीक्षा-पत्र में बहुत से प्रश्न होते हैं और उनके अंक निश्चित होते हैं। किसी भी प्रश्न का उत्तर उसके हल करने के बाद आता है। गणित के पेपर में हर प्रश्न के पूरे नम्बर सही उत्तर आने पर मिलते हैं। यदि उत्तर में सही अंक नहीं आए, तो परीक्षक ज़ीरो नम्बर दे देता है। बहुत बड़े गणित के प्रश्न की कई सोपानों में गणनाएँ होती हैं। उसमें कुछ जमा, घटा, गुणा व भाग

आदि गणनाएँ होती हैं, अन्ततः उत्तर महत्त्वपूर्ण है। उसका सही आना आवश्यक है। मध्य की समस्त गणनाओं की सार्थकता तभी है। किसी प्रश्न का उत्तर चार है और उसके अंक दस हैं, तो यदि प्रश्न का उत्तर चार आएगा तभी दस अंक मिलेंगे। यह नहीं कि ज़रा सी गलती से उत्तर **'दो'** आया तो अंक कम से कम पाँच तो मिलें। इस हिसाब से तो यदि उत्तर आठ आ गया, तो प्रश्न में दस में से बीस नम्बर मिलने चाहिए, जो कि असम्भव है।

मानव-जीवन भी गणित की प्रश्नावली के समान है, जिसमें हर प्रश्न का उत्तर ज़ीरो है। इसलिए सारी प्रश्नावली अन्ततः शून्य में समाहित हो जाती है। प्रभु ने सम्पूर्ण मानव-जीवन रूपी प्रश्नावली के समस्त प्रश्नों के उत्तरों का उत्तर **'भस्मी'** सबको प्रत्यक्ष दिखा दिया है। यह **उत्तरोत्तर** भस्मी रूप में शून्य ही है। परीक्षक ने, सबका उत्तर ज़ीरो है, यह पहले ही घोषित किया हुआ है। हमने एक प्रश्न हल किया, विचार करके मध्य की समस्त गणनाएँ कीं और अन्ततः यदि उत्तर ज़ीरो नहीं आया तो ज़ीरो नम्बर मिलेंगे। कोई भी मानव-बुद्धि जीवन रूपी गणित की प्रश्नावली का कोई भी प्रश्न स्वयं सुलझा नहीं सकती। उत्तर प्रश्न के बाहर होता है। जीवन-काल में की जाने वाली गणनाओं का उत्तर अन्त में ज़ीरो आना आवश्यक है। जीवन-काल में हमारी कोई भी योजना-परियोजना, धन-सम्पदा, आकांक्षा-महत्त्वाकांक्षा, शैक्षिक पृष्ठभूमि, पद-प्रतिष्ठा और आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक स्तर पर विभिन्न कृत्यों का प्रारूप उस शून्य (भस्मी) को दृष्टि में रखकर होना चाहिए, जो देहातीत या देह के बाहर है।

देह रूपी साधन के दौरान जो जीवन हम जीते हैं अथवा आजीवन जो भी करते या करवाते हैं, उसका उत्तर जीवन से बाहर है। जब जीवन का अन्त हो जाता है, तो मृत्योपरान्त अन्तान्त में शेष भस्मी बचती है। **'भस्मी'** क्योंकि समस्त उत्तरों का उत्तर (**उत्तरोत्तर**) है, इसलिए जीवन-काल में जो भी कृत्य हों, हमें देखते रहना होगा, कि उनका उत्तर ज़ीरो आए। **उत्तरोत्तर** शून्य होने के लिए हर उत्तर शून्य होना आवश्यक है, नहीं तो नम्बर ज़ीरो मिलेंगे और जीवन असफल हो जाएगा।

मान लो परीक्षा-पत्र में दस प्रश्न हैं और हरेक के दस-दस अंक हैं। परीक्षक ने प्रश्नों के उत्तर पहले ही घोषित कर दिए हैं, कि हर प्रश्न का उत्तर ज़ीरो आना चाहिए। ज़ीरो उत्तर आएगा, तो उस प्रश्न में पूरे दस नम्बर मिलेंगे, नहीं तो दस में से ज़ीरो मिलेगा। इसके बाद जब अगला प्रश्न हल करेंगे, तो आपकी वृत्ति पहले प्रश्न में भी बनी रहेगी, कि सवाल गलत हो गया है। अगले प्रश्न को करते समय भी बीच-बीच में मन ही मन उसके बारे में सोचते रहेंगे, कि गलती कहाँ हुई होगी ! शेष प्रश्न अभी हल करने भी हैं। अतः इस प्रकार आपकी एकाग्रता भंग हो जाएगी और उसी अस्त-व्यस्त मनःस्थिति में शेष प्रश्न करेंगे। इस अन्यमनस्क स्थिति में जब दूसरा प्रश्न किया, तो उसका उत्तर भी ज़ीरो नहीं आया। इस प्रकार हमारी मानसिकता विश्रंखलित होती रहती है।

जीवन में जो हमारी सोलह हज़ार एषणाएँ हैं, उनकी चाहतों के लिए हम जो तत्परता और कर्मठता करते हैं, उसके द्वारा जो कुछ भी पाना चाहते हैं, सबका उत्तर ज़ीरो है। प्रभु ने मानव-देह व जीवन प्रश्न रूप में नहीं दिया, जिसे सुलझाना हो और उत्तर निकालना हो। संसार व जीवन एक सुन्दरतम सुलझा हुआ नज़ारा है, जो मेरे (जीवात्मा के) मनोरंजन के लिए पिता परमात्मा द्वारा रचा गया है। यह शून्य से शुरू होकर शून्य में समाप्त हो जाता है। प्रभु ने मुझे मानव होने के नाते देह के तीन **'सद्'** दिखा कर खेल खेला है। **पहला,** ''ए मानव ! मैंने तुझे समस्त चराचर सृष्टि में अपनी उत्कृष्टतम् संरचना मानव-देह दी है। यह देह Duty Free, Maintenance Free, Tax Free और अति रहस्यमय एवं महाचमत्कारिक है।'' इस बात को हर मानव समझता है। क्योंकि बुरी से बुरी एवं अत्यन्त दुःखद स्थिति में भी वह प्राण दे देगा, लेकिन पशु-पक्षी या जानवर बनना पसंद नहीं करेगा। उसे ज्ञान है, कि मानव-देह से बेहतर कोई देह नहीं है। **दूसरा,** ''यह देह निश्चित अवधि से बँधी है, जिसे **मैं** (ईश्वर) तुझे नहीं बताऊँगा और यह उपहार नहीं है, क्योंकि कभी भी अपनी इच्छा से मैं इसे तुझसे छीन लूँगा।'' **तीसरा,** ''जीवन-काल में करना-पाना-खोना-होना, जो भी हो रहा है, मेरी

(ईश्वर की) इच्छा से हो रहा है। तू जो भी कर-करा रहा है, वह भी मैं ही करवा रहा हूँ। तेरे समस्त जीवन की Turn over का Over turn निश्चित रूप से डेढ़-दो किलो भस्मी है, जो तेरा निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है। तू सम्राट होगा अथवा भिखारी दोनों रूपों में वह भस्मी एक सी ही होगी।''

ज्ञात-अज्ञात रूप से उपर्युक्त तीनों तथ्यों से प्रत्येक मानव भली-भाँति अवगत है। सब जानते हैं, कि जीवन कभी भी समाप्त हो सकता है। इसलिए उत्तर कभी भी शून्य आ सकता है, जो किसी को न पता है और न हो सकता है। जन्मों-जन्मान्तरों में हम प्रारब्धवश कर्ताभाव के कारण कर्म-बन्धन में फँसे हुए हैं। हम करते रहते हैं और मरते रहते हैं, लेकिन उत्तर ज़ीरो नहीं निकाल पाते। देह, काल से बँधी है, लेकिन इसका उत्तर स्वयं में देह के बाहर (देहातीत) और कालातीत है। देह में काल का साम्राज्य है। यह काल भी स्वयं में अकाल से बँधा है, क्योंकि हर समय, देह की हर स्थिति और हर स्थान कालेश्वर के हाथ में है।

तीव्र आई-क्यू (I.Q.) बुद्धि के मानव, जीवन में उत्तरोत्तर (शून्य या भस्मी) को उपेक्षित करते हैं। इसलिए कर्ताभाव के कारण हर कर्म में शून्य उत्तर को भी उपेक्षित करते हैं। वे हर कर्म के बदले कुछ न कुछ चाहते हैं, ज़ीरो नहीं चाहते। मैंने इतनी मेहनत की, मुझे कुछ न कुछ मिलना ही चाहिए। इनमें कुछ कर्मठ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो रोज़ उत्तर शून्य निकालने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन निकाल नहीं पाते। कहीं न कहीं वे गलती कर बैठते हैं। सब कुछ ईश्वर निमित्त करते हुए वे चाहते हैं, कि उत्तर ज़ीरो आए, लेकिन उन्हें यह कला नहीं आती। कुछ विवेक बुद्धि वाले मानव उस उत्तरोत्तर को ध्यान में रखते हैं और उसी के अनुसार जीवन जीते हैं। कुछ मेधावान और प्रज्ञावान उस महा उत्तरोत्तर को पकड़ लेते हैं और तदनुसार जीवन जीते हैं। वे विभिन्न परिस्थितियों, स्थितियों रूपी प्रश्नों को उस उत्तरोत्तर ज़ीरो को दृष्टि में रखकर हल करते हैं। वे जीवन में नित्य जो भी करते हैं उसे मानसिक रूप से शून्य करके ही रात्रि की निद्रा में जाते हैं।

ईश्वर का भक्त इनमें सबसे विलक्षण होता है। वह प्रश्न का हल ही नहीं करना चाहता। उसकी यही प्रार्थना होती है, ''हे प्रभु ! आज तक तूने मुझे दृष्टा बनाया, अब तुम मेरे दृष्टा बनो। तुमने इस बार भी मुझे परिणाम में ज़ीरो देनी है साथ में सज़ाएँ भी दोगे; क्योंकि मैं फिर प्रश्नों को हल करते हुए उनका उत्तर ज़ीरो नहीं निकाल पाऊँगा। इसलिए मेरी वह **ज़ीरो** मुझे पहले दे दो, मैं प्रश्नों का हल ही नहीं करता। तुम जानते हो मुझे प्रश्न हल करने नहीं आते, अब मेरी ओर से तुम करो।'' भक्त इस प्रकार अपनी अन्तिम प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता है कि, ''हे प्रभु ! मैं बल, बुद्धि, विद्याहीन असमर्थ, अशक्त, तन-मन-धन हीन हूँ, मुझे कुछ नहीं आता। आप इसके चश्मदीद गवाह हैं। जन्मों-जन्मान्तरों में बहुत कुछ कर-करके मैं सही उत्तर ज़ीरो नहीं ला पाया और मैं परिणाम में असफल हुआ तथा साथ में बहुत सी सज़ाएँ भी पाईं। अब मेरी वह ज़ीरो (परिणाम) मुझे पहले दे दो और मेरी ओर से यह जीवन तुम जीओ। मैं देखना चाहता हूँ, कि तुम उत्तर ज़ीरो कैसे निकालते हो। मैं सारा जीवन प्रश्नों में उलझा रहता हूँ, किसी का उत्तर ज़ीरो नहीं निकाल पाता। उलझे-उलझे ही मेरा जीवन समाप्त हो जाता है। उलझा-उलझा ही दोबारा पैदा होता हूँ। बार-बार मैं प्रारब्ध में और-और जकड़ा जाता हूँ।''

''मुझे आपकी दी हुई देह, काल, स्थान, समय एवं स्थिति का कुछ भी ज्ञान नहीं है। तुमने अपने इस मायिक प्रपंच की उत्कृष्टतम, सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह मुझे दी है, लेकिन मैं इसका सदुपयोग तो क्या उपयोग भी नहीं करना जानता, मात्र दुरुपयोग जानता हूँ। जो जानता हूँ, वही तो करूँगा और उलझते-उलझते फिर मेरा परिणाम वही होगा जो आज तक होता आया है। तुम्हारे ये प्रश्न बहुत ही दुर्गम व कठिन हैं। अपनी ज़ीरो पहले लेकर मैं फिर यदि कुछ करूँगा भी तो आनन्द से करूँगा, क्योंकि वह परिणाम वाली ज़ीरो मेरा आनन्द बनाए रखेगी।'' यह भस्मीयोग या लययोग है, कि ''हे प्रभु ! जो मेरी देह का अन्तान्त (भस्मी) है, उससे तुम कृपा करके मुझे जीवन में आत्मसात् करवा दो। इसके बिना हर प्रश्न मैं गलत ही

करता रहा हूँ और आगे भी करता रहूँगा। क्योंकि देह धारणा के कारण मुझे शून्य (भस्मी) की धारणा नहीं हो पाती। सम्पूर्ण जीवन के इस उत्तरोत्तर (भस्मी) के बिना हर समय देह व जीवन में कुछ न कुछ पाना चाहता हूँ।'' इसके लिए सम्पूर्ण समर्पण परमावश्यक है।

महापुरुष कभी अगले दिन के लिए किसी कार्य का संकल्प लेकर नहीं सोते, क्योंकि उत्तरोत्तर शून्य (भस्मी) है। कोई भी श्वास अन्तिम हो सकती है। किसी स्वप्न में मैंने कोई उच्च पद प्राप्त किया हो, हीरे जवाहरात कमाए हों, चुनाव जीता हो तो सुबह उठकर मेरे पास उसका क्या शेष रहा? स्वप्न की जड़तामयी अवचेतना से जब मैं तथाकथित जागृति की अवचेतना में आया, तो मुझे वह स्वप्न स्मृति में आया। वह स्मृति मात्र एक मानसिक स्थिति के रूप में मेरे साथ चिपकी रहती है। जैसेकि पिछले प्रश्न का उत्तर ज़ीरो न आने के कारण अगला प्रश्न हल करते हुए उसकी मानसिक स्थिति बनी रहती है कि ''मेरा पहला सवाल गलत हो गया है, मुझसे कहाँ गलती हुई होगी।''

इसलिए यदि मैं जीवन को प्रश्न मानता ही हूँ, तो इसके उत्तर ज़ीरो को पहले धारण करना होगा, कि ''मैं भस्मी हूँ।'' इस भस्मी रूप शून्य को दृष्टि में रखकर जब प्रश्न करूँगा यानि जीवन में होश का सदुपयोग करूँगा, तो जीवन प्रश्न ही नहीं रहेगा। The answer of the question (life) was out of the question, if I accept that during question (life) the question will be out of question.

जीवन भौतिक निरन्तरता नहीं है। जीवन-काल में प्रकट साकार जगत के प्रपंच की जितनी स्मृतियाँ हैं, वे हमें भ्रमित करती हैं। उसकी स्मृति से जो मनोभाव उभरता है, वह इस समय हमारे वर्तमान को प्रभावित करता है। इसका अर्थ है, कि इस समय हमारे लिए उन स्थितियों रूपी प्रश्नों का उत्तर ज़ीरो नहीं है। हम जानते हैं, कि वे स्थितियों रूपी प्रश्न भिन्न थे, उनका करने वाला भिन्न था। उस समय जो भी उत्तर आया, वह वहीं समाप्त हो गया। हमारी देह, वह देह नहीं है जो उस समय थी और आगे वह नहीं रहेगी, जो इस समय है। प्रभु ने हमें जीवन के साथ समस्त उत्तरों का

उत्तर (उत्तरोत्तर) शून्य (भस्मी) दिखा दिया है। तो हम इस प्रपंच में अपने लिए क्या चाह रहे हैं?

हम सब होश सम्भालते ही हर प्रकार से धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा, परिवार, नाम-यश, डिग्रियाँ, प्रौपर्टी आदि सबकी उत्तरोत्तर वृद्धि चाहते हैं और इसी में अपनी कर्मठता एवं सफलता मानते हैं। हम सब जानते हैं, कि उत्तरोत्तर **'भस्मी'** है। मानव होने के नाते प्रभु ने यह सबको स्पष्ट दिखाया है, कि ''तेरा निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य भस्मी है और तेरे जीवन की अवधि तेरे लिए अज्ञात और अनिश्चित है। अतः वह भस्मी कभी भी बन सकती है और तब जिसे तू अपनी उत्तरोत्तर वृद्धि मान रहा है, उसमें से कुछ भी तेरे लिए नहीं रहेगा। यदि तू उस भस्मी रूप उत्तरोत्तर को सम्मुख रखकर कार्यरत है, कि तेरे सब लाभ-हानियाँ, लेखे-जोखे आदि उत्तरोत्तर की ओर जा रहे हैं, तो यही तेरे लिए उत्तरोत्तर वृद्धि है।''

ईश्वर ने देह व जीवन के समस्त प्रश्नों का उत्तर और उन उत्तरों का उत्तर देहातीत रखा है। आजीवन जो भी प्रश्न हैं, जो पाया-खोया-किया या हुआ उसका अन्तान्त (अन्त का अन्त) भस्मी है। उसे दृष्टि में रखकर हम चलें, मानव जीवन का रसास्वादन तभी सम्भव है।

''बोल सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(29 दिसम्बर 2008 एवं 1 जनवरी 2009)

संहार-श्रंगार

कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का जितना भी साकार मायिक प्रपंच है, उसका प्रकाट्य अवचेतना में होता है। यह प्रपंच असंख्य नाम-रूपों में तभी प्रकट होता है, जब जीवात्मा, नाम-रूप की अवचेतना में देह के साथ तदरूप सा होता है। देह और जगत **अवचेतना** में है और अवचेतनामय है। **जड़ता** (स्वप्न-रहित सुषुप्ति) में देह व जगत होता है, लेकिन मुझे उसका आभास नहीं होता एवं मुझे स्वयं (जीवात्मा स्वरूप) का भी आभास नहीं रहता। चेतना में देह और जगत का मुझे आभास सा होता है और मुझे मेरा (अपने विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप का) पूर्ण आभास होता है। मानव-देह धारण करके जितने भी कष्ट-रोग-दोष, आधि-व्याधि-उपाधि और ज्ञात-अज्ञात एवं परोक्ष-अपरोक्ष रूप से जितनी भी हम सजाएँ भुगत रहे हैं, वे समस्त **'प्रारब्ध-भोग'** तथा जन्म-दर-जन्म मानवीय दुःखों की श्रंखलाएँ, मात्र '**अवचेतना**' में हैं। '**चेतना**' में यह सब नहीं है और '**जड़ता**' में होते हुए भी इनका आभास नहीं है। जिस प्रकार कोई रोगी दर्द से तड़प रहा हो और उसे निद्रा का इन्जैक्शन लगा दिया जाए, तो अस्थाई रूप से उसे दर्द का आभास नहीं रहेगा। वह जड़ सा हो कर सो जाएगा, लेकिन उसका रोग दूर नहीं होगा।

'मैं देह हूँ' यह अध्यास अवचेतना में है और अवचेतना में ही जन्म-मृत्यु, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, जरा-रोग, मान-अपमान, उन्नति-अवनति, यश-अपयश, नियम-मर्यादाएँ, रीति-रिवाज, शुभ-अशुभ, धर्म-कर्म-कर्तव्य, देश-काल, सम्बन्ध, लिंग और माया के तीनों गुणों का साम्राज्य है। जिसे यह ज्ञान हो जाए, कि देह सहित जगत प्रपंच है, वही

अवचेतना में प्रकट प्रपंच का रसास्वादन करते हुए, आनन्द ले सकता है। कोई कलाकार अथवा फिल्म अभिनेता अपनी फिल्म में कोई भी किरदार निभाए उसे देखते हुए; उसका भरपूर आनन्द लेता है। इसी प्रकार संसार महानाट्यशाला में प्रकट प्रपंच भी मात्र मनोरंजन और विलास के लिए है। प्रपंच देखने के लिए अवचेतना आवश्यक है, लेकिन उसके रसास्वादन एवं आनन्द के लिए चेतना में आना आवश्यक है। वह चेतन स्थिति से हर बनावट का रसास्वादन करता है।

समस्त प्रपंच का आधार, एकमात्र प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप मानव-देह के साथ **'मैं'** (जीवात्मा) अवचेतना में तद्रूप सा हो गया। इस तद्रूपता सी में ही मुझे देह की धारणा हो गई, कि मैं देह हूँ। अवस्था, स्थिति, स्थान, समय की दृष्टि से, मेरी तथाकथित एक देह में असंख्य देहें हैं। मेरी देह सम्पूर्ण माया की एक मात्र प्रतिनिधि, आधार एवं संघनित स्वरूप है। अवचेतना में प्रपंच प्रकट हुआ। जो प्रकट होता है, उसका पालन होता है और जो पालित होता है, उसका संहार अवश्य होता है। प्रकट प्रपंच में तीन गतिविधियाँ हैं – निर्माण, पालन और संहार। **'मैं'** (जीवात्मा) ने अवचेतना में एक देह से, देह की असंख्य विधाओं में मात्र निर्माण और पालन के साथ तद्रूपता की। विधि के विधाता की दो विधाओं निर्माण (ब्रह्मा) और पालन (विष्णु) के साथ जन्म-दर-जन्म मेरी देह धारणा परिपुष्ट होती रही। काश ! मैं यह बन जाता, काश ! मुझे यह और मिल जाता। **मैं** आसक्तियों को लेकर पुनः-पुनः जन्मता-मरता रहा, लेकिन जीवन-काल में संहार को भूला ही रहा।

अपने वर्तमान में हम सब कुछ न कुछ सोचते, करते, करवाते रहते हैं। जितने भी दैहिक, बौद्धिक एवं मानसिक कृत्य वर्तमान में हमारे द्वारा होते हैं, वे अतीत अथवा भविष्य अथवा दोनों को लेकर होते हैं। कभी अतीत प्रधान होता है, कभी भविष्य प्रधान होता है। जो कुछ हमारे साथ बीता, उसकी पूर्ति के लिए अथवा अतीत के अनुभवों पर हमारी भविष्य की योजनाएँ बनती हैं। जीवन में भविष्य जो हमने खड़े किए हैं, वे हमारी कल्पना ही होते हैं। लेकिन

उनके प्रति जब हम कृत-संकल्प होते हैं, तो हम उन भविष्यों को ढोकर चलते हैं। उन्हें धारण किए बिना हम कोई कृत्य नहीं करते। हम अपने बच्चों का पालन-पोषण भी उनसे सम्बन्धित भविष्य खड़ा करके करते हैं। उस भविष्य के प्रति हमारा जितना लगाव है, वह हमारे कृत्यों की गुणात्मकता को निर्धारित करता है। हमारे अतीत और भविष्य का मिला-जुला प्रारूप हमारे कृत्यों में देखा जा सकता है, यही हमारा जीवन है। चाहे हम किसी शोकग्रस्त अवस्था में भी हों, हर वर्तमान में एक भविष्य हमारे सम्मुख खड़ा रहता है। करना-पाना-खोना-होना, इसी में हम आजीवन असंतुष्ट के असंतुष्ट रहते हैं। अन्ततः हम किसी न किसी आसक्ति को लेकर मर जाते हैं।

देह की तीसरी विधा (संहार अथवा भस्मी) निश्चित, परिलक्षित व दर्शित है, **'मैं'** (जीवात्मा) ने उसकी उपेक्षा की। यदि देह के संहार के साथ धारणा कर लेता, तो होश आ जाती, कि जीवन में और कुछ मिले न मिले, मैं देह रूप में कुछ बन सकूँ, या न बन सकूँ मेरी देह की भस्मी अवश्य बनेगी। किसी ने अपना संहार देखा नहीं है, लेकिन मानव होने के नाते सबको पूर्ण ज्ञान है, कि संहार अवश्य होगा और कभी भी हो सकता है। निर्माण और पालन **का** निश्चित भविष्य एक संहार (भस्मी) है तथा निर्माण एवं पालन **में** असंख्य भविष्य हैं। यदि संहार को न भूलकर उसके साथ भी तद्रूपता करता, तो मैं चेतनामयी स्थिति से अवचेतना में प्रकट मायिक प्रपंच देखता और उसका रसास्वादन करता। अवचेतना में मेरी हर बनावट और परिवर्तन मेरे मनोरंजन के लिए होता।

निर्माण और पालन की समस्त बनावटें, असंख्य चाहतें एवं रूप एक संहार (भस्मी) में समाप्त हो जाते हैं। संहार अवश्य होगा। सद्‌गुरु-कृपा से जीवन-काल में देह-धारणा के दौरान, इसकी भस्मी की अवधारणा से देह में किसी भी परिवर्तन की चाह नहीं रहती और देह की परिवर्तनशीलता का सद् अनुभूतिगम्य हो जाता है। जीवन **का** भविष्य एक ही है—वह देहातीत है। जीवन **में** भविष्यों से हम बँधे रहते हैं और जीवन **का** भविष्य चिन्तन में

लाते ही सारे बन्धन खुलने लगते हैं। जीवन जीने के लिए देह ही साधन है। जीवन में जितने भविष्य हैं, उनका उल्लंघन करके मानव, जब देह के देहातीत भविष्य **भस्मी** पर एकाग्र करता है, तो सदगुरु-कृपा से उसे जीवन जीने का वास्तविक लक्ष्य मिल जाता है।

देह सहित साकार जगत में तीन मुख्य मानसिकताएँ हैं। गहन सुषुप्ति में, **'मैं'** (जीवात्मा) अपनी एक देह की अवचेतना में नहीं होता इसलिए जगत रूप में अनेक भी मेरे लिए नहीं होते। साथ ही मुझे इसकी होश भी नहीं होती, कि मुझे अपनी एक देह और अनेकों की अवचेतना नहीं है। इसलिए सुषुप्ति **'जड़ता'** है। स्वप्न, इसी जड़तामयी अवचेतना में आता है। जड़ता से प्रस्फुटन के कारण स्वप्न का कोई सिर-पैर नहीं होता। ऊतपंटाग सी घटनाएँ एवं स्थितियाँ होती हैं, जिनका कोई तारतम्य नहीं होता। स्वप्न में मैं कहीं का कहीं पहुँच जाता हूँ। निद्रा से उठते ही मैं अपनी एक देह की अवचेतना में आता हूँ, तो तुरन्त उस समय की मानसिक स्थिति या मायिक चैनल के अनुसार अनेक नामरूपों में जगत भी प्रकट हो जाता है। इसका प्रस्फुटन अवचेतना से होता है। चेतना का आच्छादन अवचेतना है। अवचेतना के विभिन्न स्तर होते हैं। कुछ लोग अवचेतना में पूर्णतः जड़ से होते हैं, वे केवल अपनी देह के सुख-दुखों और अपने लाभ को लक्ष्य बनाकर जीवन जीते हैं। जितनी ईर्ष्या, द्वेष, वैर, वैमनस्य, स्पर्धा, शत्रुता आदि है, वह अवचेतना के इस निम्न स्तर में है। इस तथाकथित जागृति का उनका यह जीवन भी रात्रि के स्वप्न की भाँति बिखरा हुआ, ऊतपंटाग और लक्ष्यहीन होता है। कभी कुछ करेंगे, कभी कुछ कहेंगे, दूसरे ही क्षण बिलकुल विपरीत क्रियाएँ और वक्तव्य होंगे। इस प्रकार जो मैं अपनी एक देह सहित अनेक में देख रहा हूँ, वह मेरी अवचेतना का सपना है। इसमें भी प्राप्ति मुझे कुछ नहीं होती। बहुत कुछ करता हूँ, करवाता हूँ, पर अन्ततः हाथ कुछ नहीं आता। कभी दोस्त, दुश्मन बन जाते हैं, कभी पहले जो पराए लगते थे, अपने लगने लगते हैं। इसी अवचेतना में कुछ लोगों की चेतना का स्तर बढ़ा हुआ होता है। वे अपने साथ परिवार, समाज, देश और विश्व का भला भी सोचते हैं। लेकिन अवचेतना

का सब कुछ स्वप्नवत् होता है। अति गहनतम परम रहस्यमय और मात्र श्रुतिगम्य अध्यात्म के विशिष्टतम सूत्र को आज मैं इष्ट-कृपा से आप समस्त जिज्ञासुओं के सम्मुख बहुत सरल उदाहरण देकर अनावृत कर रहा हूँ, कृपया एकाग्र करें।

हम सब रोज़ सोते हैं और सपने भी देखते हैं। हर सपना निद्रा से प्रस्फुटित हो कर निद्रा में चलता है और निद्रा में ही समाहित हो जाता है। **निद्रा जड़ता है**। इस जड़ता में किंचित अवचेतना के स्पर्श से अर्थात् जड़तामयी अवचेतना से स्वप्न-सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है और कुछ देर चल कर लय हो जाता है। एक स्वप्न को जीवन के एक एपीसोड की तरह मान लो, जिसके चारों ओर निद्रा का सागर है। वह सपना निद्रा रूपी सागर में एक जहाज के समान उभरा और लीन हो गया। हर स्वप्न का अपना पृथक् भूत व भविष्य, उस समय के वर्तमान की सापेक्षता में होता है। स्वयं में निद्रा का न कोई वर्तमान है, न अतीत है और न कोई भविष्य है। निद्रा का वर्तमान, भूत एवं भविष्य सपना नहीं है। निद्रा स्वयं में अकाल है। **'जहाज'** सागर नहीं है। स्वप्न रूपी जहाज के चहुँ ओर निद्रा रूपी सागर ही सागर है। जहाज, सागर में है लेकिन सागर के आगे, पीछे, दाएँ, बाएँ जहाज नहीं है, सागर ही है।

इसी प्रकार भस्मी रूपी सागर में मेरी (जीवात्मा की) देह सहित जगत रूपी जहाज है। इस देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भस्मी'** है। जिसका भविष्य है, उसका निश्चित, परिलक्षित, दर्शित वर्तमान और अतीत भी होना चाहिए। देह का भविष्य भस्मी है और उस भस्मी का कोई भविष्य नहीं है, क्योंकि उसका अतीत देह नहीं है। उस भस्मी का भविष्य, वर्तमान, अतीत सब भस्मी ही है। भस्मी स्वयं में भविष्यातीत एवं अतीत्यातीत है, इसलिए **'अकाल'** है। **'भस्मी'** काल की विधाओं में समय के भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों रूपों का वर्तमान होते हुए भी वर्तमानातीत है। मेरी (जीवात्मा की) सम्पूर्ण देह का अतीत भस्मी है और इस भस्मी रूप अतीत का भविष्य **'देह'** नहीं है। इसलिए मेरी सम्पूर्ण देह (प्रारम्भारम्भ से अन्तान्त तक) का

वर्तमान भी भस्मी ही है। इसलिए देह का निश्चित, परिलक्षित दर्शित वर्तमान और अतीत भी भस्मी ही है। जहाज के मध्य में, आगे, पीछे चहुँ ओर सागर है। वह सागर अनादि-अनन्त है। इसलिए संहार (भस्मी) श्रंगार ही श्रंगार है।

जड़तामयी अवचेतना और अवचेतना के स्वप्नों के अतिरिक्त एक तीसरा स्वप्न है, जो स्वप्नों को तोड़ता है और जगा देता है। यह चेतना का स्वप्न है, जोकि मेरी (जीवात्मा की) स्मृति भगवती है। मेरी देह अलंकृत हो जाती यदि मैं (जीवात्मा) संहार रूपी श्रंगार को पहले धारण कर लेता। देह धारणा के रहते जीवन-काल में जहाँ भस्मी की अवधारणा होगी, वहाँ देह धारणा हट जाएगी और भस्मी की अवधारणा, धारणा बन जाएगी। वह देह **'मैं मयी'** दिव्य, विदेह देह हो जाएगी और जीवात्मा के लिए देह सहित जगत का स्वप्न, **'निद्रामय'** हो जाएगा। वह निद्रा जागृति होगी, क्योंकि उसमें ज्ञान होगा, कि जो मैं देख रहा हूँ, वह स्वप्न है। स्वप्न देखते समय स्वप्न तब लगेगा, जब मैं स्वप्न के श्रंगार **'निद्रा'** (संहार) को आत्मसात् कर लूँगा। सद्गुरु की कृपा से तब मैं एक से एकान्त में पहुँचा दिया जाऊँगा, वहाँ मैं देहरूप में '**एक**' नहीं हूँगा तो '**अनेक**' भी नहीं होंगे, लेकिन **मैं** (जीवात्मा रूप में) एक तो होऊँगा ही। उस समय मैं एक (देह) से एक (जीवात्मा) रह जाता हूँ। यह एक, अनेक वाला नहीं बल्कि मेरा एक वास्तविक स्वरूप होगा, जहाँ न देह होगी, न जगत होगा। वहाँ **मैं** एक जीवात्मा, एक परमात्मा के सम्मुख हो जाऊँगा। यह परमात्मा के साथ मुझ जीवात्मा का **अद्वैत में द्वैत सा** होता है। फिर केवल बस उसी के श्रवण, मनन, चिन्तन, प्रवचन एवं दर्शन की दीवानगी हो जाती है।

सम्पूर्ण प्रपंच निराकार शिव-शक्ति-क्रीड़ा के आनन्द का प्रकाट्य है। शिव की तीनों विधाओं ब्रह्मा (निर्माण), विष्णु (पालन), महेश (संहार) का मूल, महेश (शिव) है। संहार (भस्मी) से तद्रूप होने की चेष्टा करता हुआ मैं समस्त प्रपंच (पंच-महाभूतों पर आधारित) में देह सहित समस्त साकार व निराकार जगत का आनन्द लेता। यह समस्त प्रपंच जो मेरे निराकार का साकार में प्रकाट्य था; वह मेरी क्रीड़ा-स्थली होता। देह का दिगम्बर तत्त्व

भस्मी है। जिसने जीते जी उसे धारण कर लिया, वह देह को वस्त्र के समान उतार देता है और जब चाहे धारण कर लेता है। **'भस्मी'** अस्तित्व है और **'देह'** समस्त मायिक प्रपंच का आधार है। अस्तित्व शिव है, महेश है, शंकर है। ब्रह्मा और विष्णु, वही बना है।

संहार को भूलकर **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयंभू निर्माणकर्ता और पालनकर्ता बन गया। निर्माण और पालन मेरी अवचेतना थी और संहार मेरी चेतना होती। संहार से आत्मसात् होने के लिए निर्माण और पालन आवश्यक था। यदि निर्माण और पालन न होता तो संहार कैसे पकड़ता। अतः संहार ही श्रृंगार है। प्रपंच में जितना आकर्षण, सौन्दर्य, सुसज्जा, शोभा, ख्याति, ऐश्वर्य, ज्ञान, विरक्ति, शक्ति, अलंकरण और संकर्षण है उसका मूल एवं कारण संहार है। निर्माण और पालन प्रपंच **में** है और संहार प्रपंच **का** है। पंच-महाभूतों से चर-अचर जगत का निर्माण होता है और निर्मित का पंच-महाभूतों द्वारा ही पालन होता है। जीने के लिए श्वास, जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, खनिज आदि चाहिए। चलने के लिए धरती चाहिए, आकाश में ग्रह-नक्षत्र आदि चाहिएँ। अठारह प्रकार की अग्नियों से जगत का पालन होता है। पंच-महाभूतों में प्रपंच का विलय संहार है। निर्माण और पालन का तमाशा या नाटक मात्र संहार के अधिग्रहण के लिए है। इसीलिए देह मिली है।

'मैं देह हूँ' 'देह मेरी है' यह भाव **'मोह'** का मूल है यहीं से समस्त राग-द्वेष, प्रेम-घृणा, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-वैमनस्य का वृक्षृपल्लवित होता है। भगवान शंकर का चिन्तन इस मोह को निर्मूल कर देता है–**''विमोहनं हि देहिनां सुशंकरस्य चिन्तनम्''।** शंकर के चिन्तन में वैशिष्ट्य यह है कि शंकर 'संहार' है और संहार ही **'श्रृंगार'** है। संहार अलंकरण, सुसज्जा, सुरभि, सुगन्धि, सौहार्द्रता है। निर्माण और पालन वस्तुतः संहार के बाद होता है। संहार ही निर्माण-पालन का आधार है और समस्त श्रृंगार इस संहार में निहित है। **'शिव'** कल्याण स्वरूप है। इसलिए शिव ने संहार का कुल क्षेत्र अपने पास रखा है वही जीवन काल में देह के रहते संहार के साथ धारणा

कराने में समर्थ है। वही ब्रह्मा और विष्णु बनकर निर्माण और पालन भी करता है।

'**भस्मी**' दिगम्बर तत्त्व है, यही मेरा (जीवात्मा का) **'सद्'** या **अस्तित्व** है। देह की अवचेतना में, देह के दौरान, देह के संहार (भस्मी) का अध्यास होने पर निर्माण और पालन मेरा (जीवात्मा का), अलंकरण एवं श्रंगार बन जाते हैं। इसके लिए देह की अवचेतना में सद्गुरु कृपा से, उसके सद् निर्देशन में यह प्रार्थना आर्तनाद बनकर जीवन काल के किसी भी समय, स्थान और स्थिति में हो, कि "हे प्रभु मुझे मेरी भस्मी दिखा दो। मुझे देह अध्यास हुआ है, जो अधूरा है। तुम कृपा करके इसे पूरा करो। जन्मों-जन्मान्तरों में देह के निर्माण और पालन के साथ अध्यास व तद्रूपता में देह व जीवन में भविष्यों में भटक रहा हूँ। अब मैं तुम्हारी कृपा से इसके संहार (भस्मी) के साथ तद्रूपता एवं तादात्म्य करना चाहता हूँ। मैं इस सम्पूर्ण जीवन **का** भविष्य, जीवन **में** देखना चाहता हूँ, क्योंकि एक मात्र भस्मी ही मेरी देह का निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है।"

देह का तत्व जो देहातीत है, वह है—भस्मी। यह तत्व **'मैं'** (जीवात्मा) ने देह के रहते देखना नहीं है, क्योंकि संहार (मृत्यु) के बाद अग्निदहन होने पर जब देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, तो शिव की अतिशक्ति विरक्ति की भौतिक प्रतिनिधि अदृश्य भस्मी, दृश्यमान होकर प्रकट होती है। निर्माण से पहले भस्मी अदृश्य थी, निर्माण और पालन के दौरान भस्मी प्रकट नहीं थी। अतः संहार के बाद प्रकट यही भस्मी, शंकर का वैराग रूप में प्रतिनिधित्व है, जो निर्माण और पालन के दौरान अप्रकट एवं अदृश्य रूप से थी। समस्त निर्माण, पालन और संहार का कारण यह शिव तत्त्व है। सद्गुरु स्वयं में **'शिव'** तत्त्व है। सद्गुरु को साधारण व्यक्ति समझना बहुत बड़ी भूल है। उसका साधारण भौतिक स्वरूप भी असाधारण होता है, जिसे देखने के लिए गुरु द्वारा प्रदत्त नेत्र चाहिए। तभी श्रद्धा (सद् को धारण करने की क्षमता) मिलेगी।

सद्गुरु की असीम एवं अकारण कृपा से देह के साथ तद्रूप सा

साधक (जीवात्मा) अपने साधन (देह) के रहते, देह द्वारा, देह के निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य **'भस्मी'** की अवधारणा करता है, तो उसे अपने साध्य (विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप) की सिद्धि मिल जाती है। युगों-युगान्तरों से विभिन्न जन्मों-जन्मान्तरों में पड़े कर्म बन्धन जीते जी देह के संहार के बाद प्रकट भस्मी की अवधारणा द्वारा समाप्त हो जाते हैं। देह के रहते, देह का **संहार** (भस्मी की अवधारणा) वैराग बनकर जीवन का **श्रृंगार** बन जाता है। जीवन काल में भूत, भविष्य एवं वर्तमान में की गई भाग-दौड़ द्वारा समस्त प्राप्तियों, खोने, पाने व होने का 'एक' अर्थ जानने की उत्कण्ठा जब मानव को इष्ट के चरणों में समर्पित कर देती है, वही जीवन का अर्थ है। भस्मी की अवधारणा से अवधारित विरक्तियुक्त सद्य-स्नाता देह, संहार रूपी श्रृंगार से सुसज्जित हो कर, नित नूतन देह का आभास कराती है। इस देह की आयु चाहे कुछ भी हो, मानसिक स्थिति शैशवावस्था की होती है। यह विरक्ति युक्तता ही ईश्वर की विभूत्यातीत विभूति वैराग है, जो वास्तविक '**धर्म**' है। वैराग की भावना परिपक्व होने पर ही ईश्वर भक्ति मिलती है। '**भक्ति**' पुरुषार्थ का तीसरा सोपान '**काम**' है। तदनुसार जब जीव को स्वयं ईश्वर का प्रेम प्राप्य (अनुराग) हो जाता है, वही पुरुर्षाथ का चौथा सोपान '**मोक्ष**' है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(4 नवम्बर, 24ए 27 दिसम्बर 2008)

स्मृति

(भाग-1)

आज शिवरात्रि महामहोत्सव के उपलक्ष्य में हम सब यहाँ प्रवचन, श्रवण एवं श्रद्धा द्वारा शिव की कृपा का रसास्वादन करने के लिए एकत्रित हुए हैं। वक्ता, श्रोता एवं प्रबन्धकर्ता शिव ही है। आज के अति दुर्लभ एवं शिवमय विषय का शीर्षक है—**'स्मृति'**। स्मृति शब्द का अंग्रेजी अनुवाद memory नहीं है। स्मृति और memory परस्पर बिल्कुल अलग हैं। शिव निराकार तत्त्व है। शिव में छोटी **'इ'** (ि) शक्ति का द्योतक है, जो स्वयं में निराकार है और उसमें समाहित है। शिव, शक्ति के बिना होता ही नहीं। क्योंकि छोटी **'इ'** हटा दो, तो **'शव'** रह जाता है। छोटी **'इ'** जो शक्ति का बीज है, इसे जब शव के साथ जोड़ दिया जाता है, तो शिव बनता है। शिव शब्द में प्रधानता शव की है, लेकिन शिव कभी शव नहीं होता। शिव स्वयं में शक्ति है, उसे शक्ति से पृथक् नहीं किया जा सकता। शिव-शक्ति क्रीड़ा स्वयं में, स्वयं से, स्वतः एवं स्वान्तः सुखाय होती है, जिसके आनन्द का प्रकाट्य कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार माया के असंरव्य रूपों में होता है। निर्माण, पालन एवं संहार इस प्रकाट्य की तीन विधाएँ हैं।

शिव की शक्ति विरक्ति है। इस अतिशक्ति विरक्ति से पंच-प्राणों की महाशक्ति, अदृश्य ज्योति के रूप में प्रस्फुटित होती है। अतिशक्ति (विरक्ति) और महाशक्ति (पंच-प्राणों की अदृश्य ज्योति) में परस्पर क्रीड़ा होती है। इस क्रीड़ा के एवज़ में प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान—पांच प्राणों की अदृश्य ज्योति से क्रमशः—अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल एवं आकाश, पंच-महाभूतों का प्रकाट्य होता है। महाचेतन की स्वयं में, स्वयं से, स्वतः एवं

स्वान्तः सुखाय हुई क्रीड़ा के एवज़ में प्रकट पंच-महाभूत, परम सशक्त होते हुए भी स्वयं में सहज जड़ हैं। जब शंकर प्रलय लाता है, तो इन पंच-महाभूतों द्वारा ही लाता है। यह शिव का प्रशासन है, कि पंच-महाभूतों को अपना, अपनी शक्ति तथा शिव, किसी का कोई ज्ञान नहीं है। शिव की अतिशक्ति विरक्ति इन पंच-महाभूतों की प्राण-शक्ति है, जो इन्हें दस रूपों (चिरन्तन, निरन्तर, अविरल, अकाट्य, अबाध, अतिसारगर्भित, परमविशिष्ट, अति संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) में अदृश्य रूप से गतिशील रखती है। इस प्रकार पंच-महाभूतों की शक्ति का पूर्ण नियन्त्रण एवं प्रयोग शिव स्वयं अपनी **'विरक्ति'** शक्ति से करता है। भौतिक रूप से इस विरक्ति शक्ति का प्रतिनिधित्व हमारी देह की भस्मी करती है। इस तत्त्वातीत तत्त्व (भस्मी) का प्रकाट्य तब होता है, जब पंच-महाभूतों की देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। यह निराकार शिव की साकार सृष्टि का प्रत्यक्ष दृश्यमान **'सद्'** है।

पंच-तत्त्वों तथा उनमें शिव की प्राणशक्ति **'विरक्ति'** द्वारा होती दशानन एवं अदृश्य गतियों के एवज़ में कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्डों का सम्पूर्ण मायिक प्रकाट्य होता है। इनकी अविरलता सतत, अनादि एवं अनन्त है, अबाधता निरन्तर अबाध है। विशिष्टता सदा व सर्वदा अतिविशिष्ट है। गुणात्मकता एवं उद्देश्यात्मकता परम गुणवान एवं उद्देश्यपूर्ण है। सारगर्भितता अत्यन्त सारयुक्त है। निराकार से साकार में निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में यह प्रकाट्य उस परम ईश्वरीय विभूति का प्रपंचमय चमत्कार एवं खेल है। इन सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के खेल को दृष्टा बनकर देखने के लिए शिव-शक्ति ने पंच-महाभूतों के संगम से एक महाचमत्कार किया। समस्त साकार सृष्टि की प्रतिनिधि एवं आधार एक मानव-देह अपने इकलौते मानस पुत्र जीवात्मा को दी। हम सब मानव कह सकते हैं, कि मेरी एक देह सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड जो थे, हैं और होंगे उनकी समस्त दृश्यमान साकार सृष्टि का प्रतिनिधित्व करती है और साकार प्रकाट्य का एकमात्र आधार है।

जब मेरी इस एक देह को सैल्फ (मैं) लगती है, तभी मेरे लिए मेरी साकार देह सहित जगत का प्रकाट्य होता है। जब मैं गहननिद्रा (स्वप्नरहित सुषुप्ति) में था, उस समय देह थी, जगत भी था, लेकिन 'Self' नहीं लगी थी। इसलिए मेरे लिए मेरी देह सहित जगत भी नहीं था। मेरी देह तब निष्क्रिय थी, जैसे ही मैं सुबह निद्रा से उठता हूँ या उठाया जाता हूँ, तो self के लगते ही **'मैं'** (जीवात्मा) 'myself' हो जाता हूँ। देह के साथ, तद्रूपता सी में, मैं अमुक-अमुक हूँ, का भाव होने पर मुझे अपनी डिग्रियों, पद-प्रतिष्ठा, सम्बन्धों, प्रौपर्टी, देश-विदेश, रोग-दोष, गुण-अवगुण और काल में समय, स्थान एवं स्थिति आदि का ज्ञान होता है। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का कुल प्रतिनिधित्व परमात्मा ने मेरी एक देह में दिया है। जब तक मैं अपनी देह की अवचेतना में नहीं होता, तब तक मैं स्वयं अपने लिए और जगत के लिए निष्क्रिय होता हूँ, चाहे मैं देह के साथ तद्रूपता में सुषुप्त, मूर्च्छित एवं विस्मृत हूँ अथवा मृतक हूँ। देह की इन स्थितियों में **'मैं'** (जीवात्मा) देह के साथ मैं (self) नहीं लगा पाता।

'मैं' जीवात्मा का शब्दरूप में प्रकाट्य है और जीवात्मा स्वयं में अदृश्य एवं निराकार दृष्टा है। समस्त साकार-सृष्टि का आनन्द दृष्टत्व में है। साकार देह के साथ प्रलिप्तता ही सुखों-दुखों, रोग-दोष, वैर-वैमनस्य, आधि-व्याधि-उपाधि, भय-त्रास, तनाव, मल-विक्षेप एवं आवरण की अन्तहीन श्रृंखला है। **'मैं'** अदृश्य एवं निराकार जीवात्मा तत्त्व है, जिसका प्रकाट्य देह सहित जगत के विभिन्न नाम-रूपों में विभिन्न मानसिक स्थितियों में, पृथक्-पृथक् होता है। इस प्रकाट्य में कोई क्रम या तारतम्य अथवा निरन्तरता नहीं है। महाचेतना समाधि स्थिति है। इस स्थिति में साकार देह और जगत में होते हुए भी मुझ जीवात्मा को, मेरे अपने विशुद्ध स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। मुझे यह पूर्ण आभास रहता है, कि **'मैं'** (जीवात्मा) अवचेतन देह व जगत से परे चेतन तत्त्व हूँ। यह मेरी जागृति है (विस्तार के लिए देखें **'जागृति'** शीर्षक प्रवचन)। मैं देह हूँ, यह मेरी अवचेतना है। इस स्थिति में जगत मेरे लिए पृथक् होता है। जब देह के साथ लिप्तता होगी,

वहाँ परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से, प्रकट या अप्रकट जगत के साथ राग-द्वेषपूर्ण लिप्तता भी होगी ही। मैं देह हूँ, तो उस समय का प्रकट या अप्रकट जगत भी हूँ। यह चेतनामयी अवचेतना है।

प्रगाढ़ निद्रा **'जड़ता'** की स्थिति है। इस स्थिति में देह **मैं** (self) लगाने की स्थिति में नहीं होती, इसलिए देह व जगत के होते हुए भी मुझ जीवात्मा को देहसहित जगत का आभास नहीं होता और अपना स्वयं का आभास भी नहीं होता। इस जड़ता में जब निद्रा हल्की होती है, तो स्वप्न आते हैं। स्वप्न कभी प्रगाढ़ निद्रा में नहीं आते। जड़तामयी अवचेतना में स्वप्न वाली देह के साथ तद्‌रूपता में जो मेरी अवचेतना का स्तर होता है, उसी के अनुसार स्वप्न-सृष्टि प्रकट होती है। हर स्वप्न में मेरी देह का होना आवश्यक है। मान लो रात में मुझे स्वप्न आया, कि मैं जंगल में अपने साथियों से बिछुड़ा हुआ अकेला भाग रहा हूँ। बहुत तेज मूसलाधार वर्षा हो रही है। एक तरफ से एक फनियर साँप और दूसरी ओर से शेर दहाड़ता हुआ मेरी ओर आता है। मैं बचने के लिए भागता हुआ एक पेड़ से टकरा जाता हूँ। मेरे माथे से रक्त निकलने लगता है। तभी एक डॉक्टर मित्र, जो मुझे दस वर्ष बाद मिला, उठाकर मेरे माथे में टाँके लगवाता है और मेरी नींद खुल जाती है। निद्रा से उठकर **'मैं'** अपनी self में आता हूँ। अब मैं उस स्वप्न सृष्टि पर विवेक बुद्धि से विचार करूँ, कि स्वप्न में मेरी एक देह थी और अन्य अनेक थे। साथ ही मूलतः मैं तो सोया हुआ था। मैं सोया हुआ था, तो स्वप्न किसने देखा? यह स्मृति किसकी है? एक **'मैं'** (जीव) ने एक देह को आधार बनाकर एक दृश्य देखा। वह एक देह उस समस्त सृष्टि के साथ अब नहीं है।

निद्रा से उठकर जिस एक देह को आधार बनाकर **मैं** स्वप्न का वर्णन कर रहा हूँ वह देह, स्वप्न वाली देह नहीं है और जगत भी वह जगत नहीं है, क्योंकि मेरा माथा भी ठीक है और स्वप्न में हुई मूसलाधार वर्षा का एक बूंद पानी भी मेरे बिस्तर पर नहीं है। शेर व सांप भी नहीं हैं। मैं सोया हुआ था, लेकिन स्वप्न वाली देह जागी हुई थी। अर्थात् स्वप्न वाली देह, सोई हुई देह नहीं थी और स्वप्न वाली देह यह निद्रा से उठी हुई देह भी नहीं है। **'मैं'** देह रूप

में एक सोया था, तो स्वप्न आया। मैं स्वप्न में एक देह था, तो अनेक थे और उस एक के उस सृष्टि से निकलते ही उस एक सहित अनेक भी नहीं रहे। इसलिए वास्तव में मैं न एक था, न अनेक था, क्योंकि मूलतः मैं तो सोया हुआ था। स्वप्न वाली मेरी नाम-रूप की देह **भी** न होती, तो स्वप्न ही न होता, क्योंकि उस सम्पूर्ण सृष्टि का आधार वह देह **ही** थी।

अब निद्रा से उठकर जिस देह में स्वप्न का वर्णन कर रहा हूँ, वह देह तथा इसके साथ प्रकट जगत भी मैं नहीं हूँ। मैं जो **'एक'** (देह) सोया हुआ था, उसने सपना नहीं देखा। जिस **'एक'** देह के आधार पर स्वप्न सृष्टि में एक-अनेक थे, यदि उस देह ने सपना देखा, तो उसके लिए वह सपना नहीं था और अब वह है ही नहीं। अर्थात् स्वप्न वाली नाम-रूप की देह ने सोई हुई देह को नहीं देखा और सोई हुई देह ने स्वप्न वाली देह को नहीं देखा। स्वप्न देखते हुए और स्वप्न का वर्णन करते हुए मुझे सोई हुई देह का कोई ज्ञान नहीं था, चाहे वह जड़ता थी अथवा वह जड़तामयी अवचेतना थी। अब निद्रा से उठकर जिस देह का अवलम्बन लेकर **'मैं'** स्वप्न का वर्णन करता हूँ, इस देह ने तो वह सपना देखा ही नहीं, क्योंकि यह देह, स्वप्न वाली देह बिल्कुल नहीं है। स्वप्न का वर्णन करते समय मैं अपनी सुषुप्त देह को उपेक्षित करता हूँ। जबकि अब निद्रा से उठकर **'मैं'** भली-भाँति जानता हूँ, कि मैं एक देह रूप में सोया तो एक-अनेक के विभिन्न स्वरूपों में स्वप्न सृष्टि प्रकट हुई थी। स्पष्ट है कि यह **'स्वप्न-दृष्टा'** देह सहित समस्त साकार जगत से नितान्त पृथक् तत्त्व है और उसी की वह **'स्मृति'** है। इस स्मृति में जब मैं किसी देह व जगत का वर्णन करता हूँ, तो देह के साथ तद्रूप होता हूँ। इस तद्रूपता में मेरी देह के साथ अवचेतना विभिन्न स्तरों पर होती है।

योगी की निद्रा भी समाधि-स्थिति होती है। उसके लिए देह व जगत होते हुए भी नहीं होते, लेकिन उसे आत्मानुभूति होती है। उसे ज्ञान होता है, कि जिसके आधार पर समस्त स्वप्न-सृष्टि चली, उस स्वप्न वाली अवचेतन देह और निद्रा से उठी इस तथाकथित जाग्रत अवचेतन देह में, देह और जगत के अतिरिक्त कुछ ऐसा common स्मृति तत्त्व है, जो स्वप्न वाली देह

और जगत तथा निद्रा से उठी तथाकथित जाग्रत देह और जगत दोनों को देख रही है। दोनों देह सहित सृष्टियों में परस्पर कोई तालमेल है ही नहीं। लेकिन इस तत्त्व ने सुषुप्ति नहीं देखी, इसलिए 'मैं' उस स्वप्न वाली देह और निद्रा से उठी तथाकथित जाग्रत देह को एक माने हुए हूँ। मैंने स्वप्न देखा कहकर स्वप्न का वर्णन करते हुए मैं सुषुप्त देह का जिक्र ही नहीं करता। हर सपने का एक अपना पृथक् भूत, भविष्य एवं वर्तमान होता है। कुल एपीसोड एक देह के लिए होता है। यदि वह common स्मृति तत्त्व हाथ में आ जाए, तो इस साकार, मायिक एवं चमत्कारिक सृष्टि का समस्त रहस्य अनावृत हो जाए। इस प्रकार निद्रा से उठकर निद्रा में प्रकट हुई स्वप्न सृष्टि के विवेकपूर्ण विचार-चिन्तन से कुछ सूत्र प्रकट हुएः–

1. सोई हुई देह और स्वप्न वाली देह दोनों अलग-अलग थीं।

2. जो देह स्वप्न का वर्णन कर रही है, वह देह और स्वप्न वाली देह अलग-अलग हैं। स्वप्न का वर्णन करने वाली देह, स्वप्न के दौरान सुषुप्त देह भी नहीं है।

3. सुषुप्ति को देखने वाली कोई देह नहीं है।

4. दृष्टा common है, जिसका किसी देह सहित जगत से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जब **'मैं'** (जीवात्मा) नाम-रूप की देह की अवचेतना में होता हूँ, तो उस देह के साथ जगत स्वतः, साथ-साथ एवं तदनुसार प्रकट होता है। नाम-रूप की अवचेतना में जो मेरा दृष्टा-भाव है, यह वही दृष्टा भाव है, जो देह सहित जगत की स्वप्न सृष्टि और तथाकथित जागृति वाली देह सहित जगत की सृष्टि में common है। वही दृष्टा-भाव उस स्वप्न वाली घटना की पुनः प्रस्तुति करता है। इस दृष्टा-भाव में नाम-रूप की देह की अवचेतना में देह के जन्म से लेकर आज तक विभिन्न स्थितियों, अवस्थाओं, सम्बन्धों, स्थानों की असंख्य देहों की स्मृतियाँ समय-समय के जगत सहित अंकित हैं। दृष्टा एक ही है। सुषुप्ति की जड़ता में अवचेतनामयी जड़ता से प्रकट स्वप्न वाली देह सहित जगत और तथाकथित जागृति की अवचेतना में

प्रकट देह व जगत दोनों का दृष्टा निराकार तत्त्व है, जो देह व जगत से परे है।

मैं जिन अवस्थाओं और घटनाओं में पहले दुखी या सुखी हुआ, अब उनको आनन्द में सुनाता हूँ। उस दृष्टा का उन सुखों-दुःखों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वो देह व जगत **'मैं'** (जीवात्मा) नहीं हूँ और जिस देह का अवलम्बन लेकर मैं पुरानी स्मृतियाँ सुनाता हूँ, यह देह व जगत भी मैं नहीं हूँ। देह बदल गई, लेकिन वह दृष्टा तत्त्व नहीं बदला। पृथक्-पृथक् देहों के साथ प्रकट जगत भी तदनुसार बदलते गए। निद्रा के दौरान देखे गए स्वप्न की देह में वह निराकार दृष्टा उस स्वप्न वाली देह के रूप से तद्रूप था। अब निद्रा से तथाकथित जाग्रत देह के साथ तद्रूप है। उसकी देह के साथ इतनी तद्रूपता है, कि स्वप्न की देह के सुखों-दुखों की मानसिकता को यह जानते हुए भी कि मैं तब सोया हुआ था, इस तथाकथित जाग्रत देह में भी कुछ देर तक ढोता है। इसी प्रकार विभिन्न अवस्थाओं की देहों की मानसिकताओं को भी जीवात्मा (मैं) देह के साथ नाम-रूप में तद्रूपता के कारण ढोता रहता है।

हम अपने जीवन की किसी पुरानी घटना पर विचार करें। वह परमात्मा ने मेरी देह के लिए एक एपीसोड रचा, जो मेरे हाथ में नहीं था। अब, जब मैं उस घटना को सुनाता हूँ, तो यह जान कर सुनाता हूँ, कि वह मैं ही था। जबकि मैं जानता हूँ कि अब मेरी देह वह देह नहीं है, जिस पर वह सारी घटना आधारित थी। जिस प्रकार स्वप्न-सृष्टि की देह सहित जगत का, सषुप्त देह सहित जगत और निद्रा से उठी तथाकथित जाग्रत देह सहित जगत से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब देह की self के साथ myself लग जाती है, वहाँ चेतन जीवात्मा, अवचेतना में जीवकोटि में जीव-सृष्टि में भटकने लगता है। इस स्मृति तत्त्व ने मुझे देह के नाम-रूप की अवचेतन तद्रूपता में ही देखा है। इसने मेरी सुषुप्ति नहीं देखी। प्राणायाम से या ध्यान में योगी पूर्व जन्मों में भी चला जाता है। उस स्मृति में नाम-रूप की अवचेतना में आदि से अन्त तक की समस्त recording है। साकार देहों के

इस स्मृति तत्त्व ने सुषुप्ति और समाधि नहीं देखी। आत्मानुभूति निराकार की स्मृति है, साकार में नाम-रूप की देह और जगत समय-समय पर परिवर्तित होते रहते हैं। साकार के साथ तद्‌रूपता में भी 'मैं' नहीं बदला। मैं निराकार व अदृश्य तत्त्व है। यदि मैं नाम-रूप की साकार देह होता, तो देह के बदलने के साथ बदल गया होता और मुझे पहले वाली देह व जगत की स्मृति ही न होती। तद्‌रूपता में 'मैं' यद्यपि बिल्कुल वैसा ही होता हूँ, लेकिन मैं कोई देह नहीं हूँ।

साकार देह और देहों के साथ तद्‌रूपता वाली स्मृति मुझे नाम-रूप की जीव-सृष्टि में काल व कर्म-बन्धन में फँसाती है। इसने निराकार नहीं देखा। साकार असंख्य हैं, थे और होंगे, लेकिन निराकार 'एक' ही है। महापुरुषों की निराकार की स्मृति लीला के लिए कोई भी साकार रूप धारण कर लेती है। महापुरुषों का नियन्त्रण होता है। वे जिस स्थान, समय, अवस्था, स्थिति में विचर रहे होते हैं, उस देह का तनिक अवलम्ब मात्र लेते हैं। शेष सब उनकी लीला होती है, जिसे करते हुए भी वे स्वयं में अकर्ता रहते हैं और लीला के सूक्ष्म मायिक रहस्यों का उन्हें ज्ञान होता है। इसी पर पौराणिक लीला कथाएं आधारित होती हैं, ताकि उन लीला कथाओं में संसारी जीव रम जाए और अपनी नाम-रूप की देह और उस पर आधारित जगत की स्मृतियाँ कुछ देर के लिए शान्त हो जाएँ। इन लीला कथाओं में जब मन पूरी तरह से रम जाता है, तो नाम-रूप की देह में होते हुए भी उस देह सहित जगत का बन्धन हटने लगता है। यह स्मृति युगों से देह के साथ तद्‌रूपतावश जीव सी बनी जीवात्मा के स्वरूप को जाग्रत कर देती है। जब वह तद्‌रूप तत्त्व सुषुप्ति को देख लेगा, तो उसकी देह सहित जगत से तद्‌रूपता ढीली पड़ने लगेगी। उस समय जो अनुभूतियाँ होंगी, वह स्मृति भगवती, श्रुति भगवती की होंगी। स्वरूप की ये अनुभूतियाँ **'आत्मानुभूति'** के क्षेत्र में आती हैं। देह के साथ तद्‌रूप सा जीवात्मा साधक है और जो देह उसके पास है, वह उसका साधन है। सद्‌गुरु कृपा से निद्रा से उठकर तथाकथित जाग्रत देह के साधन से साधक जीवात्मा **'स्मृति'** द्वारा अपने

विशुद्ध स्वरूप (साध्य) की सिद्धि कर सकता है। मानव देह का एकमात्र यही उद्देश्य है।

एक है self और एक है myself. मानव-देह ईश्वर की साकार एवं कालबद्ध सुकृति है, जिसका आरम्भ जन्म से और अन्त मृत्यु में होता है। साकार देह के जन्म से पहले और मृत्यु के बाद के दो क्षेत्र निराकार एवं अकाल हैं, जिन्हें अक्सर हम देहधारी उपेक्षित कर देते हैं। साकार देह के लिए जन्म से पहले किसी गर्भ में एक अदृश्य भ्रूण या बिन्दु (zygote) रूप में गर्भाधान होता है और लगभग नौ महीने में देह का निर्माण होता है। इसे हमने प्रारम्भारम्भ की संज्ञा दी थी। जब मेरी देह उस बिन्दु रूप में आई, वह भी एक काल था, जो काल-गणना से परे अकाल-काल था। इसी प्रकार मृत्यु (अन्त) के बाद (अन्तान्त) मृतक देह अग्नि-दहन द्वारा पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है और भस्मी प्रकट होती है। इस काल की गणना भी असम्भव है। सैल्फ लगने के बाद भी मेरी बुद्धि इन दो निराकार छोरों के काल की गणना नहीं कर सकती।

प्रथम श्वास (शैशव) और अन्तिम श्वास (शव) काल, प्रारब्ध-कर्मों से बंधे हुए हैं। प्रारब्ध एक इतिहास है, एक अदृश्य दैवीय केस फाइल है, जो काल और कर्म के लेखे-जोखे लिए हुए है। इसमें मानव-देह के रूप में हमारे जन्म-मृत्यु, जीवन की समस्त सजाएँ, लाभ-हानि, सुख-दुःख, आधि-व्याधि-उपाधि आदि का लेखा-जोखा अंकित रहता है। इसी के अनुसार हमारा सारा जीवन चलता है। हम आजीवन ज्योतिषियों, पण्डितों, मौलवियों या पादरियों के पास इस प्रारब्ध से छूटने के लिए नहीं, बल्कि बचने के लिए धक्के खाते हैं। जबकि काल और कर्म से बंधी प्रारब्ध रूपी केस फाइल को मात्र कालेश्वर (परमात्मा) ही काट सकता है, क्योंकि काल स्वयं में अकाल से बंधा है।

शैशव से शव तक श्वासों की श्रंखला में हमारी साकार देह काल से बंधी है। हमारा पदार्पण पृथ्वी पर प्रथम श्वास के साथ शैशव अर्थात सह **'शव'** (शव सहित) ही होता है। मध्य की समस्त अवस्थाएँ (बचपन, युवा,

वयस्क, वृद्धावस्था, अतिवृद्धावस्था) सह शव (शैशव) के ही रूपान्तरण हैं। समस्त अवस्थाओं का आधार शैशव (सह शव) है। शैशव से शव तक की अटूट कड़ी श्वास है। कड़ी के टूटते ही देह का अन्त (देहान्त) हो जाता है और अन्तिम श्वास के साथ देह **'शव'** बन जाती है।

देह के साथ सैल्फ (**'मैं'**) लगने के लिए प्रथम आवश्यकता यह है, कि देह में श्वास होना चाहिए। जब तक श्वास (शव+आस) है, तब तक self (**'मैं'**) लग सकती है। देह में जब बुद्धि या चेतना कार्यान्वित होने लगती है, तो myself लगती है। जीवात्मा वहीं देह के साथ तद्‌रूप हो जाती है और memory या **'मैं मरी'** शुरू हो जाती है। यह memory जब स्मृति बनेगी, तभी मैं (जीवात्मा) की जागृति होगी। सद्‌गुरु पहले memory को स्मृति में रूपान्तरित करता है। जो **'मृत्तिका'** अथवा शव के सहित होती है, वह स्मृति होती है। सदगुरु **'स्मृति'** में self और मैं को अलग कर देता है। देह सहित जगत का रसास्वादन तभी सम्भव है, नहीं तो फँसास्वादन ही होगा। निकलना जानते हैं या नहीं, फंसना हम सब खूब जानते हैं, क्योंकि हमारे पास बहुत ही तेज़ memory है। यह memory कभी हँसाती है कभी रुलाती है, कभी आशान्वित करती है, कभी निराश करती है, कभी प्यार करती है, कभी शत्रुता करती है, कभी शत्रुओं को मित्र बनाती है, कभी मित्र को शत्रु बना देती है।

प्रभु ने अपने मानसपुत्र निराकार एवं अदृश्य जीवात्मा को एक मानव-देह दी, कि "तू इसके साथ तद्‌रूप हो कर जगत को देख। तू मेरा अंश बन कर जगत को नहीं देख सकता, क्योंकि मेरे विशुद्ध स्वरूप में न देह है और न जगत है।" इसलिए संसार महानाट्‌यशाला के बहुरंगी व विविध सतोगुणी, रजोगुणी एवं तमोगुणी दृश्यों को देखने के लिए देह के साथ तद्‌रूपता सी में तनिक भ्रमित होना आवश्यक है। हम कोई फिल्म देखने जाएँ, तो समस्त अभिनेताओं के मूल व्यक्तित्व को भुलाकर उनकी भूमिकाओं के साथ तद्‌रूप होकर ही फिल्म का रसास्वादन करते हैं। पर्दे पर जो कुछ आता है, वह भ्रम ही होता है। फिल्म निराकार रील में पहले से Recorded

होती है। वहीं से साकार में प्रकट होती है। उसमें युद्ध, खून-खराबा, प्रेम, घृणा बहुत कुछ होता है, लेकिन वास्तव में होता कुछ नहीं। इसी प्रकार जीवात्मा को देह की तद्‌रूपता का तनिक अवलम्बन ले कर माया की चौरासी लाख स्थितियों या योनियों का रसास्वादन करना था।

साकार में आनन्द तभी है, जब मुझे यह ज्ञान हो कि **'मैं'** (जीवात्मा) शिव तत्त्व का अंश दिगम्बर एवं निराकार हूँ। यदि देह की self के साथ myself लगा दिया तो **'मैं'** इन साकार परिदृश्यों में खो जाऊँगा। जीवात्मा स्वरूप जीव-कोटि में आच्छादित हो जाता है, क्योंकि देह को **'मैं'** और उसके साथ स्वतः एवं तदनुसार प्रकट जगत को **'तू'** मान लेता है। परमात्मा तू है और **'मैं'** जीवात्मा का शब्दरूप में प्रकाट्‌य है। सबकी **'मैं'** एक ही है, क्योंकि जीवात्मा एक ही है । **'मैं'** व्यष्टि नहीं समष्टि है, जिसका साकार देह सहित जगत में प्रकाट्‌य होता है। समस्या इसलिए हुई, क्योंकि देह सहित जगत के प्रत्येक एपीसोड के साथ मैंने भ्रमवश myself लगा दिया। मैं विभिन्न देहों के साथ प्रकट भिन्न-भिन्न जगत की पृथक्-पृथक् memories में एक क्रम और निरन्तरता देखने लगा।

हमारा जीवन असंख्य एपीसोड एवं घटनाओं से भरा होता है। हमने देह के निर्माण और पालन से सम्बन्धित देह की हर विधा के साथ myself लगा दी और संहार को उपेक्षित कर दिया। **'मैं'** निराकार देहातीत तत्त्व है। इसका दिग्दर्शन हम साकार देह में नहीं कर सकते। साकार देह के जन्म से पहले प्रारम्भारम्भ और मृत्यु के बाद अन्तान्त, दो छोर निराकार एवं अकाल हैं। जब हम long jump लेते हैं तो पहले एक step ले कर फिर लम्बी कूद मारते हैं। देहातीत होने के लिए साकार देह का भी long jump लेना होगा। जन्म से मृत्यु तक मेरी एक साकार देह असंख्य देहों का समूह है। जितनी हमारी यादें हैं उतने ही देह व जगत हैं। स्मृति द्वारा long jump लेकर हम देहातीत क्षेत्र में प्रविष्टि पा सकते हैं। अपने सद्‌गुरु के सानिघ्य, भगवद् लीलाओं व पुराणों की कथाओं, ध्यान-समाधि, चिन्तन व मनन, सिमरन, भजन-कीर्तन, सद्‌गुरु का ध्यान, निस्वार्थ भाव से की गई सेवा और सत्संग

आदि की स्मृतियाँ, उस long jump के लिए पृष्ठभूमि तैयार करती हैं। देह द्वारा, देह से वह jump लेना है, जिसका पहला कदम शव है और अन्तिम शवान्त (भस्मी) है।

देह **में** जितने भी भविष्य हैं, वे अनिश्चित होने के साथ जीव-सृष्टि में स्वकल्पित हैं। भस्मी देह **का** निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है। श्वासों की श्रृंखला में चलती देह में, देह के रहते मुझे पहले शवत्व जाग्रत करना होगा। तब मेरा जीवन शाश्वत (शववत्) बन जाएगा। इसके बाद मुझे शवान्त (भस्मी) तक long jump लेना होगा। शव से व्यक्ति के नाम रूप और उस पर आधारित जगत की पहचान हो सकती है, लेकिन देह की भस्मी से नहीं। समस्त प्रकृति का बाध करते हुए ध्यान में परम सद्‌गुरु कृपा से मैं अपनी देह के उस निश्चित, परिलक्षित-दर्शित भविष्य भस्मी के साथ myself लगा लूँ। सद्‌गुरु द्वारा प्रमाणित एक जान्यता एवं मान्यता से अपनी एक देह की एक भस्मी के साथ आत्मसात् हो कर जीवात्मा जीव-सृष्टि से बाहर आ जाता है। अन्ततः भस्मी तो बननी ही है। तो पहले मान लिया, कि मैं भस्मी हूँ। इस भाव की सिद्धि द्वारा जीवात्मा अपने विशुद्ध स्वरूप की अनुभूति कर लेता है –

''निराकार रूपं शिवोऽहम् शिवोऽहम्
सच्चिदानन्दोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।''

भस्मी शंकर के अस्तित्व की प्रतिनिधि है। इसके बाद समस्त memories स्मृतियों में रूपान्तरित हो जाएँगी। मुझे मेरे निराकार स्वरूप की स्मृति आ जाएगी और आत्मानुभूति होने लगेगी।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(18 से 22 फरवरी 2009)

स्मृति

(भाग 2)

जीवन भौतिक निरन्तरता बिल्कुल नहीं है, लेकिन हमारी 'स्मृति' ने हमें बहुत भ्रमित कर दिया। इस भ्रम में ब्रह्म आच्छादित हो गया। **मैं** (जीवात्मा) स्वयं में सच्चिदानन्द एवं समस्त ईश्वरीय विभूतियों से विभूषित होते हुए भी जीव-सृष्टि के काल्पनिक एवं अनर्थकारी काल-चक्र में जन्म-दर-जन्म भटकने लगा। मुझे मेरी भ्रमपूर्ण स्मृतियाँ ठग रही हैं, क्योंकि मैंने विवेक बुद्धि से इस विषय पर विचार नहीं किया। स्मृति अतीत की होती है। हमारे होश सम्भालने से अब तक के जीवन-काल की सभी घटनाओं की स्मृतियाँ भी हमें नहीं होतीं। कभी-कभी बहुत याद करने पर भी कई-कई वर्ष हमारी स्मृति से लुप्त ही हो जाते हैं। हम पिछले अनेक वर्षों की घटनाएँ मात्र कुछ मिनटों में स्मृतिपटल से दुहरा लेते हैं।

जीवन-काल की किसी भी स्मृति में मेरा उस समय के 'स्व' सहित 'सर्व' का कुल एपीसोड अंकित होता है। मेरा एक व्यक्ति के रूप में उस समय का समष्टिगत स्वरूप एवं उस समय के जगत के रूप में मेरी समस्त समष्टिगत विधाएँ उस 'स्मृति' में प्रकट या अप्रकट रूप से समाहित रहती हैं। मेरा निजी समष्टिगत व्यक्तित्व मेरी उस समय की आयु, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों, विचार-धाराओं, जीवन-स्तर, जीवन-मूल्यों, मान्यताओं व धारणाओं आदि से सम्बन्धित होता है। **'मैं'** किसी भी स्मृति में अपनी पूर्ण समष्टि के साथ होता हूँ। अतीत की घटनाओं की स्मृतियाँ वर्तमान की मानसिक स्थिति के अनुसार आती हैं और उनका

प्रभाव भी वर्तमान में मेरी मानसिकता के अनुसार होता है। विशेष गीत-संगीत सुनते हुए, विशेष व्यक्ति से मिलकर, विशिष्ट प्राकृतिक परिवेश में मेरी मानसिकता के अनुसार मुझे अतीत की कोई विशिष्ट स्मृति आती है। मैं विवेक बुद्धि से विचार करूं, कि वह स्मृति क्या है और किसकी है ? उस स्मृति में देह रूप में जो मैं होता हूँ, वह आज की देह वाला नहीं हूँ और आज की देह सहित जगत, उसकी निरन्तरता नहीं है। पुरानी स्मृति को जब मैं किसी को सुनाता हूँ, तो उसे प्रभावशाली बनाने के लिए उसमें तरह-तरह से जमा-घटा करता हूँ, लेकिन विशुद्ध स्मृति को जानने वाला मैं ही होता हूँ। अतः उस स्मृति में **'मैं'** एक व्यक्ति रूप में अपनी उस समय की कुल समष्टि के साथ होता हूँ और मेरा उस समय का कुल जगत होता है।

जीवन-काल का प्रत्येक एपीसोड स्वयं में पूर्ण और जीवन्त होता है और हमारी स्मृति में प्रकट-अप्रकट रूप से अंकित रहता है। काल का अर्थ केवल वक्त या समय नहीं है। समय, स्थान एवं स्थिति का समन्वित रूप काल है। समय, काल के तीन अंगों (समय, स्थान एवं स्थिति) में से एक अंग है। समय घड़ी से देखते हैं, स्थान को हमारी दृष्टि देख लेती है, लेकिन **'स्थिति'** नज़र नहीं आती। वस्तुतः स्थिति ही हमारे हर पल और हर स्थान का निर्धारण करती है। जीवन का प्रत्येक पहलू काल से बँधा होता है और हम उनसे बँधे रहते हैं। मैं एक बहुत सरल उदाहरण देकर अध्यात्म के गहन सूत्र एवं स्मृति तत्त्व को आपके सम्मुख अनावृत करूँगा, आपकी अति श्रद्धायुक्त एकाग्रता वांछनीय है।

एक व्यक्ति है गिरधारीलाल। उसकी उम्र चालीस वर्ष है, उसके बाप की उम्र साठ वर्ष है और उसके पुत्र की आयु बीस वर्ष है। साठ वर्ष की आयु में गिरधारीलाल के पिता की मृत्यु हो गई। गिरधारीलाल के पिता को मरे चालीस वर्ष हो गये। अतः गिरधारीलाल अब अस्सी वर्ष का है और उसका पुत्र साठ वर्ष का है। अस्सी वर्ष का गिरधारी अपने साठ वर्ष के पुत्र को अपने पिता से सम्बन्धित अपनी स्मृतियाँ सुनाता है। साठ वर्ष की उम्र में गिरधारी लाल के पिता का देहान्त हो गया था। अस्सी वर्ष के गिरधारी

लाल को वह साठ वर्ष का व्यक्ति आज भी पिता ही लगता है, जबकि उसका अपना बेटा आज साठ वर्ष का हो गया है। अब गिरधारी की **'स्मृति'** का विश्लेषण करें। अस्सी वर्ष के गिरधारी का पिता साठ वर्ष का नहीं हो सकता। जब गिरधारी अपने पिता से सम्बन्धित किसी भी स्मृति का जिक्र करेगा, तो वह चालीस या चालीस से कम का गिरधारी बनकर ही करेगा और उसके साथ उसका पिता भी होगा। अतः साठ वर्ष के बेटे को अपने पिता से सम्बन्धित अपनी स्मृति सुनाते समय, गिरधारी बातों-बातों में कभी अस्सी वर्ष का पिता और कभी चालीस या चालीस से कम का पुत्र गिरधारी हो जाता है। यहाँ पर हमारी स्मृति मात्र memory बन जाती है और माया का खेल हमारे लिए झमेल बन जाता है।

मान लो, आज उसके भी दस वर्ष बाद गिरधारी 90 वर्ष का है और उसका पुत्र 70 वर्ष का है। गिरधारी अपने पिता से सम्बन्धित विभिन्न स्मृतियाँ, पिता की शिक्षाएँ और उपदेश अपने पुत्र को देता है। गिरधारी स्वयं अपने पिता से तीस वर्ष अधिक बूढ़ा है, लेकिन फिर भी अपने से कम आयु वाले उस व्यक्ति को पिता के रूप में ही याद करता है और उसे अपना बुज़ुर्ग मानता है। देह रूप में नब्बे वर्ष का गिरधारी लाल अपने 70 वर्ष के पुत्र को साठ या इससे कम आयु के बुज़ुर्ग की दी हुई शिक्षाएँ व उपदेश चालीस या चालीस से कम आयु के गिरधारी की स्मृतियों से सुना रहा है। उसके साथ उसका, उस समय का बाप भी है। अतः गिरधारी के भीतर एक दृष्टा ऐसा है, जिसने जीवन-काल (समय, स्थान, स्थिति) में घटे हुए समस्त एपीसोड देखे हैं। स्थिति के अनुसार गिरधारी बदलता रहा उसका बेटा बदल गया; लेकिन वह दृष्टा नहीं बदला। स्मृति वास्तव में उस दृष्टा की है जिसमें समस्त एपीसोड 'स्व' सहित सर्व में Recorded हैं।

जीवात्मा दृष्टा है। उसका **'मैं'** शब्द में प्रकाट्य हुआ, तो उसने अवचेतना में नाम-रूप की देह की तद्रूपता में, नाम-रूप की देह को अपना स्वरूप मान लिया, कि मैं अमुक-अमुक हूँ। जिस **'मैं'** (जीवात्मा) ने बचपन में खिलौनों से खेलते, बड़े होकर स्कूल जाते, डिग्रियाँ प्राप्त करते, फिर

नौकरी या व्यवसाय करते आदि विभिन्न रूपों को देखा, वह **'मैं'** एक ही है; उसने स्वयं को जब देह नहीं थी, तब भी देखा। जब देह नहीं होगी, वह **'मैं'** तब भी होगा। उसकी स्मृति मुझे क्यों नहीं है? देह के साथ तद्‌रूपता में हर परिवर्तन की सारी स्मृतियाँ हैं, स्पष्ट है, कि **'मैं'** नहीं बदला। एक दृष्टा ने हर परिवर्तन देखा और उनका वह वर्णन कर रहा है, आगे भविष्य में वह जो कल्पना कर रहा है, उसका भी वर्णन कर रहा है। अब जो वह देख रहा है, उसका भी वर्णन कर रहा है। **'मैं'** तो देह से पहले भी था, देह के दौरान भी हूँ और देह के बाद भी रहूँगा। मुझे अपने जीवात्मा-स्वरूप की स्मृति इसलिए नहीं है, क्योंकि मैंने देह को अपना स्वरूप मान लिया। यही मेरा भ्रम एवं अज्ञान है। मैंने स्वयं को नहीं देखा, इसलिए देह की स्मृतियों से अपने आप को अनुभवी कहने लगा, उन मायिक भ्रमवती स्मृतियों के आधार पर सबको परामर्श देने लगा। गिरधारी लाल के जीवन की स्मृतियाँ मात्र memories है।

मेरी एक देह में अनेक देहें हैं। कुछ स्मृतियों से बँधी हैं, कुछ memories से बँधी हैं। यदि यह memory है, तो यह धोखा है। यहाँ माया का खेल ही झमेल अवश्य बनेगा। यह स्मृति बताएगी, कि अब तू वो 40 वर्ष की आयु वाला गिरधारी नहीं है, जिसके साठ वर्ष के पिता का देहान्त हो गया था। चालीस वर्ष के गिरधारी और अपने 70 वर्ष के पुत्र के सम्मुख 90 वर्ष के मरणासन्न गिरधारी के बीच एक निराकार दृष्टा है, जिसकी सारी स्मृतियाँ हैं। वह दृष्टा हर स्थिति, स्थान और समय (काल) की देह सहित जगत का दृष्टा है। हर पल, हर क्षण देह बदलती रहती है। उसके साथ, तदनुसार समय-समय का जगत भी बदलता रहता है। निरन्तरता दृष्टा की है, जो स्वयं में निराकार जीवात्मा है।

स्मृति से **'मैं'** दृश्यों का वर्णन करता हूँ, लेकिन जिस दृष्टा की स्मृति है, उस पर चिन्तन नहीं करना चाहता। विभिन्न दृश्यों की विभिन्न देहों को अपनी एक ही देह की निरन्तरता मानता हुआ देह के साथ हुए सुखों-दुखों को अपने ऊपर आरोपित करके मानव-जीवन के '**अर्थ'** का स्पर्श भी नहीं कर पाता। देह सहित जगत की साकार विधाओं की भौतिक उन्नति

या अवनति के सुखों-दुःखों में निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ पूर्ण जीवन का अन्तहीन सिलसिला जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित कालचक्र की भटकन में चलता रहता है। '**मैं**' पुरानी स्मृतियों की देह बिल्कुल नहीं हूँ और जो वही है, वह दृष्टा है, वह सच्चिदानन्द है और काल से बंधी देह व जगत उसके मनोरंजन एवं विलास के लिए है। दृष्टा वही न होता, तो मुझे वे विभिन्न देहों के दृश्य याद ही न होते।

एक दृष्टा है, जिसने मुझे एक एपीसोड की मेरी एक देह और अन्य (जगत) देहों में देखा। आज जिस देह व जगत में **'मैं'** वर्णन कर रहा हूँ, आज वे देहें और उनके साथ के समय-समय के जगत पूर्णतः रूपान्तरित हो चुके हैं। लेकिन दृष्टा उस समय भी वही था, आज भी वही है। दृश्य, समय, स्थान, स्थिति के अन्तर्गत बदलते रहे, बदल रहे हैं और बदलते रहेंगे और एक दिन समाप्त हो जाएँगे। लेकिन दृष्टा वही है, था और रहेगा। मेरी विभिन्न देहों समेत अन्य समस्त देहों का दृष्टा एक ही है। उसी जीवात्मा की स्मृतियाँ हैं। मैं यदि यह न जानना चाहूँ, कि काल की इन विधाओं के बदलने का मुझ अपरिवर्तनीय के लिए **'अर्थ'** क्या है, तो मानव-देह पा कर भी मैं मानव-जीवन जीने का अधिकारी नहीं होता। यदि मैं (जीवात्मा) ने अपने निराकार दृष्टा स्वरूप पर ध्यान नहीं दिया, तो निश्चय ही मेरी हर स्मृति, memory (मैं मरी) ही होगी। (विस्तार के लिए देखें स्मृति भाग-1)

इस संसार रूपी नाट्यशाला का खेल मनोरंजन के लिए है। सम्पूर्ण जीवन, फिल्म की तरह पहले से ही Recorded है और जो रिकार्डिड है, वही प्रस्तुत होता है। रिकार्ड करने वाले को इससे कोई मतलब नहीं है, कि कोई इसका मज़ा लेता है या नहीं। किसी को कोई फिल्म बहुत अच्छी लगती है, कोई वही फिल्म देख कर वक्त गुज़ारता है, तो कोई बीच में से ही उठकर चला जाता है। एक फिल्म को जितने लोग देखते हैं, उन सबका पृथक्-पृथक् प्रकार का भाव होता है और उनकी पृथक्-पृथक् प्रतिक्रिया होती है। इसी प्रकार हमारा जीवन है, जो पहले से Recorded है। मैंने

इष्टकृपा से आत्मानुभूति के आधार पर सम्पूर्ण मानव-देह के पाँच खण्ड किए थे। पहला खण्ड, प्रारम्भारम्भ—माँ के गर्भ में बीज या भ्रूणरूप में गर्भाधान से जन्म तक का है। दूसरा खण्ड, जन्म से होश सम्भालने तक का है। होश को मैंने पारिभाषित किया था, कि जब मैं स्वयं अपने लिए निर्णय लेने, दूसरों को परामर्श देने और कार्य करने-करवाने योग्य हो जाता हूँ। तीसरा खण्ड, होश सम्भालने से होश जाने तक का है; चाहे यह होश किसी कारणवश जीवनकाल में चली जाए अथवा मृत्यु हो जाए। चौथा खण्ड, मृत्यु से शव के चिता तक ले जाए जाने का है और पाँचवाँ खण्ड, देह के अग्नि-दहन द्वारा पंच-महाभूतों में विलय तक का है।

प्रारब्धवश निराकार में हुई Recording के अनुसार एक बिन्दु या भ्रूण (zygote) रूप में माँ के गर्भ में मेरी देह के लिए गर्भाधान होता है। उसी के अनुसार जन्म होता है। माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, परिवार, देश, काल, लिंग, धर्म, स्वभाव, संस्कार, आर्थिक स्थिति आदि उसी के अनुसार मिले, जो हमारा चुनाव नहीं था। मृत्यु का समय, स्थान, स्थिति और मृत्योपरान्त देह का पंच-महाभूतों में विलय भी हमारे किसी हस्तक्षेप के बिना उसी Recording के अनुसार होता है। मानव-देह के प्रारम्भारम्भ से अन्तान्त तक के समस्त प्रकरण या एपीसोड देह सहित जगत के विभिन्न रूपों में समय-समय पर निराकार में हुई Recording के तहत प्रस्तुत होते रहते हैं। जीवात्मा, इनका दृष्टा है। निराकार Recording में देह के निराकार सहित समस्त साकार Recorded है। साकार देह का प्रारम्भारम्भ और अन्तान्त निराकार है और ये दोनों छोर भी साकार देह के ही हैं। प्रारम्भारम्भ, साकार देह से बँधा नहीं है। साकार देह होगी, तो प्रारम्भारम्भ भी हुआ होगा, लेकिन प्रारम्भारम्भ से साकार देह सुनिश्चित नहीं होती। साकार देह होगी, तो उसका अन्तान्त (भस्मी) अवश्य होगा। लेकिन वह अन्तान्त (भस्मी) भी किसी विशेष साकार देह से बँधा हुआ नहीं है। साकार देह 'मध्य' में जन्म से मृत्यु तक काल से बँधी है। लेकिन इसका प्रारम्भारम्भ और अन्तान्त अकाल एवं निराकार है। देह के निराकार सहित समस्त साकार की

Recording निराकार में हुई है। यह निराकार, मानव-देह के निराकार (प्रारम्भारम्भ और अन्तान्त) एवं साकार दोनों को समाहित किए हुए है। इस प्रकार एक निराकार ऐसा है, जो साकार देह के दोनों निराकारों (प्रारम्भारम्भ और अन्तान्त) से परे (अतीत) है।

'मैं' (जीवात्मा) दो निराकारों (प्रारम्भारम्भ और अन्तान्त) के मध्य (जन्म से मृत्यु) की साकार देह के तीन खण्डों में, मध्य (होश सम्भालने से होश जाने तक) के खण्ड में, देह के साथ तद्‌रूपतावश लिप्त हो जाता हूँ। इसी तीसरे मध्य के होश वाले खण्ड में प्रारब्ध, कर्म-बन्धन एवं काल-बन्धन में फंस कर **'मैं'** (जीवात्मा) निराकार और अकाल होते हुए भी स्वयं को साकार देह के नाम-रूप में पहचान कर, अपने देह होने की पुष्टि पर पुष्टि (परिपुष्टि) करता रहता हूँ। जितनी हमारी भाग-दौड़ है, वह सब देह की तद्‌रूपता की पुष्टि में है। मैं यह विचार नहीं करना चाहता, कि **'मैं'** जन्म से लेकर अब तक की कौन सी देह हूँ ? बचपन की विभिन्न देहों में से कौन सी, वयस्कावस्था वाली, स्कूल की विभिन्न कक्षाओं वाली, विवाह से पूर्व युवावस्था वाली, विवाहोपरान्त पत्नी के साथ वाली, एक बच्चे के बाप वाली या दो बच्चों के पिता वाली। इन विभिन्न व असंख्य देहों की स्थिति, समय और स्थान पृथक्-पृथक् थे और तदनुसार समय-समय का जगत भी पृथक् था। काल की तीनों विधाओं (समय, स्थान एवं स्थिति) से बँधे जीवन-काल में हर देह का काल पृथक् था। देह की स्थिति, समय और स्थान नित्य तथा एक दिन में भी कई बार बदलता रहता है। विभिन्न स्थितियों में देह अलग होती है, लेकिन मैं **'एक'** रहती है। नहीं बदली तो **'मैं'** नहीं बदली।

'मैं' (जीवात्मा) ने देह की हर विधा एवं अवस्था के साथ **'मैं'** (myself) को लगाया। देह अलग थी, लेकिन **'मैं'** वही थी, है और रहेगी। देह के हर स्वरूप में अवस्था, स्थिति, भूत, भविष्य, वर्तमान, स्थान और उस समय का प्रकट-अप्रकट जगत पृथक् होता है। देह का रूप क्षण-क्षण बदलता रहता है। '**नाम**' एक होने के कारण **'मैं'** फँस गया। देह का रूप इतना धीरे बदलता है, कि मुझे स्वयं अपना रूप बदलने का आभास नहीं होता। **'मैं'** और देह के

रूप में मेरा नाम अपरिवर्तनीय रहा तथा रूप बदलते रहे।

स्मृति एवं आत्मानुभूति के रहस्यों की अनुभूति के लिए विशिष्ट अपरिवर्तनीय व स्थिर मानसिक भूमि की आवश्यकता है। देह-चिन्ता समाप्त होगी, तो देह-चिन्तन होगा। आत्म-चिन्तन, प्रवचन एवं सद् ग्रन्थों का पठन-पाठन केवल स्थिर (जीवात्मा) द्वारा, स्थिर के लिए और स्थिर (परमात्मा) के बारे में है। यह वह कहानी है, जहाँ साकार जगत से सम्बन्धित सब कहानियाँ (**होगा**, हुआ **था**–गाथा) समाप्त हो जाती हैं। जो परिवर्तित हो, वह '**आत्मा**' नहीं हो सकती और जो अपरिवर्तनीय है, वह देह नहीं हो सकती। हम अपनी स्मृति से जीवन की पिछली घटनाएँ सुनाते हैं। उन घटनाओं को किसी **'मैं'** ने देखा है। यदि वह बदल जाती तो **'मैं'** घटना सुना नहीं सकता था। जिसने देखा है, वह अभी भी है और अपरिवर्तनीय है। जो देखा वह बदल गया। उस स्थिर एवं अपरिवर्तनीय **'मैं'** ने, मुझे देह रूप में अनेक बदलते रूपों में देखा। उसी ने विभिन्न आर्थिक स्थितियों में और विभिन्न स्थानों पर देह के रूप में मुझे देखा। उसने देह रूप में मेरी वे स्थितियाँ और कृत्य भी देखे, जो 'मैं' स्वयं से भी छिपाना चाहता हूँ। मुझे, देह रूप में विभिन्न शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक स्थितियों में जिस **'मैं'** ने देखा, वह **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं में सदा एकरस, सच्चिदानन्द एवं सहज सुखराशि है। यदि वह बदल जाती, तो वह स्मृति नहीं होती।

अबोधता से बोधता और बोधता की परिपक्वता तक देह की विभिन्न स्थितियों, रूपों, विचारों, चाहतों, रुचियों, सम्बन्धों का दृष्टा मेरा जीवात्मा-स्वरूप है, जो अपरिवर्तनीय रहता है। देह के मोह की विभिन्न भ्रमित करने वाली, देहरूपों की स्मृतियाँ भी **'मैं'** का एक प्रारूप हैं, क्योंकि वे सब उसी की वजह से हैं। उनमे **'मैं'** फँस कर भ्रमित होता हुआ आच्छादित ही रहता हूँ, क्योंकि ये सब स्मृतियाँ देह के साथ तद्‌रूपता की पुष्टि करती हैं। तद्‌रूपता के कारण मुझे यह ज्ञान नहीं है, कि देह बदली है **'मैं'** नहीं बदली; लेकिन मूलतः वह भी स्थिर ही है। उस **'मैं'** ने केवल एक देह को नहीं, उस समय के मौसम, देश-काल की विभिन्न स्थितियों और समस्त समष्टि को देखा है।

उस **'मैं'** में **'स्व'** सहित **'सर्व'** है। वह 'मैं' जो भी मेरा **'सर्व'** है, उसे अब भी देख रही है तथा वह **'मैं'** मेरे **'स्व'** की नहीं मेरे **'सर्व'** की है। इसलिए मेरी स्मृति भी मेरे **'सर्व'** की है, जिसमें मेरा **'स्व'** भी है।

वास्तव में स्मृति भ्रमवती नहीं है, हम देह धारणा के कारण उससे भ्रमित से हो गए। **'सर्व'** की स्मृति को **'स्व'** की मान लिया। एक निराकार ऐसा है, जिसमें मेरे निराकार और समस्त साकार देहों सहित जगत का **'सर्व'** Recorded है ? देह से नाम-रूप में बंधन के कारण मैंने उसपर अनधिकृत कब्जा कर लिया। न मैं **'स्व'** (नाम-रूप की देह) हूँ, न **'सर्व'** (देह पर आधारित समय-समय का जगत) हूँ और यदि **'स्व'** हूँ, तो **'सर्व'** भी हूँ। यह रहस्योद्‌घाटन **'स्मृति'** करती है। जब मुझ स्मृति को यह ज्ञान हो, कि न मैं **'स्व'** हूँ न **'सर्व'** तो वही स्मृति, भ्रमवती से भगवती में रूपान्तरित हो जाती है। **'स्मृति'** मेरी **'मैं'** की है। स्मृति कब तक रहेगी ? स्मृति का ह्रास भी हो जाता है। स्मृति से मैं स्वयं में आश्वस्त हो जाता हूँ, कि न मैं **'स्व'** हूँ, न **'सर्व'** हूँ। फिर उस दृष्टा को अपनी स्मृति आती है, कि मैं विशुद्ध जीवात्मा हूँ। जब अपनी स्मृति आती है, तो देह तब भी होती है। वह देह **'स्व'** और **'सर्व'** वाली न होकर **'मैं मयी'** विदेह देह होती है। स्मृति की स्मृति, भगवती स्मृति है। शास्त्र, वेद, पुराण, उपनिषद् आदि उस भगवती स्मृति में हैं। उसका जब हम श्रवण करते हैं, तो वह श्रुति भगवती है।

कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के समस्त साकार प्रपंच में सम्पूर्ण समष्टि का कुल प्रतिनिधित्व एक मानव-देह करती है। मानव-देह के साथ जीवात्मा की नाम-रूप की अवचेतना में तद्‌रूपता देहाधिपत्य (देह मेरी है), देहाध्यास (मैं देह हूँ) के कारण परिपुष्ट होकर जन्मों-जन्मान्तरों में देह धारणा बन गई। मेरा दृष्टिकोण पूर्णतः बिगड़ गया। यहाँ निराकार दृष्टा (जीवात्मा) साकार देह की धारणावश आच्छादित हो गया। एक मानव-देह के असंख्य रूपों में, विभिन्न स्थितियों में से **'मैं'** (जीवात्मा) गुजरा हूँ। **'नाम'** एक ही था, जो व्यवहार के लिए आवश्यक था। एक ही नाम में असंख्य देहों को **'मैं'** (जीवात्मा) ने अपनी देह में देखा। बच्चा, युवा, अतियुवा, वृद्ध, रोगी, स्वस्थ,

यहाँ-वहाँ विभिन्न स्थानों पर, बाप, बेटी, बेटा, नाती, पोता, पोती, मामा, मौसी, चाचा, फूफा विभिन्न सम्बन्धों में, अविवाहित, विवाहित, क्रोधी, लोभी, प्रेमी, आदि-आदि असंख्य व गणनातीत देहों को मैंने एक देह में देखा है, क्योंकि दृष्टा एक ही है। देखने वाले भी देह की तरह अनेक होते, तो देह की कोई विधा मेरी स्मृति मे ही न होती।

देखने वाला एक है। वह एक को अनेकों में विभिन्न रूपों व गतियों में देख रहा है। अर्थात् वह एक दृष्टा ऐसा है जो स्थिर, अपरिवर्तनीय एवं देह सहित जगत की साकार विधाओं से परे है। वह देह नहीं है। इसलिए मुझे (जीवात्मा को) स्मृति है। अलग-अलग देखने वाला दृष्टा भी पृथक्-पृथक् होता, तो स्मृति किसको होती ? **दस** वर्ष पूर्व जब मैं अविवाहित था, तो दृष्टा भी अलग था, तो मुझे अब **दस** वर्ष बाद उसकी स्मृति कैसे होती ? अर्थात् दृष्टा एक ही है और दृश्य अनेक हैं। देह का तो सद् ही परिवर्तनशीलता है। एक अपरिवर्तनीय ने अनेक परिवर्तन देखे, इसीलिए उसे सबकी स्मृति है। एक दृष्टा ने अनेक दृश्य देखे और अनेक दृश्यों को नाम-रूप की अवचेतना में एक देह मान लिया। अब मैं ऐसा हो गया हूँ, पहले मेरी यह स्थिति नहीं थी। अर्थात् अपरिवर्तनीय दृष्टा परिवर्तनशील देह के साथ तदरूपता में परिवर्तित सा होने लगा। दुर्भाग्य यह है, कि दृष्टा ने स्वयं (अपरिवर्तनीय) को नहीं देखा। इसलिए उसने मान लिया, कि मैं भी अलग-अलग हूँ।

आधुनिक युग में ये Internet, Mobile एक से अनेक में बिखरे हुए को और भी अस्त-व्यस्त कर देते हैं। जैसे ही जीवात्मा ने देह के साथ तद्रूपता की, कि मैं देह हूँ, उसी के साथ जगत खड़ा हो गया। जगत में जिसकी हम प्रशंसा अथवा आलोचना करते हैं, उसका जगत और न जाने कितने जगत जुड़ जाते हैं। **'मैं'** अपनी पहचान खो बैठा, न केवल पहचान खो वैठा, बल्कि मैं यह भी भूल गया, कि मैं अपनी पहचान खो चुका हूँ। देह के साथ स्वयं को नाम-रूप में पहचान कर **'मैं'** आनन्द से कोसों दूर हो गया और क्षणिक सुखों के लिए मारा-मारा जन्म-दर-जन्म भटकने लगा। जब मैंने भ्रमवश देह को **'मैं'** मान लिया, तो सारा जगत तुरन्त गले पड़ गया। क्योंकि जब मैं एक

(देह) हूँ, तो अनेक हूँ ही। कुछ भी छोड़ा नहीं जा सकता। अनेक से छुटकारा पाने के लिए मुझे अपनी एक देह से धारणा समाप्त करनी होगी। यह धारणा, कि मैंने पत्नी व बच्चे आदि छोड़ दिए, घर बार छोड़ कर जंगल में तप कर रहा हूँ, यह सूक्ष्म अहं मुझे कहीं का नहीं रहने देता। यह ऐसा अदृश्य विषैला ज़हर है, जो हमें असाध्य दैहिक रोगों की ओर ले जाता है। इससे अपने देह होने की पुष्टि ही करता हूँ। घर-बार, पत्नी, परिवार और समस्त साकार विधाओं का मूल मेरा एक देह भाव है।

सम्पूर्णता में मेरा विशुद्ध जीवात्मा-स्वरूप और-और आच्छादित होता रहता है और कठिन जप-तप साधना करते हुए भी मैं जन्म-दर-जन्म भटकता ही रहता हूँ। मेरा देह के साथ तद्रूपता में जो विशुद्ध अभावमय सच्चिदानन्द स्वरूप खो गया है, उसे ज्ञात-अज्ञात रूप में साकार जगत की अनेकों विधाओं में ढूँढता रहता हूँ। मेरी यह दौड़ न केवल अर्थहीन, व्यर्थ, निरर्थ होती है, बल्कि अनर्थकारी ही रहती है। मैंने यह जानने का प्रयत्न ही नहीं किया, कि प्रभु आपने मुझे मानव-देह क्यों दी है? इसका सदुपयोग कैसे हो सकता है, इसका लक्ष्य वास्तव में क्या है? देह स्वयं में सद् की संरचना है। जिस देह के अगले क्षण का कुछ पता नहीं है, उस देह से मैं प्रोग्राम बनाता रहता हूँ और मृत्यु को बिलकुल उपेक्षित किए रहता हूँ।

मानव को प्रभु ने सर्वोत्कृष्ट बुद्धि दी थी, जो पशुओं को नहीं दी। मात्र मानव ही सोच सकता है, कि मेरे हाथ में कुछ नहीं है और जिस देह को **'मैं' 'मैं'** करके अपना माने हुए हूँ, वह मेरी नहीं है। मुझे मिली है और कभी भी छीन ली जाएगी। इसके हृदय की कोई धड़कन, कोई श्वास मेरे हाथ में नहीं है। फिर भी मैं जाग्रत, सचेत और सतर्क नहीं होता। **'मैं'** कौन हूँ? पल-पल विभिन्न रूपों में निर्मित, पालित, परिवर्तित और संहार की दिशा में अग्रसर देह सहित जगत मुझे क्यों मिला है? जैसे ही मेरे मन में भाव आता है, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, तो तुरन्त मेरे सम्मुख अनेक रूपों में जगत खड़ा हो जाता है। मैंने सोचा ही नहीं, कि ''मैं देह हूँ'' कहते ही जगत क्यों खड़ा हो गया! जब मैं अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में होता हूँ, तो मेरी उस समय

की वृत्ति या चैनल के अनुसार जगत भी होता ही है। देह रूप में जब मैं एक होता हूँ, तो एक से अनेक होता ही हूँ और मैं जगत के झमेलों में फँस जाता हूँ। तथाकथित कर्तव्य, उत्तरदायित्व, कर्म, धर्म, सम्बन्ध आदि स्वयं पर थोप कर इसी दलदल में धँसता ही चला जाता हूँ। इससे थककर सो जाता हूँ और उठकर फिर इसी में लग जाता हूँ, यूँ ही जीवन दर जीवन बीत जाते हैं। मैंने सुषुप्ति, सुषुप्ति में देखे स्वप्न और इस तथाकथित जागृति की भाग-दौड़ का विश्लेषण करने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया।

मैं सुषुप्ति में देह रूप में नहीं होता, इसलिए मेरा कोई सम्बन्ध किसी से नहीं होता। कोई धर्म, कर्म, कर्तव्य, समाज, जिम्मेदारी, व्यवसाय, पद, प्रतिष्ठा, मान-अपमान नहीं होता। अतः जब मैं देह रूप में एक हूँ, तो ही अनेक हूँ। यह अनेक प्रकट एवं अप्रकट दो प्रकार का है। अप्रकट अनेक का तो मुझे ज्ञान ही तब होता है, जब मैं सद्‌गुरु कृपा से एक से एकान्त में जाना चाहता हूँ। एकान्त में मुझे यह सद् आत्मसात् हो जाता है, कि मैं एक (देह) से अनेक हूँ ही और इसका अर्थ कुछ नहीं है। एक देह को पुष्ट करने के लिए मैं एक से अनेक में भटक रहा हूँ और अपने एक (विशुद्ध जीवात्मा-स्वरूप) को अधिक से अधिक आच्छादित करता रहा हूँ। वे अनेक जिन्हें मैंने बलपूर्वक अपने साथ जोड़ा है, वे कालान्तर में मेरे अदृश्य एवं अप्रकट अनेक में जुड़ कर मेरी एकान्त की स्थिति में बाधक बने रहते हैं। ये अप्रकट अनेक वे ही हैं, जहाँ मैं किसी न किसी रूप में स्वार्थवश और अन्यथा किसी भी तरह से सम्बद्ध रहा हूँ।

सद्‌गुरु कृपा से किसी जन्म में यह ज्ञान हो जाता है, कि मैं अपनी पहचान खो चुका हूँ, इसलिए भटक रहा हूँ। जब अपनी देह के साथ नाम-रूप में पहचान के विषय में भ्रम हो जाए तो यह भ्रम बधाई युक्त है :–

''या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः''

जीवात्मा को अपनी विशुद्ध पहचान के विषय में जिज्ञासा हो जाती है। इसके बाद साधक को अपने खोए हुए अस्तित्व की प्राप्ति का जुनून हो जाता

है तथा इसके आगे वह सब कुछ दांव पर लगाने को तत्पर हो जाता है। एक मानव-देह जीवात्मा को इसलिए मिली है, कि इसका अवलम्बन लेकर इस साधन से देह के साथ तद्‌रूप सा साधक (मैं) सद्‌गुरु कृपा से अपने विशुद्ध स्वरूप (साध्य) की सिद्धि कर ले। पशु जगत इस विषय में सोच ही नहीं सकता। मानव सोच सकता है। मैं अपनी पहचान खोकर कुछ भी बन जाऊँ, कुछ भी प्राप्त कर लूँ, अभाव में ही रहूँगा। इस नाम-रूप की देह के चक्कर में अपनी पहचान खोकर **'मैं'** प्रभु के दर्शन का अधिकार तो खो ही बैठा, स्वयं अपने विशुद्ध जीवात्मा-स्वरूप को खोकर तुच्छ **'जीव'** बन गया।

जब तक **मैं** स्वयं को देह से नाम-रूप में न पहचानूँ तो देह निष्क्रिय रहती है। देह किसी भी स्थान, स्थिति और समय में हो, जब तक **'मैं'** लगाने की स्थिति में नहीं होगी, वह निष्क्रिय ही रहेगी। निद्रा, विस्मृति, मूर्च्छा, मृत्यु की स्थिति में देह **'मैं'** लगाने की स्थिति में नहीं होती। सोई हुई देह की डिग्रियाँ, प्रतिभाएँ, गुण-अवगुण, जाति, धर्म, देश-काल किसी उपयोग के नहीं होते। उसकी सक्रियता के लिए उसके साथ **'मैं'** लगाना आवश्यक है। देह निष्क्रिय तो जगत भी निष्क्रिय होता है। जब देह में नाम-रूप की अवचेतना का स्विच ऑन होगा तभी देह सहित जगत प्रकट होगा। **'मैं'** जब देह के साथ लगा तो देह के साथ प्रकट समस्त जगत सक्रिय तो हो गया, लेकिन सब धर्म-कर्म, रोग-दोष, कर्तव्य, देश, काल, पद-व्यवसाय, गुण-अवगुण कार्यक्रम-क्रियाकर्म, सम्बन्ध, आदि मेरे गले पड़ गए। **'मैं'** नहीं लगाता हूँ तो देह बेकार और लगाता हूँ तो **'मैं'** बेकार। तो **'मैं'** क्या करूँ ? एक के साथ अनेक हैं ही। दुःख देने वाले दुःखी करते हैं, तो सुख देने वाले भी अन्ततः दुःखी ही करते हैं। देह की सक्रियता एवं माया के रसास्वादन के लिए देह के साथ **'मैं'** लगनी भी आवश्यक है।

मैं अपनी देह को नाम-रूप में तभी पहचानता हूँ, जब होश सम्भालने पर (सम्पूर्ण मानव देह के पाँच खण्डों में से मध्य वाले तीसरे खण्ड में) मेरी बुद्धि जाग्रत होती है। इस प्रकार होश सम्भालते ही मैंने वास्तव में होश खो दी। जगत व्यवहार के लिए देह के नाम-रूप की अवचेतना का किंचित अवलम्बन

पर्याप्त था। जैसे हार पहनने के लिए गले का अवलम्बन लेना होता है। फिर इस अवचेतना से चेतना में आ जाना था। लेकिन मैं देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में एक से अनेक और अनेकानेक होने लगा और देह में अनधिकृत कब्जे के कारण महाकाल की 1008 धाराओं के अन्तर्गत सजाएँ भुगतने लगा।

प्रथम श्वास **'शैशव'** से लेकर अन्तिम श्वास **'शव'** तक साकार मानव-देह श्वासों की श्रंखला लिए रहती है। मध्य की समस्त अवस्थाएँ शैशव (सह शव) के रूपान्तरण हैं। साकार मानव-देह का यह समस्त प्रकरण, जन्म-मृत्यु के दो छोरों में ईश्वर द्वारा सुनिश्चित अवधि में बँधा हुआ सतत परिवर्तनशील है। ईश्वर की समस्त मायिक संरचनाओं में सर्वोत्कृष्टता, जन्म और मृत्यु के दो छोरों में सुनिश्चित देहावधि, निरन्तर परिवर्तन तथा सम्पूर्ण कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्डों का प्रतिनिधित्व एवं आधारत्व इस साकार मानव-देह का सद् है। अन्ततः महासद् अथवा सदासद् इस साकार देह का देहातीत निराकार क्षेत्र **'भस्मी'** है, जो इसका निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्यातीत भविष्य है। यहाँ देह के शव सहित समस्त साकार की सीमित सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। शव देहान्त है, लेकिन भस्मी, शवान्त अथवा देहान्तान्त है। इस देहातीत क्षेत्र में देह की साकारता समाप्त हो जाती है। **'भस्मी'** देह के निराकार का सद् है, **'भस्मी'** देह की उपरामता का सद् है, इसलिए सदासद् है। साकार देह के दौरान जितने देह में व जीवन में भविष्य हैं, उनमें कोई भी निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित नहीं है। यदि कोई तय और निश्चित भविष्य है भी तो उसका आगे भी भविष्य है। वह भविष्य भी उसी प्रकार परिवर्तनीय, अवधि से बँधा और नश्वर होगा, जैसेकि देह है। इस प्रकार साकार देह के दौरान, देह में असंख्य एवं गणनातीत भविष्य हैं, लेकिन देह **का** भविष्य एक ही है। वह है, 'भस्मी'।

जीवात्मा, देह के साथ तद्‌रूप हुआ तो body conscious हो गया, लेकिन देह, मैं के प्रति conscious नहीं हुई और देह, जीवात्मा से तद्‌रूप नहीं हुई। यदि देह, मैं के प्रति conscious होगी, तो यह उसकी awareness

होगी। 'मैं' देह के साथ तद्रूपता में 'देहमयी' हो गई। यहाँ परमात्मा की अकारण कृपा का Loop Hole नहीं Loop Door है, कि the body did not become I conscious, it cannot become I conscious and it would not become I conscious, देह जब **'मैं'** के साथ तद्रूप होगी तो वह 'मैं मयी देह' होगी। **'मैं मयी देह'** अवचेतन नहीं, चेतन होगी। जब **'मैं'** किसी भी स्थिति में **'देहमयी'** हो सकती है तो देह, मैं मयी क्यों नहीं हो सकती ?

'मैं' (जीवात्मा) अकाल और निराकार हूँ। देह **'मैं'** के प्रति conscious नहीं है, इसलिए **'मैं'** देह की तद्रूपता से बाहर आने के लिए देह की सहायता लूँ। जब **'मैं'** Body conscious हुआ तो अपनी पहचान खो बैठा, लेकिन देह ने अपने सद् और अपनी पहचान नहीं खोई। देह का अपना जन्म और मृत्यु है, देह में हर क्षण परिवर्तन होता है। मुझ में कोई परिवर्तन नहीं होता। देह के साथ तद्रूपता वश मैं मान लेता हूँ, कि मैं पहले बच्चा था, फिर युवा हुआ, मेरा विवाह हुआ, मेरे एक-एक करके दो बच्चे हुए और अब मैं वृद्ध हो चला हूँ। मैं मरूँगा और भस्मी बनूँगा। यह सब देह का हुआ, हो रहा है और होगा। तद्रूपता मेरी (जीवात्मा की) देह के साथ हुई है, जिससे मेरी स्मृतियाँ मात्र Memory (मैं मरी) बनकर रह गईं। लेकिन देह, मेरे साथ तद्रूप नहीं हुई। देह के गुण धर्म एवं सद् मैंने अपने ऊपर आरोपित कर लिए इसलिए **'मैं' 'असद् सा'** हो गया।

देह के **'सद्'** का वर्णन तभी हुआ, जब 'मैं' इसके साथ लगी और **'मैं'** के असद् का प्रकाट्य भी तभी हुआ, जब मैं देह के साथ लगी। यदि **'मैं'** देह के साथ न लगूं तो देह अपना सदासद् भी प्रकट नहीं कर सकती, कि मेरा निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य भस्मी है। मेरी (देह की) भस्मी है, लेकिन भस्मी की मैं (देह) नहीं हूँ। देह के जितने अन्य सद् हैं, वे देह के ही हैं, क्योंकि वे सब '**मैं**' के देह की तद्रूपता में असद् हैं। लेकिन देह का यह सदासद् 'भस्मी' देह का ही नहीं, जीवात्मा का भी सद् है।

देह के साथ स्वयं को पहचानने से पहले मैं (देह से तद्रूप जीव) ने देह के उस सदासद् के साथ तद्रूपता की होती तो न मेरी देह के साथ

तद्रूपता होती और न देह जन्म-मृत्यु, रोग-दोष, पाप-पुण्य, आधि-व्याधि-उपाधि आदि विकृतियों से ग्रसित होती। तब देह **'मैं मयी'** चेतन होती और 'मैं' तो स्वयं में चेतन हूँ ही। **'मैं'** देह नहीं हूँ, इसलिए 'भस्मी' स्वयं में कोई देह नहीं है। देह की भस्मी है लेकिन भस्मी का देह से कोई सम्बन्ध नहीं है। सद्गुरु कहता है, कि ''साकार देह तुझे फंसाने के लिए नहीं मिली, बल्कि तेरी अपनी विशुद्ध सत्ता की पहचान के लिए मिली है। तू ध्यानाग्नि में देह का दहन कर फिर नाम-रूप की अवचेतना का तनिक अवलम्बन लेकर देह सहित जगत का रसास्वादन कर। देह की उस स्थिति को आत्मसात् कर जो स्थित्यातीत है। देह की हर अवस्था के साथ तू स्वयं को पहचानता है। तू कौन सी देह है, जो देह तेरे सामने आई, तूने उसके साथ अपनी 'मैं' (My Self) लगा दी और तेरा मन रोगी (Sick) हो गया। अब तू देह की सारी अवस्थाओं का अन्ततः जो होना है उस **'भस्मी'** रूपी महौषधि का सेवन कर, स्वयं को उस भस्मी से पहचान। नित्य कुछ क्षण उस भस्मी का चिन्तन कर, कि अन्ततः मैं भस्मी बनूंगा और आज भी बन सकता हूँ। देह की वह अवस्था, स्थित्यातीत है, वह तेरी ही तरह देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, मायातीत है।''

उस भस्मी स्थिति में न शैशव होता है, न शव होता, न श्वास होता है और वह देह का निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य है। उसका अतीत, भविष्य और वर्तमान भस्मी ही है। सद्गुरु आश्वस्त करता है, कि ''उस स्थित्यातीत स्थिति को देह के रहते आत्मसात् करने पर तू अपनी अभावमय स्थिति एवं विशुद्ध स्वरूप की अनुभूति करेगा। उस अपरिवर्तनीय स्थिति की अनुभूति करके तू देह का मात्र अवलम्बन लेते हुए उसके हर परिवर्तन को तमाशे की तरह देखेगा। विशेष देह की भस्मी है लेकिन भस्मी, देह विशेष की उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार **'मैं'**, देह विशेष की नहीं है। कोई भी देह **'मैं'** लगा सकती है। इसी प्रकार भस्मी बनने के बाद उस भस्मी को किसी भी देह की कहा जा सकता है।'' अतः मेरी समस्त आपदाओं का अन्त एवं समाधान एक ही है, कि मैं शिव का दिगम्बर तत्व (भस्मी) जीवन-काल में देह के रहते

अवधारणा द्वारा अधिगृहीत कर लूँ। भस्मी के साथ तद्‌रूप हुआ **'मैं'** यदि देह विशेष के साथ लगता है, तो वह देह सभी आधि, व्याधि, उपाधियों से मुक्त होती है। वह देह अपना प्रारब्ध स्वयं काट देती है। वह देह, जीवात्मा के इश्क में अपने सद् भूल जाती है। जन्म-मृत्यु के दोनों छोर काट कर हमेशा के लिए शाश्वत् देह हो जाती है। वह देह साकार होते हुए भी निराकार विदेह देह होती है। देह और जीवात्मा दोनों अपनी-अपनी जगह आनन्दमय हो जाते हैं।

''निराकार रूपं शिवोऽहम् शिवोऽहम् ''

यह उन महापुरुषों की वाणी है, जिनकी 'स्मृति' भगवती जाग्रत हो गई और जिन्होंने चेतन मैं (जीवात्मा) के साथ स्वयं को पहचाना। उनकी वह यथार्थ विदेह देह भी **'मैं'** (जीवात्मा) की तरह देशातीत, कालातीत, मायातीत, लिंगातीत, कर्मातीत, धर्मातीत कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, एवं ब्रह्माण्डातीत होती है। वह देह जीवात्मावतरण का प्रतीक होती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(5 जनवरी, 22 फरवरी एवं 5 मार्च 2009)

भिन्नता में अभिन्नता

मानव-देह, ईश्वर की समस्त संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट, विशेष रूप से चमत्कारिक एवं परम रहस्यमयी सुकृति है। प्रत्येक मानव-देह रंग-रूप, कद-वज़न, चाल-ढाल, प्रतिभाओं, गुणों-अवगुणों, रहने के स्थान, आवास-प्रवास, धर्म, जात-पात, मान्यताओं, धारणाओं, आर्थिक, पारिवारिक, मानसिक, सामाजिक, दैहिक, ंबौद्धिक, राजनैतिक स्थितियों, चाहतों, आकांक्षाओं, योजनाओं, परियोजनाओं एवं संवेदनाओं आदि-आदि असंख्य दृष्टियों से एक दूसरे से भिन्न है। साकार देह एवं देहों की प्रत्येक विधा प्रत्येक से भिन्न है और साकार देह व जगत का प्रकाट्य देह के नाम-रूप की अवचेतना में होता है।

ईश्वर के इस साकार मायिक जगत के प्रकाट्य का चमत्कारिक रहस्य यह है, कि जीव अपनी साकार देह को **अवचेतना** में ही पहचान सकता है, तभी जगत के खेल का प्रकाट्य होता है। 'मैं देह हूँ' भाव के बिना न एक (देह) है, न अनेक (जगत) है। मैं देह रूप में एक हूँ तो ही जगत है। जीवात्मा को इस मायिक अनेकरूपता एवं विविध बहुरंगी दृश्यों के अधिग्रहण के लिए अवचेतना में क्षणिक भ्रमित होना आवश्यक है, कि मैं देह हूँ। नहीं तो देह व जगत का दिग्दर्शन नहीं हो सकता। लेकिन देह व जगत के रसास्वादन के लिए **'एकान्त'** या चेतना में आना आवश्यक है।

इस संसार महानाट्यशाला की संरचना और इसमें हर क्षण होने वाले परिवर्तनों, अनेक रूपताओं, भिन्न-भिन्न भिन्नताओं का डिज़ाइन करने वाली शक्ति एक ही है। इसे देखने के लिए अदृश्य जीवात्मा को अस्थाई रूप से

सम्पूर्ण साकार महाब्रह्माण्ड की प्रतिनिधि **'मानव-देह'** का अवलम्बन लेते हुए देह के साथ तनिक भ्रमित होना भी आवश्यक है, कि मैं देह हूँ। हमारी देह सहित समस्त साकार मायिक जगत चमत्कार है, क्योंकि मानवीय बुद्धि की सोच की सीमाओं से परे है। अपनी इस निरुत्तरता को स्वीकार करके ही इस जगत का रसास्वादन सम्भव है। देह और उसके साथ प्रकट असंख्य भिन्नताओं के विषय में जहाँ बुद्धि निरुत्तर हो जाए और निरुत्तरता की स्वीकृति सिद्ध हो जाए, यही समर्पण है। निराकार का चमत्कार असंख्य भिन्नताओं में भी अभिन्न ही है। जीवात्मा अपनी देह के साथ तनिक भ्रमित होकर इस साकार प्रपंच को देखता है। जब बुद्धि निरुत्तर हो जाती है तो भ्रम टूट जाता है। उस समय भ्रम में भ्रमित होकर जो-जो देखा वह चमत्कार हो जाता है। निरुत्तर होकर बुद्धि किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं रहती।

हम मानव जीव-सृष्टि में अधिकतर भिन्नताओं एवं भेद-भावपूर्ण अधोगति की मानसिकता में विचरते हैं। एक देह अनेक सहित प्रकट होती है। इनमें कोई साधु, कोई चोर, कोई व्यापारी, कोई वकील, कोई मुजरिम, कोई जज, कोई शिक्षक, कोई छात्र आदि भिन्न-भिन्न देहें होती हैं। जिसकी देह है उसकी देह के भीतरी अंग-प्रत्यंग एवं कार्य प्रणालियाँ उसकी व्यष्टि देह की होती हैं। सबकी भिन्न-भिन्न देहों की इन आन्तरिक कार्य प्रणालियों का संतुलित, सुचारु, सुव्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध क्रियान्वयन किसी के हाथ में नहीं है। सबकी देह की भीतरी क्रिया प्रणालियों का क्रियान्वयन लगभग एक जैसा ही होता है, चाहे ढांचे में थोड़ा बहुत अन्तर हो। यह सब जिस शक्ति के हाथ में है, उसे प्रकृति कह दें, ईश्वर कह दें, अज्ञात शक्ति कह दें या कुछ भी नाम दे दें। एक मानव-देह का चिकित्सा वैज्ञानिक अध्ययन सभी देहों का अध्ययन होता है। अतः देह के सूक्ष्म से सूक्ष्म एवं स्थूल से स्थूल अंग-प्रत्यंग एवं कार्य प्रणाली को चलाने वाली सत्ता अदृश्य एवं **'देहातीत'** है। समस्त जलचरों, नभचरों, थलचरों एवं प्राणी जगत की देहों का निर्माण, पालन एवं संहार **'एक'** ही **'देहातीत'** सत्ता के हाथ में है।

इस प्रकार देहें पृथक्-पृथक् हैं लेकिन सबका मालिक **'एक'** है। उस

एक ईश्वर ने अनेक बनाए हैं और अनेकों को वह **'एक'** चला रहा है तथा वही जब चाहे उसका संहार कर देता है। वह एक ईश्वर जो एक देह व सब देहों में आँखों को दिखाता है, कानों को सुनाता है, नाक को सुँघाता है, त्वचा को स्पर्श कराता है, जीभ को चखाता है, हाथों से अनेक क्रियाएँ करवाता है एवं पैरों से चलवाता है, वही सब भिन्न-भिन्न देहों का स्वामी है। कब तक वह करवाएगा यह उसी के हाथ में है। मानव-देह के रूप में मेरा अस्तित्व क्या है ? असंख्य देहों का सद् एक ही है और अस्तित्व भी एक ही है। क्योंकि समस्त साकार देहों का निराकार एक ही है। जब यह सद् मेरी चेतना व रूह में बस जाएगा, कि जो मेरी देह का दिल व अन्य भीतरी अंग-प्रत्यंग चला रहा है, वही सबकी देहों को चला रहा है; तब वह देह व जगत मेरे लिए होगा। यदि वह जगत विपरीत होगा तो मेरे हित के लिए होगा और वह अनुकूल होगा तो भी मेरे हितार्थ ही होगा। वहाँ सुख-दुःख, लाभ-हानि, मिलना-बिछुड़ना एक हो जाते हैं।

सब देहों के भीतरी कार्य लगभग एक जैसे हैं, लेकिन उन भीतरी कार्यों के एवज़ में बाह्य प्रकाट्य सबका पृथक्-पृथक् है। समस्त देहों के भीतरी क्रियान्वयन की शक्ति एक ही है और वह शक्ति मेरी, तेरी या किसी प्राणी की नहीं है। हम सब अपने को देह ही मानकर चलें तो भी देह रूप में समस्त भिन्नताओं में अभिन्नता का दिग्दर्शन हो जाता है। प्रभु ने इस साकार जगत के तमाशे में जैसे एक ही देह में, बाएँ हाथ को दाएँ हाथ से अलग बना दिया, एक ही चेहरे की पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का कार्य पृथक्-पृथक् कर दिया, देह के असंख्य भीतरी अवयवों के पृथक्-पृथक् कार्य कर दिए, उसी प्रकार एक देह के साथ प्रकट समस्त प्राणी जगत में अनेकरूपता व भिन्नता रखी है। यह हमारा विश्व स्वरूप है। देह व जगत के रसास्वादन का यह Outstanding आनन्दमय **'मन'** है, जिसमें प्रविष्टि कृपा-साध्य है।

हम विचार करें, कि एक ही देहातीत व अदृश्य शक्ति देह व सब देहों का निर्माण, पालन व संहार कर रही थी, कर रही है और करती रहेगी। युगों-युगान्तरों में समस्त मानवों की देहों का आन्तरिक ढांचा लगभग एक

सा है। सबके कान सुनने का, आँखें देखने का, नाक सूँघने का, त्वचा स्पर्श का और जिह्वा चखने का कार्य करती है। हमने कभी नहीं सुना, कि किसी भी युग के मानव कानों से देखते या नाक से चखते थे आदि-आदि। एक ही देह में सतोगुणी, रजोगुणी व तमोगुणी अंग होते हैं। सबके अपने-अपने स्वभाव व कृत्य हैं, लेकिन सबका कारण व चलाने वाला एक ही है। जो छोटे को चलाता है वही बड़े को चलाता है। अधिकतर लोग दाएँ हाथ से काम करते हैं कुछ बाएँ हाथ से भी कर लेते हैं। कान दो हैं लेकिन ऐसा नहीं होता कि मैंने दाएँ कान से पृथक् सुना और बाएँ से पृथक् सुना।

युगों-युगान्तरों में, जन्मों-जन्मान्तरों में इस समय जो है, अतीत में जो था और भविष्य में जो भी होगा; देह रूप में सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की सम्पूर्ण साकार सृष्टि का निर्माणकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता एक ही है। वही सबसे भिन्न-भिन्न कार्य करवाता है, करवाता था और करवाता रहेगा। कोई भी परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधन, क्रियान्वयन, नवीनीकरण, विस्तार, संकुचन और अन्यथा सब कुछ उसी की इच्छा एवं शक्ति से होता है, होता था और होता रहेगा। सद्गुरु-कृपा से इस सद् के हृदयंगम होते ही मानव कर्म-बन्धन एवं काल-बन्धन से मुक्त हो जाता है। हर कर्म प्रभु की आराधना तब बनेगा, जब हम हरेक के पीछे उस संचालक शक्ति को कारण माने। वह देहातीत शक्ति व तत्त्व देह नहीं है और देह में नहीं है, वह दिगम्बर तत्त्व है। इस दिगम्बर तत्त्व के अधिग्रहण से विश्व रूप पर अधिकार हो जाता है। विश्व रूप पर अधिकार होते ही मुझे अनुभूति होगी, कि मेरी एक देह के लिए उसने सारा जगत भिन्न-भिन्न बनाया है।

जीवात्मा स्वयं में निराकार है और परमात्मा का एकमात्र मानस-पुत्र है। जीवात्मा अदृश्य है जिसका प्रकाट्य **'मैं'** शब्द में होता है। देह रूप में हम सब मानव हर प्रकार से भिन्न हैं। यदि हम अलग-अलग हैं तो सीमित हैं। अलग-अलग व्यक्ति रूप में हम सबकी प्रतिभाएँ, ज्ञान, डिग्रियाँ, प्रौपर्टी, पद, प्रतिष्ठा, आर्थिक स्तर, शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक हर प्रकार की शक्तियाँ सब कुछ सीमित हैं। हम सीमित की सीमाओं के अति अति

विस्तार के बाद भी आजीवन सीमित ही रहते हैं और सीमित ही मर जाते हैं। जो कुछ सीमाओं का विस्तार भी होता है, वह भी यहीं रह जाता है। यह सीमित मानसिकता हमारे साथ जन्म-दर-जन्म चलती रहती है।

'मैं' (जीव) अवचेतना में देह के नाम-रूप की सीमा में बँध गया। नाम-रूप की सीमा ने प्रत्येक मानव को देह की प्रत्येक विधा में प्रत्येक से भिन्न कर दिया। भिन्न-भिन्न प्रत्येक देह के दो देहातीत क्षेत्र हैं—**'मैं'** और **'भस्मी'**; जो देह के पश्चात् नहीं, देह से परे हैं। देह और देहातीत के मध्य हमारी देह के नाम-रूप की सुदृढ़ दीवार है। जैसे ही मैं स्वयं को देह के नाम-रूप की अवचेतना में पहचानता हूँ, तो मेरी देह रूपी किले और देहातीत के बीच एक अभेद्य दीवार खड़ी हो जाती है। जन्मों-जन्मान्तरों में यह दीवार पुष्टतर होती रही और अन्ततः मुझे देह धारणा हो गई। **'मैं'** जीवात्मा देह धारणा में अपनी देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) खो बैठा। देह धारणा, 'देह मेरी है' (देहाधिपत्य) 'मैं देह हूँ' (देहाध्यास) 'मैं देह था'; 'मैं देह ही रहूँगा' अर्थात् 'देह तो मैं हूँ ही' के सोपानों पर क्रमशः परिपुष्ट होती रही।

देह धारणा में जीव-कोटि में आते ही **'मैं'** (जीव) ने देह के नाम-रूप की तद्रूपतावश स्वयं को पृथक् मान लिया, कि मैं अमुक नाम-रूप का व्यक्ति सबसे अलग हूँ। इस भिन्नता में भिन्नताओं की वृद्धि के लिए मुझमें साकार जगत की प्रत्येक विधा में, प्रत्येक के प्रति प्रतिस्पर्धा का भाव अति प्रबल हो गया। मैं विभिन्न देहों में अपने Differences बढ़ाने में भूल गया, कि भिन्नता के लिए दोनों पक्ष परस्पर सापेक्षिक होते हैं। अतः दोनों का महत्त्व बराबर होता है। अमीरी, ऊँचाई और किसी भी दृष्टि से बड़प्पन को प्रमाणित करने के लिए गरीबी, नीचाई और छोटापन चाहिए। मेरी डिग्रियाँ अधिक इसलिए हैं, क्योंकि किसी की डिग्रियाँ कम हैं। सापेक्षता में जो दूसरा पक्ष है वह अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। दूसरा छोटा पक्ष पहले बड़े पक्ष से अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए है, क्योंकि उसके बिना बड़े पक्ष का बड़प्पन प्रमाणित, सत्यापित व सिद्ध नहीं होता। वह न होता तो प्रतिस्पर्धा ही न होती। जिसके प्रति स्पर्धा है, उससे आगे बढ़ कर भी जीव-भाव में संतुष्टि

नहीं मिलती, क्योंकि किसी दूसरे की वजह से वह बड़ा, ऊँचा, अधिक धनवान या उच्च पदाधिकारी है और अन्य बहुत से लोग भी उससे बड़े और उन्नत दृष्टिगत होते हैं।

मेरी एक देह के साथ प्रकट-प्रकट रूप से और अप्रकट-प्रकट रूप से देहें अनेक हैं। अतः **'मैं'** एक में अनेक हूँ। अनेक हैं तो मैं एक (देह) हूँ ही और **'मैं'** एक देह हूँ, तो ही अनेक हैं। मैं एक हूँ वक्तव्य भी **'मैं'** अनेक की सापेक्षता में देता हूँ। अनेक न होते तो मैं क्यों कहता, कि मैं एक हूँ। I am one out of all. All न होते तो मैं one भी नहीं होता। इस तथ्य को भुलाकर परस्पर प्रतिस्पर्धा एवं ईर्ष्या, द्वेष आदि-आदि विकृतियों में मेरी एक देह सहित मेरा अनेक मुझसे रुष्ट हो गया। हर प्रतिस्पर्धा, प्राप्ति-खोने, उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति में मैं असंतुष्ट का असंतुष्ट रहता हुआ किसी न किसी आसक्ति को लेकर जन्मता-मरता रहा। इस समस्त मनोविज्ञान के पीछे भिन्नताओं एवं Differences की चाहत है। जीव-कोटि की अवचेतना में भिन्नताएँ तो होंगी ही परन्तु विभिन्न भिन्नताओं में जन्म-दर-जन्म भटक इसलिए रहा हूँ क्योंकि मैं सबसे भिन्नताएँ बढ़ाना चाहता हूँ। मेरे जीवन की कहानी Difference से शुरू होकर Difference में चलती है और इसीमें समाप्त हो कर पुनः Difference में शुरू होती है।

परिपुष्ट देह धारणा देह पर आधारित समस्त विधाओं, परिवर्तनशीलता, नश्वरता, जन्म-मृत्यु, जरा-रोग, भय-त्रास, कर्म-धर्म, कर्तव्य, रीति-रिवाज, सुख-दुःख, पाप-पुण्य आदि का मूल है। **'मैं'** (जीव) अवचेतनावश देह धर्म में जन्मों-जन्मान्तरों से जीव-कोटि में भटक रहा हूँ। मुझे देह से मोह हो गया है। **'मैं'** (जीव) ने देह को धारण कर लिया ***('धारयति इति धर्म')***। अवचेतना में मेरा मूल धर्म देह ही हो गई। मैं देह हूँ और मैं देह ही हूँ से होते-होते, देह तो **मैं हूँ ही** ने एक देह को असंख्य देहें (देहिनाम्) बना दिया। हर स्थिति, स्थान, अवस्था और समय की देह के साथ **'मैं'** (जीव) ने अपनी **'मैं'** जोड़ दी। अपनी एलबम में लगे चित्र मैं सबको दिखाता हूँ। यह दो वर्ष का बच्चा **'मैं'** हूँ, यह **'मैं'** जब स्कूल गया, यह **'मैं'** जब अपने माता-पिता के साथ

अमेरिका गया, यह **'मैं'** शादी से पूर्व, यह **'मैं'** जब डॉक्टर बना, यह **'मैं'** अपनी पत्नी के साथ, यह **'मैं'** जब एक बच्चे का पिता था, यह **'मैं'** जब दो बच्चों का पिता बना, यह **'मैं'** अपने नए घर में, यह **'मैं'** जब मेरी नई दुकान खुली, यह **'मैं'** जब मेरा प्रमोशन हुआ और मैं उच्चाधिकारी बन गया, यह **'मैं'** अपने बेटे के विवाह के अवसर पर, यह **'मैं'** जब मेरा पोता हुआ आदि-आदि देहों में **'मैं'** अपना मूल देहातीत सच्चिदानंद स्वरूप खो बैठा।

सद्‌गुरु पूछता है कि–''बेटा! इन समस्त चित्रों में से तू कौन है,'' कि ''ये सभी **'मैं'** हूँ।'' ''एक तू इतनी अलग-अलग देहें कैसे हो सकता है, तुझे देह धारणा हो गई है, कि इतनी देहों में एक **'मैं'** ही हूँ। इस प्रकार एक देह की धारणा में देह के असंख्य रूप-स्वरूप हो गए। देह के उन समस्त रूपों के साथ प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट जगत में असंख्य भिन्न-भिन्न देहें भी थीं और आगे भी होंगी। आज की देह और उसके साथ प्रकट जगत की देहें उन सब से भिन्न हैं।

'मैं' देह ही हूँ की मान्यतावश एक **'मैं'** ही भिन्न-भिन्न हो गया। **'मैं'** हिन्दू हूँ, **'मैं'** मुसलमान हूँ, **'मैं'** अमुक पार्टी का हूँ, **'मैं'** शासक हूँ, **'मैं'** प्रजा हूँ, **'मैं'** ब्राह्मण हूँ, **'मैं'** शूद्र हूँ, **'मैं'** सन्यासी हूँ, **'मैं'** गृहस्थ हूँ, **'मैं'** ब्रह्मचारी हूँ, **'मैं'** डॉक्टर हूँ, **'मैं'** अध्यापक हूँ, **'मैं'** पापी हूँ, **'मैं'** चोर हूँ, **'मैं'** पण्डित हूँ, **'मैं'** नीच हूँ, **'मैं'** पुलिस इन्सपैक्टर हूँ। स्वयं में अभिन्न और एक ही समान **'मैं'** साथ लगाने पर हर देह की क्रियाशीलता हुई और इस क्रियाशीलता ने एक **'मैं'** को साकार देह की असंख्य भिन्न-भिन्न विधाओं में भिनभिनाने पर विवश कर दिया। एक देह को सबसे भिन्न मान लिया और भिन्न-भिन्न में असंख्य भिन्नताएँ आरोपित कर ली। इस प्रकार मैं, मैं से ही स्पर्धा, होड़, जोड़-तोड़, वैर-वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिस्पर्धा, मित्रता-शत्रुता आदि व्याधियों में घिर गया और अपना मूल सद् चेतन आनन्द स्वरूप खो बैठा। यदि सब में मात्र देह धारणा होती, तो भी भिन्न-भिन्न देहों में भिन्नताएँ होते हुए भी धारणा में भिन्नता न होती। हर एक देह अपने में अनुपम होती।

'मैं' देहातीत है, इसलिए एक देह की **'मैं'** सबकी है। चाहे कोई किसी

धर्म, कर्म, सम्बन्ध, आर्थिक स्थिति, देश, काल, पद अथवा किसी भी युग का हो। देहें भिन्न-भिन्न हैं। सदगुरु कहता है, कि ''इस भिन्नता को मिटाने और अपना एक सर्वव्यापक स्वरूप पाने के लिए जीवात्मा (**मैं**) को मानव-देह मिली है। लेकिन जीव-भाव में तूने भिन्न-भिन्न देहों में भिन्नताओं को मान्यता देते हुए एक मिथ्या आडम्बर रच दिया।'' अवचेतनावश जीव-कोटि में जीवात्मा मानसिक ह्रास को अपना तथाकथित विकास या वृद्धि मानने लगा। इसकी हर प्राप्ति संकीर्ण व संकुचित हो गई। एक **'मैं'** ने अनेकों को अनेकानेक और अनेक (नेकी रहित) कर दिया और अनेकों की **मैं'** एक ही रही।

देह के मोह में एक देह की अपनी असंख्य विभिन्न देहों में और विभिन्न समय, स्थिति और स्थानों पर उन देहों पर आधारित भिन्न-भिन्न देहों में एक **'मैं'** असंख्य नाम, असंख्य रूपों में मक्खियों की तरह भिनभिनाने लगा। स्वयं अपना आपा खोकर जीव-भाव में जीवात्मा ऐसा भटकने लगा, कि अपना मूल स्वरूप खोकर भूल ही गया। जीवात्मा, नाम-रूप की देह की सीमा में तुच्छ सा जीव बनकर अपना विस्तृत सच्चिदानंद स्वरूप खोकर भूल ही जाता है, कि मैं देह ही हूँ और देह तो मैं हूँ ही। अपनी पुरानी देह के मोह में अपने को अपने से ही छोटा-बड़ा समझता और मानता रहता है।

मैंने हर अवस्था, स्थिति, स्थान और समय की भिन्न-भिन्न देहों के साथ एक **'मैं'** को लगाया, कि यह सब **'मैं'** हूँ। सद्‌गुरु कहते हैं कि, ''तू एक देह नहीं अपनी अनेक देहों को **'मैं'** और मेरी कह रहा है। तेरी समय-समय की, विभिन्न स्थानों एवं स्थितियों की देहों के साथ अन्य अनेक देहें भी होती हैं, थीं और होंगी। हर देह में अनेकों के साथ **एक** तू एक में अनेक और अनेकों में **एक** है, था और होगा। तेरी प्रत्येक देह के साथ एक जगत होता है, इसीलिए हर एक देह स्वयं में अनेक थी, है और होगी। समय-समय की इन समस्त जो, जब, जहाँ, जैसी भी पृथक्-पृथक् देहों में तुझे भिन्नता इसलिए लगती है, क्योंकि भिन्नता है। भिन्न-भिन्न देहों व उनके साथ के समय-समय के जगत की देहों में परस्पर भिन्नता के

रंग-रूप, चाल-ढाल, पद-प्रतिष्ठा, नाम-यश, आर्थिक व सामाजिक स्थिति, उन्नति-अवनति, डिग्रियाँ, धन-सम्पदा, प्रौपर्टी, धर्म-कर्म-कर्तव्य आदि-आदि अनेकानेक कारण हैं। ये समस्त विधाएँ सतत् परिवर्तनशील हैं इसलिए भिन्नताएँ तो बनी ही रहेंगी। तू 5 वर्ष का बच्चा भिन्न था, उस समय के जगत के तेरे साथी और जगत भी तेरे से और परस्पर भिन्न थे। इस प्रकार जैसे-जैसे तेरी देह भिन्न हुई, उसके साथ का जगत अनेक भिन्नताओं में तेरे साथ भिन्न-भिन्न रहा। इन सब देहों में तू चाहते हुए और न चाहते हुए भी भिन्न ही रहेगा। हर क्षण तू देह रूप में भिन्न है और तू इस भिन्नता को बढ़ा ही रहा है। अब तू अपनी पंच तत्त्वों की देह का कोई ऐसा तत्त्व अधिगृहीत कर, जो तेरी भिन्न-भिन्न देहों का और उन भिन्न-भिन्न देहों के साथ प्रकट जगत में विभिन्न देहों का एक ही हो। तेरा, तेरे से और तेरा, तेरे जगत में प्रकट-अप्रकट किसी देह से कोई भिन्नता न हो। ऐसा तत्त्व जो सबका देह से, देह का एक ही हो और जिसका सम्बन्ध entirely, wholely, solely देह से ही हो।

देह की देहों से जहाँ भिन्नता समाप्त हो जाती है, वे देहातीत तत्त्व **'मैं'** और **'भस्मी'** हैं। जैसे तू नाम-रूप की अवचेतना में आया, तो तूने **'मैं'** तत्त्व को लगाया। **'मैं'** के लगे बिना देह की कोई विधा, कोई भी क्रिया-अक्रिया, भिन्नता या अभिन्नता प्रमाणित व प्रकाशित नहीं होती। सोए हुए, मृतकावस्था एवं मूर्च्छावस्था में सब एक जैसे ही होते हैं और **मैं** activating factor है, जो सबका एक ही है। समष्टि का द्योतक व्यष्टिगत **'मैं'** है और व्यष्टि की **'मैं'** समष्टि की है। **'मैं'** लगते ही सब भिन्न-भिन्न होकर भिनभिनाने लगते हैं। असमान और भिन्न-भिन्न देहों की **मैं'** देहातीत और समान है। भिन्न-भिन्न की **'मैं'** अभिन्न है, क्योंकि **'मैं'** भिन्नातीत है। सबकी **'मैं'** एक इसलिए है, क्योंकि **'मैं'** (जीवात्मा) एक ही है। इसी प्रकार दूसरा समान तत्त्व है–**'भस्मी'**। यह भस्मी inactivating factor है, जो सबका एक ही है और यह तत्त्व सब भिन्न-भिन्न देहों की भिन्नताओं को समाप्त कर देता है। जैसे तेरी एक देह की **'मैं'** युगों-युगान्तरों के भूत, भविष्य और वर्तमान

की समस्त देहों की एक थी, है और होगी, उसी प्रकार तेरी एक देह की **'भस्मी'** भी युगों-युगान्तरों के भूत, भविष्य और वर्तमान की समस्त देहों की एक ही थी, है और होगी।

'मैं' और **'भस्मी'** दोनों तत्त्वों की किसी से कोई प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, भय व घृणा नहीं है। स्पर्धा, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, वैर, द्वेष व घृणा तो द्वैत में और भिन्नता में ही होता है। **'मैं'** और **'भस्मी'** दोनों तत्त्व भिन्नता से परे और देहातीत हैं। दोनों पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश पाँचों तत्त्वों से परे हैं। भिन्न-भिन्न भिन्नताओं को activate और प्रमाणित करने वाली सबकी **'मैं'** स्वयं में भिन्नता रहित और एक ही है। **'भस्मी'** inactivating तत्त्वातीत तत्त्व है, जिसमें समस्त भिन्नताएँ समाप्त हो जाती हैं। यह भी सबका एक ही है। देह सहित साकार जगत की समस्त दैवीय क्रियाएँ और अक्रियाएँ देहातीत क्षेत्र **'मैं'** या **'भस्मी'** अथवा **'मैं'** और **'भस्मी'** दोनों से प्रेरित, संचालित, निर्देशित और सम्पादित होती हैं। पंच तत्त्वों की देह के रहते जीवन-काल में देहातीत **'भस्मी'** तत्त्व का चिन्तन करवा कर सद्‌गुरु जीवात्मा की विशुद्ध **'मैं'** की स्मृति भगवती जाग्रत करता है। इस स्मृति के विषय में श्रवण श्रुति भगवती है।

मैं स्वयं को देह से नहीं, देह की भस्मी से जोड़ लेता है, कि 'मैं भस्मी हूँ'। भिन्न-भिन्न, विभिन्न देहों की भिन्नताएँ **'मैं'** और **'भस्मी'** के मेल में तिरोहित होने लगती है। जीवात्मा अपनी देह सहित समस्त जगत की विभिन्न भिन्न-भिन्न देहों में अपने इष्ट का स्वरूप देखते हुए प्रभु की लीलाओं का रसास्वादन करता है। देह की भस्मी जो सबकी एक है, उसका चिन्तन शंकर चिन्तन है। मैं देह नहीं हूँ तो मैं कौन हूँ ? यह जिज्ञासा जब चरमोत्कर्ष पर पहुँचती हुई जनून और दीवानगी का रूप ले लेती है, तो जीवात्मा आर्तनाद करता है–**'मैं'** मात्र ईश्वर का हूँ और मात्र **'मैं'** ईश्वर की इकलौती सन्तान हूँ। **'तू'** (ईश्वर) मात्र मेरा है और मात्र **'तू'** मेरा है। इस वैरागमयी मनःस्थिति से भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस स्थिति में समस्त भिन्न-भिन्न देहों में भिन्नता समाप्त हो जाती है। जीवात्मा एक ही है, वह स्वयं

में पूर्ण और इतनी भिन्न है, कि देह रूप में दृश्यमान सभी भिन्नताओं में उसे केवल **'मैं'** (जीवात्मा) अथवा **'तू'** (परमात्मा) ही नज़र आता है।

मेरी पंच-तत्त्वों की मानव-देह का, देह से मात्र एक अवशेष तत्त्वातीत तत्त्व भस्मी है, जो मात्र देह व देह मात्र का एक ही है। वह भस्मी जो देह रूप में मुझ द्वारा मुझसे प्रकट होगी ही, मुझे उसका जीवन-काल में देह के दौरान, देह के लिए सदुपयोग करना है। देह में मेरा मात्र यही कर्म है और यह कर्म किसी के हाथ में नहीं है। सद्गुरु कहता है, कि ''तू यदि देहाधिपत्यवश देह मेरी है और देहाध्यासवश मैं देह हूँ, कहता है, तो भस्मी भी तो देह की ही है। तो भस्मी मेरी है, मैं भस्मी हूँ की धारणा क्यों नहीं करता?''

पंच-तत्त्वों की समस्त सृष्टि प्रपंच है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश इन पाँच तत्त्वों में क्रमशः ऐश्वर्य, सौन्दर्य, ख्याति, शक्ति और ज्ञान पाँच ईश्वरीय विभूतियाँ प्रकट होती हैं। पंच तत्त्वों का अस्तित्व तत्त्वातीत तत्त्व भस्मी है। दुर्भाग्यवश जीव-भाव की देहासक्ति में सौन्दर्य—काम, ऐश्वर्य—लोभ, ख्याति—मोह, शक्ति—क्रोध और ज्ञान—अंहकार में रूपान्तरित हो विकृतियाँ बन जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह व अंहकार का मूल मोह है। छटी विभूति **'विरक्ति'** है जिसके साथ विकृति कोई नहीं है। शिव इन तत्त्वों एवं विभूतियों से अतीत तत्त्वातीत तत्त्व एवं विभूत्यातीत विभूति वैराग है। विरक्त पाँच विभूतियों में आसक्त नहीं होता। वीर स्वयं में विरक्त होता है, उसे विभूतियों की आसक्ति नहीं होती, बल्कि विभूतियों को उसकी आसक्ति होती है। विरक्त के आसपास विभूतियाँ उसकी शरण में आने के लिए तरसती हैं। इस प्रकार विरक्त स्वतः ही समस्त विभूतियों से विभूषित रहता है।

अवचेतनावश जीव-भाव में देह के मोह में जब **'मैं'** (जीवात्मा) पाँच विकृतियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अंहकार) में जकड़ा गया, तो आसक्त हो गया और अपनी मूल विरक्ति को गँवा बैठा। भिन्न-भिन्न विभिन्न भिन्नताओं में समरसता और अभिन्नता के लिए **'मैं'** और **'भस्मी'** दोनों

देहातीत तत्त्वों का मेल सिद्ध करना होगा। हम सब समस्त भिन्नताओं में इस भौतिक व दैहिक सद् का चिन्तन करें, कि हमारे समक्ष अनुकूल या प्रतिकूल जो भी हैं, उनका प्रेरक, संचालक एक ईश्वरीय शक्ति ही है। **'मैं'** मेरी एक देह सहित अनेकों का Common तत्त्व है, लेकिन आसक्ति का द्योतक है। जब **'मैं'** और **'भस्मी'** मिल जाएँगे, तो Predominent भस्मी होगी, क्योंकि **'भस्मी'** शिव की विभूत्यातीत विभूति वैराग की द्योतक है। यह शिव तत्त्व है। सद्गुरु-कृपा से **'मैं'** (Activating Factor) अपनी स्वभावगत क्रियाशीलता **'भस्मी'** को दे देगी और **'भस्मी'** (Inactivating Factor) अपनी स्वभावगत स्थिरता और अक्रियाशीलता **'मैं'** (जीवात्मा) को दे देगी। क्रियाशील भस्मी ही वैराग है और स्थिर व अपरिवर्तनीय **'मैं'** ही जीवात्मा है। इसके बाद वह देह Inactivated active होती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(7 फरवरी एवं 22 से 30 अगस्त, 2009)

पाप-पुण्य

अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, जन्म-मृत्यु, राग-द्वेष, भय-त्रास, जरा-रोग, आधि-व्याधि-उपाधि, सुख-दुःख, मल, विक्षेप, आवरण आदि सब कुछ का एकमात्र कारण **'एक'** भाव है, कि **'मैं देह हूँ'**। यह देह भाव मुझे कर्ता भाव में ले आता है, जबकि देह और देहों द्वारा कर्म स्वतः ईश्वरीय निर्देशानुसार होते थे, होते हैं और होते रहेंगे। 'मैं देह हूँ' का भाव, कर्ता भाव में मुझ जीवात्मा (**'मैं'**) को जीव कोटि में काल-बन्धन एवं कर्म-बन्धन में बाँध देता है। मैं प्रभु की लीला में स्वतः हो रहे कृत्यों में भ्रमवश स्वयं को कर्ता एवं पापी-पुण्यी मान लेता हूँ। यह मान्यता ही प्रारब्ध की जननी है। कर्ता भाव में हर कृत्य के पश्चात् हमें ज्ञात-अज्ञात ताप ही होता है, पश्चात् का यह ताप हमें पिशाच बनकर जलाता है, कि ऐसा मैंने क्यों किया, ऐसा न करता तो ऐसा न होता आदि-आदि। कर्ता भाव में किए गए कृत्यों द्वारा कुछ मिल जाए, तो भी ताप होता है, न मिले, तो भी ताप होता है। जीवकोटि में मैं अपनी देह का यथार्थ, अपना सच्चिदानंद स्वरूप एवं अपने इष्ट व सद्गुरु के दर्शनों का अधिकार खो बैठा हूँ। प्रभु की दया, क्षमा और कृपा की पात्रता खोने का कारण भी पश्चात् के ताप हैं। मैं अपने मानव-जीवन की सार्थकता एवं रस खो बैठा हूँ।

पश्चात्ताप करना भूल सुधारना है। **कुछ भी करने के पश्चात् के ताप को पश्चात्ताप कहते हैं,** इसमें कर्ता भाव समाहित रहता है। इसलिए पश्चात्ताप भी स्वयं में ताप ही है। पश्चात्ताप हमेशा पाप का ही होता है। **'मैं'** जीव कोटि में देह में, देह द्वारा देह व देहों के लिए जो-जो करता-करवाता रहता हूँ, वही मुझे पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसाता रहता है। यह अन्तहीन

सिलसिला युगों-युगान्तरों से चल रहा है और चलता रहेगा, जब तक मुझे पश्चात् के तापों से मुक्ति नहीं मिल जाती। वास्तविक पश्चात्ताप यही है, कि ''हे प्रभु ! मैंने कुछ नहीं किया। मैं किसी भी कर्म का कर्ता नहीं हूँ। सब कुछ आप ही कर-करवा रहे हैं।''

एक व्यक्ति की देह के भीतर चलने वाली असंख्य क्रियाएँ, कार्य-प्रणालियाँ, दिल, फेफड़े, दिमाग, गुर्दे, लिवर, हाथ, पैर और पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ उसकी व्यक्तिगत होती हैं। लेकिन उसके द्वारा की जाने वाली कोई भी बाह्य क्रिया व्यक्तिगत नहीं है। देह द्वारा छोटी से छोटी क्रिया का बाह्य प्रकाट्य व्यक्तिगत नहीं समष्टिगत है। किसी भी छोटे से छोटे कार्य के लिए मेरी अपनी देह की आन्तरिक कार्य प्रणालियाँ एवं विभिन्न अवयव संतुलित एवं सुसम्बद्ध होने आवश्यक हैं और प्रकृति, मौसम, देश-विदेश एवं समस्त बाह्य **सर्व** का तद्नुसार संतुलित एवं सुसम्बद्ध होना आवश्यक है। इन दोनों में से मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। **'स्व'** का व्यक्तिगत शारीरिक और मानसिक आन्तरिक संतुलन और उसके साथ **सर्व** की सुसम्बद्धता आवश्यक है। कभी-कभी सब कुछ **स्व** एवं **सर्व** में ठीक होता है, लेकिन मेरा अपना मन नहीं करता। कदाचित् प्रभु इच्छा सर्वोपरि है, जिससे समस्त कृत्य होते हैं। अतः जीव कोटि में भी **'मैं'** किसी भी कर्म का कर्ता दैवीय अधिनियमानुसार होता ही नहीं। लेकिन मेरी यह मान्यता, कि 'मैंने किया है' मुझे पापी-पुण्यी बनाए रखती है।

प्रत्येक कर्म मेरी समष्टि की वजह से समष्टि द्वारा समष्टि के लिए होता है। इस समष्टि में उस समय का मौसम और प्राकृतिक विधाएँ भी होती हैं। प्रत्येक कृत्य समष्टि से प्रारम्भ होकर, समष्टि में चलता है और समष्टि में समाप्त होता है। इस प्रकार किसी भी बाह्य कृत्य का देह रूप में **मैं** (जीव) उसमें यदि मेरी उसे आवश्यकता होती है तो एक अंग मात्र होता हूँ। वास्तविकता यह है, कि मैं अपने **'सर्व'** द्वारा serve होता हूँ और **'सर्व'** की वजह से serve करता हूँ। सब सुखी नहीं होंगे, तो मैं व्यक्ति रूप में भी सुखी नहीं हो सकता।

भौतिक पदार्थों एवं वस्तुओं में यदि सुख होता, तो अब तक हम बहुत ही सुखी होते। जबकि बड़ी-बड़ी मिलें, औद्योगिक संस्थान, महल, हवेलियाँ, बेटे, पोते आदि होते हुए भी अधिकतर लोग उम्र बढ़ने के साथ निराशा में चले जाते हैं। जीवन में अब तक इतना कुछ किया-करवाया और हमें जीवन में बहुत कुछ मिला तथा बहुत कुछ हुआ। मानव-जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक करना, पाना, खोना और होना चार आयामों में चलता है। हमारी समस्त सोच, कृत्य, अकृत्य अपनी किसी न किसी चाहत के लिए होते हैं, जिसकी पूर्ति भविष्य में होनी है। देह की विशिष्ट स्थिति को भविष्य कहते हैं, जो स्वयं में किसी परिवर्तन के एवज़ में होती है और पुनः परिवर्तनशील है। प्राप्ति या खोना भविष्य की अन्य देह का है और चिन्ता इस देह (वर्तमान) में होती है।

'मैं' चाहता हूँ मेरा घर बड़ा हो अर्थात् मैं अपनी देह की ऐसी स्थिति का इच्छुक हूँ, जो बड़े घर से जुड़ी हो। मुझे और उच्च पद मिले। यह अन्य पद वाली देह की स्थिति है, जो इस समय वाले पद की देह की स्थिति से भिन्न है। वो देह यह आज के पद वाली देह नहीं होगी। जैसे यह आज के पद वाली देह परिवर्तित होगी उसी प्रकार वह उच्च पद वाली देह भी पुनः परिवर्तनशील होगी। उस स्थिति में पहुँच कर मुझे किसी और स्थिति वाली देह की कामना होगी। मैं उस स्थिति वाली देह को आज अधिक अनुकूल, सशक्त, ग्राह्य व उत्तम समझता हूँ। हो सकता है मैं आज जिस स्थिति के लिए संघर्षरत हूँ, उस स्थिति में आकर पुनः आज वाली स्थिति में आना चाहूँ।

मैं देह की स्थितियों के परिवर्तनों में और परिवर्तन चाहता हूँ। वे परिवर्तन आगे पुनः परिवर्तनशील है, तो मेरी चाहत का अर्थ (चाहतार्थ) क्या है? समय-समय पर देह के लिए (देहार्थ) असंख्य भिन्न-भिन्न पदार्थों की चाहतें होती थीं, होती हैं और होती रहेंगी। जन्म से मृत्यु के मध्य काल की निश्चित अवधि में बंधी साकार देह की सभी स्थितियाँ समय और स्थान से बंधी रहती हैं और कर्म से बंधी होने के कारण स्वतः कर्म में बाधक हैं। हर स्थिति भविष्य के भय व विष से युक्त तनाव, चिन्ता व त्रास का विषय बनी रहती है। जब हम काल-बन्धन में होंगे, तो कर्म-बन्धन में भी होंगे। उसमें

स्वतः कर्म नहीं होगा और मनःस्थिति चिन्ता, भय, विक्षेप, संकल्प-विकल्प आदि से परिपूरित होगी। वहाँ हम अपने सर्व से कट कर मात्र एक व्यक्ति रह जाते हैं। क्योंकि स्व और सर्व में द्वैत आ जाता है। वहाँ करना-पाना-खोना और होना सब कुछ तनाव युक्त व चिन्ता मिश्रित ही होता है।

मैं' मानव-देह का अर्थ समझे बिना देह के लिए (देहार्थ) विभिन्न पदार्थों की दौड़ में अपने जीवात्मा पद से च्युत होकर मानव-जीवन के **'अर्थ'** का स्पर्श भी नहीं कर पाता। मानव-देह स्वयं में ईश्वर प्रदत्त कैरियर और पद है। जीव कोटि में हम देहार्थ ही निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ की गर्त में असीम व अनन्त अधोगति में जन्म-दर-जन्म भटकते रहते हैं। यह 'देह काहे के लिए है' यह जानने के लिए मुझे देह का **'अर्थ'** जानना होगा। मुझे देह का ऐसा कोई पदार्थ चाहिए, जो मुझे मेरे पद का **'अर्थ'** बोध करा दे। किसी भी चाहत का चाहतार्थ होगा, तभी तो चाहत हुई। असंख्य चाहतों का चाहतार्थ **एक** ही है और वही **चरितार्थ** है। चिरों (अनन्त काल) से जो मेरी चाहतें थीं उनका मुझे अर्थ मिल जाए। वही मेरी देह का अर्थ तथा पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) का प्रथम सोपान **'अर्थ'** है। यहाँ से सद्‌गुरु-कृपा से पुरुषार्थ के ऊर्ध्व सापानों पर स्वतः गति होगी। देह का एक ही पदार्थ है जो मुझे मेरे पुरुषार्थ (पुरुष+अर्थ) मेरी चेतन सत्ता की स्मृति दिला सकता है। वह है, मेरी देह की **'भस्मी'**; जो देह रूप में मेरा निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है। **'भस्मी'** देहातीत है अर्थात् देह से परे है क्योंकि देह की भस्मी अवस्था स्वयं में देह की सभी स्थितियों से परे स्थित्यातीत अकाल स्थिति है।

देहातीत स्थिति अकाल स्थिति है, जो देह से परे है। जो जीवन-काल में इस स्थिति का मनन करे उसके लिए यह देह के रहते देहातीत स्थिति होगी। देह के रहते जब देह में ही देहातीत क्षेत्र **'भस्मी'** की अवधारणा सद्‌गुरु-कृपा से होगी, तो उसके पश्चात् देह भाव ही नहीं रहेगा। **'मैं देह हूँ'** देह भाव भस्मी भाव **'मैं भस्मी हूँ'** में रूपान्तरित होकर पश्चात्ताप (पश्चात् के ताप) से हमेशा के लिए मुक्ति दिला देगा। **'मैं'** जैसी देह है, जहाँ भी है, जो भी है उस **देह में** कुछ न कुछ चाहता हूँ, लेकिन सभी देहों का देहातीत एक

ही है। **'मैं'** तत्त्व जो देह व सभी देहों का एक ही activating factor है और भस्मी तत्त्व जो देह व सभी देहों का एक ही समान inactivating factor है। मेरी देह की वह भस्मी जो देह के पश्चात् जड़ रूप में है उसकी जब मैं देह के रहते देह धारणा के ऊपर अवधारणा करूँगा तो वह अवधारणा ही धारणा बनकर तापों को हर लेगी। वह जड़ भस्मी चेतन (Active) होकर वैराग रूप में मेरे मन का विनोद करेगी। मेरे चिरों की चाहतों का चाहतार्थ, चरितार्थ होकर मुझे पुरुषार्थ के प्रथम सोपान **'अर्थ'** पर पहुँचा देगा। मैं निरर्थ, व्यर्थ व अनर्थ की अधोगति से उबर कर अपने उस पद का **'अर्थ'** पा जाऊँगा, जिससे च्युत होकर जन्म-दर-जन्म भटक रहा था।यह स्थित्यातीत अकाल स्थिति है, जिसमें समय और स्थान लागू नहीं होते। इस स्थिति का अधिष्ठाता महाकालेश्वर है। यह अकाल स्थिति भी उसी की इच्छा से बनेगी जिसकी इच्छा से काल की हर स्थिति बनती है। यह स्थिति कर्म-बन्धन से भी मुक्त है इसलिए स्वतः कर्म में बाधक नहीं है। इस स्थिति में कर्म स्वतः एवं अनायास ही होते रहते हैं। महाकालेश्वर काल एवं अकाल दोनों का ईश्वर है, स्वामी है।

भस्मी देहातीत पदार्थ है और ऐसा दिगम्बर तत्त्व है, जो देह के पश्चात् पदार्थ रूप में प्रकट होता है। पंच-महातत्त्वों (पृथ्वी, वायु, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश) से संगमित देह में अदृश्य भस्मी वैराग के रूप में सहज जड़ पंच-महाभूतों की साकार देह व देहों सहित समस्त सृष्टि में होती दशानन (निरन्तर, चिरन्तन, अविरल, अकाट्य, अबाध, सारगर्भित, विशिष्ट, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) गतियों की शक्ति है। इस सृष्टि की निर्माण, पालन व संहार तीन विधाएँ हैं। संहार में विरक्ति शक्ति का प्रतिनिधित्व, पंच-महाभूतों की देह के पंच-तत्त्वों के विलीन हो जाने पर भस्मी रूपी पदार्थ के रूप में दृश्यमान होता है। देह के दौरान, भस्मी चिन्तन भस्मी की चेतनता (विरक्ति) को जाग्रत करता है। देह के पश्चात् प्रकट होने वाली भस्मी जड़ होगी। देह के पश्चात् जब मैं उस भस्मी तत्त्व में पहुँचूँगा तो उस पदार्थ का मेरे लिए मूल्य और उपयोगिता ही नहीं रहेगी। देह के दौरान देह की भस्मी

की स्मृति भगवती है, जिसकी ममता की मृदुल दुलार भरी छाँव मुझे मेरे स्वरूप की स्मृति दिलाएगी और मैं अनुभव कर पाऊँगा, कि मैं देह नहीं हूँ। देह रूप में जो कुछ करना-पाना-खोना-होना हुआ वह सब मैंने किया नहीं मुझसे करवाया गया और जो करवाया गया वह हो चुका था। इसलिए मेरे द्वारा सर्व सहित वैसा होना ही था। मुझे सद्गुरु-कृपा से आज की अपनी देह और भूत, भविष्य में प्रकट-अप्रकट समस्त देहों के दोनों समान तत्त्वों **'मैं'** और **'भस्मी'** को देह के रहते मिलाना होगा। भस्मी तत्त्व का चिन्तन शंकर का चिन्तन है जो मेरी समस्त देहों के मोह को हर लेगा। मुझे अपनी दिगम्बरता अथवा देह के रहते देह से परे होने का आभास हो जाएगा। वह पदार्थ देह के दौरान मेरे मन का विनोद करेगा। **भस्मी'** वह पदार्थ या वस्तु है जो विशेष देह का है, लेकिन वह पदार्थ देह विशेष का नहीं है। कोई विशेष देह उसका अतीत नहीं है। जिसका अतीत देह नहीं है उसका वर्तमान और भविष्य भी देह नहीं है। वह कालातीत व अकाल है।

समय-समय की भिन्न-भिन्न समस्त देहों और उन पर आधारित भिन्न-भिन्न विचारणीय, उपेक्षा योग्य, प्रेम या घृणा युक्त एवं अन्यथा सभी देहों का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **एक ही है**—वह है **भस्मी।** देह का यह अर्थ ही मुझे मेरे धर्म (वैराग) की स्मृति दिलाएगा। देह का **'अर्थ'** भस्मी रूप में पदार्थ है और इसका अर्थ विरक्ति भाव है। वैराग **'धर्म'** है। जिसकी स्मृति देह धारणा में देह में विभिन्न पदार्थों की दौड़ में धुँधली पड़ गई थी। भस्मी रूप में वैराग धर्म की स्मृति ही पुण्य है। जो पाप से अन्य (पाप+अन्य=पापान्य) है, वह पुण्य है। मुझे देह का वह पदार्थ जो देह के बाद प्रकट होगा उस **भस्मी** का अधिग्रहण देह के दौरान करना ही होगा। जो मात्र कृपा-साध्य ही है। मानव-देह के इस अर्थ (भस्मी) से आत्मसात् होने की आर्तनाद ही जीवन को सार्थक बनाएगी। वही पुरुषार्थ है जो अन्ततः मोक्ष दिलवा देगा।

'बोल सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(4 एवं 5 सितम्बर, 2009)

अतीन्द्रिय

इन्द्रियों को जीतने के लिए अनेक साधकों ने बहुत कठिन तप किया, कि इन्द्रियाँ साधना में बाधक न बनें। जो इन्द्रियाँ साधना में बाधक हो सकती हैं, वे सहायक भी हो सकती हैं। समस्त साकार महाब्रह्माण्ड का आधार नाम-रूप की अवचेतना में मेरी देह है। देह है तो ब्रह्माण्ड है। इस साकार ब्रह्माण्ड के आनन्दमय रसास्वादन के लिए प्रभु ने मानव-देह में पाँचऽज्ञानेन्द्रियाँ दीं। प्रत्येक इन्द्रिय में इतनी शक्ति है, कि वह अतीन्द्रिय व देहातीत क्षेत्र में ले जा सकती है। इन्द्रियों के संतुलन से साधक अतीन्द्रिय हो सकता है। प्रभु ने मात्र मानव को यह अधिकार दिया, कि वह ईश्वरीय प्रकृति का बाध कर सकता है। थलचर, नभचर, जलचर तथा अन्य प्राणी जगत **'प्रकृति'** के अधीन हैं, उनके अनुकूलन एवं समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति द्वारा ही स्वतः होती है।

योगी और भोगी दोनों प्रकृति का बाध करते हैं। भोगी इन्द्रियों के सुखों के लिए प्रकृति का बाध करता है और योगी इन्द्रियों के सुखों से परे अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति के लिए प्रकृति का बाध करता है। अतः आहार एवं व्यवहार में नियन्त्रण एवं संतुलन बहुत आवश्यक है। तब प्रतिरोधक इन्द्रियाँ ही सहायक हो जाती हैं। साकार ब्रह्माण्ड की किसी भी विधा का आनन्दमय सुख परम सुख है और वह सुख अतीन्द्रिय है। आनन्द अतीन्द्रिय एवं देहातीत है और सुख इन्द्रियों का है। सद्‌गुरु कहते हैं, कि "तू इन्द्रियों से अतीन्द्रिय या इन्द्रियातीत हो जा।" इन्द्रियों की समस्त प्रक्रियाओं, विशेषताओं, गुण, धर्मों को देह द्वारा पार कराते हुए एवं देह के रहते देहातीत स्थिति अतीन्द्रिय है। इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियों के सुख लेते हुए

उन्हें सम्मान देते हुए अपने **साधन** (देह) द्वारा **'साधक'** (देह के साथ तद्‌रूप जीव) सुख के स्रोत अपने **'साध्य'** (विशुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप) की **सद्‌गुरु** (दिशा-निर्देशक) की कृपा से **सिद्धि** करता है। सद्‌गुरु के दिशा-निर्देशानुसार देह द्वारा किया गया हर प्रकरण उसकी **साधना** बनते हुए, इस सिद्धि में सहायक होता है।

होश सम्भालते ही हम मानव साकार देह के साथ तद्‌रूपतावश जीव-सृष्टि में भटकने लगते हैं। साकार जगत में बहुत कुछ एकत्र करने और जीवन में विभिन्न भविष्यों को पूरा करने की लालसाएँ ही हमारी भटकन का कारण हैं। हम जानते हैं, कि सब नंगे भूखे पैदा होते हैं और मृत्योपरान्त इसी स्थिति पर चिता अथवा कब्र में डाल दिए जाते हैं। साकार देह की अवधि का भी किसी को कोई ज्ञान न था, न है और न हो सकता है। जिस देह व जीवन का कभी भी अन्त हो सकता है, उसमें अपने लिए हम क्या चाह रहे हैं ? जो पहले था नहीं और अन्ततः रहना नहीं है, वह मध्य में भी, है **सा** है। इसलिए बहुत कुछ पाकर और एकत्र करके भी हम आसक्तियों को लेकर मरते हैं। जिन वस्तुओं, पदार्थों और साकार जगत की विविध विधाओं में आसक्ति थी, वे यहीं रह जाती हैं तथा निराकार आसक्ति साथ जाती हैं। साकार वस्तुओं की आसक्तिवश उन्हें एकत्र करने के लिए **मैं** संघर्ष करता रहा, दूसरे एकत्रित होने के बाद किसी कारणवश उनसे वंचित कर दिया गया तो महा आसक्ति हो गई। आसक्ति-दर-आसक्ति से जन्मों-जन्मान्तरों में मन+सिकता= मानसिकता में Sickness बढ़ती रहती है। मैं इन्द्रियों के सुखों-दुःखों में आनन्द से वंचित सा **ही** रहता हूँ।

चाहत स्वयं में निराकार है और जिस मन में प्रस्फुटित होती है, वह मन भी निराकार है। लेकिन जिस वस्तु, पदार्थ अथवा बाह्य प्राणी जगत से सम्बन्धित विधा की चाहत है, वह साकार है। निराकार मन में प्रस्फुटित निराकार चाहत जब किसी आकार की होती है, तो वह **'आसक्ति'** होती है। वह मन को अशक्त व दुर्बल कर देती है, क्योंकि वह देह के साथ तद्‌रूपता और लिप्तता का लक्षण व कारण है। **जब निराकार मन की निराकार**

चाहत निराकार के लिए होगी, तो 'विरक्ति' कहलाती है। यही आसक्ति और विरक्ति का अन्तर है। आसक्ति **'अशक्ति'** है और विरक्ति **'वीरता'** है। आकार की चाहत जब साकार जगत में प्रकट हो जाती है, तब भी मानस की चाहत समाप्त नहीं होती और चाहतें बनकर कई गुणा बढ़ जाती हैं। साकार विधाओं की समस्त चाहतें आसक्तिवश होती हैं, यदि निराकार की चाहत है, तो वह विरक्तिवश है। प्रभु और सद्‌गुरु से सम्बन्धित चाहतें निराकार की होती हैं। वह विरक्तिवश ही उत्पन्न होती हैं। सद्‌गुरु तत्त्व है, ईश्वर तत्त्व है। ईश्वर का ईश्वरत्व और सद्‌गुरु का गुरुत्व तत्त्वतः निराकार है। जीवात्मा अपने पिता परमात्मा का मानस-पुत्र है। इसका **'विशुद्ध मन'** एक **'अभावमय भाव'** है। यह अभावमयता ही आनन्द है। यह मन स्वयं में परिपूर्ण, तृप्त, सन्तुष्ट, आसक्ति रहित एवं विरक्त चैतन्य से ठसाठस ओत-प्रोत है :—

''ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखराशि।''

यह सुखराशि मानस (जीवात्मा), देह सहित साकार जगत की किसी प्रपंचमय विधा को **'भाव'** (मूल्य) नहीं देता, इसलिए अभावमय है। जीवात्मा का स्वयं अपना **'भाव'** इतना बड़ा है, कि वह किसी अन्य भाव को भाव (मूल्य) नहीं दे सकता। जब वह अपने उस अभावमय भाव के आनन्द में विचरण करता है, तो देह सहित जगत की समस्त विधाएँ उसके प्रति भाव रखती हैं। समाधि का आनन्द बहुत दुर्लभ है। एकान्त की इस स्थिति के भाव (मूल्य) का हमें ज्ञान ही नहीं है। एकान्त के आनन्द का भाव (मूल्य) वही जानता है, जिसने सद्‌गुरु-कृपा से उसका अनुभव किया है। यह दुर्लभतम है, क्योंकि जो जानते हैं, वही इसे जानते हैं और मानते हैं तथा अमूल्य निधि के समान छिपाकर रखते हैं।

योगी के पास अभावमय आनन्द होता है। संसार के समस्त सुखों, उपलब्धियों, प्राप्तियों और ऐश्वर्यपूर्ण भोग पदार्थों के रसास्वादन का स्रोत अभावमय आनन्द है। इन्द्रियों के सुख लेने की और समस्त साधनों के सुख देने की सीमा जहाँ समाप्त हो जाए और उसके आगे जाने, जानने और पाने की तीव्र उत्कण्ठा जनून, वहशियत या दीवानगी बन जाए, वहाँ से देह की

इन्द्रियाँ ही नतमस्तक होकर अतीन्द्रिय एवं अभावमय आनन्द में प्रविष्टि दिला देती हैं। आँख, नाक, कान, त्वचा एवं जिह्वा द्वारा सुख लेने की और विभिन्न साधनों के सुख देने की सीमा बहुत ही सीमित है। विवेकशील मानव, चिन्तन करता है, कि सुख-साधनों की उपलब्धि मेरे पास कब तक रहेगी? यह उपलब्धि बनी भी रहे, तो जो देह निरन्तर परिवर्तनशील है, उसकी इन्द्रियों की भोग क्षमता क्षीण हो रही है, साथ ही सुख लेने की इच्छा निरन्तर तीव्र होती जा रही है।

साधनों के अभाव, इन्द्रियों की क्षमता की क्षीणता और सुख लेने की आकांक्षाओं की तीव्रता मानसिक विक्षेप की जननी है। वहाँ विशुद्ध मन में एक रोग या Sick**'ता'** का प्रस्फुटन हो जाता है, इसे मानसिकता कहते हैं। मन का Sick (रोगी) हो जाना मानसिकता है। यह मानसिकता उसे इन्द्रियों के सुखों और साधनों की खोज में जन्मों-जन्मान्तरों में भटकाती रहती है। इन्द्रियजनित सुख सीमित है और इस सीमित सुख के लिए भी विभिन्न साधनों की आवश्यकता होती है। वृद्धावस्था, रुग्णावस्था और विशिष्ट दैहिक स्थितियों एवं अवस्थाओं में इन्द्रियाँ भरपूर सुख-साधन होते हुए भी सुख देने में अक्षम हो जाती हैं। सुख-साधन हमेशा उपलब्ध ही हों, यह भी आवश्यक नहीं है। सुख-साधन हों लेकिन हमारी रुचि और पसन्द के अनुकूल न हों, तब भी इन्द्रियाँ हमें सुख नहीं दे पातीं। अन्ततः सब कुछ हो, लेकिन किसी भी ज्ञात अथवा अज्ञात कारणवश हम चिन्तित, तनावित या भयभीत हों, तो भी सुख 'दुर्गम एवं दुर्लभ' ही रहता है। किसी भी प्रतिकूल स्थिति में मानसिक तनाव एवं विक्षेप बहुत बढ़ जाता है। इसलिए मनपसन्द सुख-साधन भी हैं, स्वस्थ इन्द्रियाँ भी हैं, लेकिन सब कुछ होते हुए भी हम सुख नहीं ले पाते।

अधिकतर हम संसारी लोग दृश्यमान जगत में उलझ जाते हैं। दृश्यमान जगत में देखने, सुनने, सूँधने, चखने एवं स्पर्श करने की समस्त विधाएँ आ जाती हैं। दृश्य साकार है और इन्द्रियाँ भी साकार हैं। किसी मनःस्थिति में दृश्यमान साकार जगत की विविध विधाओं को देखा, सुना,

सूँघा, चखा और स्पर्श किया और भोग के बाद जो मनःस्थिति बनी, दोनों मानसिकताएँ पृथक् एवं विशेष रूप से विचारणीय हैं। एक विशेष मनःस्थिति में इन्द्रियों के सुख के लिए लालायित होते हुए एक कार्यक्रम निर्धारित हुआ। उसके अधिग्रहण के दौरान क्या मनःस्थिति थी और उसके बाद भी जो मनःस्थिति बनी, इन तीनों मानसिकताओं में अक्सर एकरूपता नहीं होती। कभी बड़े उत्साह से कोई फिल्म देखने अथवा अपना मनपसन्द भोजन खाने लगे, लेकिन देखने या खाने के बाद ऐसा लगा, कि सब कुछ बिल्कुल बेकार था। हमारी पूर्ण एकाग्रता साकार जगत की विविध विधाओं की ओर रहती है, जबकि सारा खेल निराकार का है। दृश्य और दृष्टि अथवा समस्त **'ज्ञानेन्द्रियाँ साकार'** हैं, लेकिन जिस दृष्टिकोण से साकार का अधिग्रहण हुआ और उसके अधिग्रहण के बाद मानस पर पड़ा प्रभाव **'निराकार'** है।

मनःस्थिति को ही मानसिकता कहते हैं। यदि मन स्वयं में किसी भी **'स्थिति'** से परे हो, वह अभावमय एवं आनन्दमय होता है। जो मन स्थिति युक्त है, वह सुख-दुःखों वाला है। स्थित्यातीत मन के लिए किसी सुख-दुःखमयी स्थिति के प्रति कोई भाव नहीं होता। उसके सम्मुख जो भी वस्तु होती है, उसके अधिग्रहण में उसका अपना आनन्द प्रकट होता है अन्यथा वह स्वयं में आनन्द में तो है ही। वस्तुएँ उससे आनन्द लेती हैं। सद्गुरु कहता है, ''तू इस देह सहित जगत के सब कुछ से 'कुछ नहीं' (देहातीत भस्मी) की अनुभूति कर। वह कुछ नहीं ही शिव तत्त्व है। वहाँ देह व उसकी इन्द्रियाँ स्वतः नहीं रहती। **'भस्मी** तेरी सम्पूर्ण देह व देहों का ऐसा क्षेत्र है, जो देहातीत, निराकार एवं दृश्यमान है। यह भस्मी ही शिव की विभूत्यातीत विभूति विरक्ति है। वहाँ तू स्वतः कालातीत, इन्द्रियातीत, देहातीत हो जाएगा। वह अतीन्द्रिय क्षेत्र है। देह के रहते उस क्षेत्र में जब तेरी तद्रूपता हो जाएगी, तो देह व देहों का मोह दूर हो जाएगा और तू अतीन्द्रिय हो जाएगा।''

'बोल सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(3 , 19 फरवरी एवं 3 मार्च 2009)

आवरण

आज प्रभु प्रेरणा से आप समस्त विशिष्टतम् जिज्ञासुओं की उत्कृष्ट जिज्ञासावश, अध्यात्म के अति गोपनीय एवं परम रहस्यमय विषय का अनावरण करूँगा, विषय है—**'आवरण'।** कृपया अति श्रद्धापूर्वक एवं एकाग्रता से इसका श्रवण करें। आप निस्सन्देह गद्‌गद्, उल्लसित, सौभाग्यशाली एवं परम सुखी हो जाएँगे। मानव-जीवन स्वयं में जश्न एवं महामहोत्सव है। जश्न को **'यजन'** कहते हैं। जिस जीवन में यजन नहीं है, वह जीवन अधूरा है। जीव+न = जीवन; **'मैं'** जीव नहीं, विशुद्ध जीवात्मा हूँ। मैं यथार्थ देह हूँ **'मैं'** सच्चिदानंद एवं छः विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति एवं वैराग) से विभूषित परमात्मा की जैसी ही एवं इकलौती सन्तान हूँ। जिस जीवन में इन आच्छादित, छिपे हुए एवं आवृत **'सद्'** तथ्यों का अनावरण हो जाए; वही सार्थक व वास्तविक मानव-जीवन है।

ईश्वर ने सृष्टि की संरचना **'यज्ञ'** द्वारा की। शिव-शक्ति-क्रीड़ा स्वयं में यजन है। यह आनन्द में, स्वयं की, स्वयं के साथ, स्वतः एवं स्वान्तः सुखाय क्रीड़ा है। यज्ञ-हवन निराकार की उपासना है। निराकार की उपासना का फल असीम व गणनातीत है। सम्पूर्ण साकार जगत रूपी वृक्ष का मूल (जड़) निराकार एवं अदृश्य है। एक वृक्ष अपनी जड़ से सिंचित एवं पोषित होकर ही पल्लवित एवं फलीभूत होता है। जड़ ही उसका आधार है। जीव-सृष्टि में मानसिक रूप से संकीर्ण व तुच्छ होने के कारण हमारे साकार जगत में घुन लग जाता है। हम कष्टों से घिर जाते हैं और भय, विक्षेप, आधि-व्याधि-उपाधि, त्रास, मलिनता से परिपूरित होकर आवृत हो जाते हैं, तो इनसे छुटकारा पाने के लिए मूल (निराकार) की पूजा-उपासना की जानी

चाहिए। समस्त साकार देहधारियों एवं चराचर जगत का मूल एक ही निराकार ब्रह्म है। अध्यात्म एवं आत्म ज्ञान निराकार का महा विज्ञान है। निराकार से साकार प्रकाट्य और साकार से निराकार की सम्मुखता के बीच की कड़ी का नाम **'यजन'** है। निराकार का साकार में प्रकाट्य शिव-शक्ति-क्रीड़ा रूपी यज्ञ से होता है। अतः साकार, जब निराकार से सम्पर्क करना चाहता है, तो **'यजन'** द्वारा ही कर सकता है।

साकार जब रुग्ण एवं आच्छादित होता है, तो आनन्दमय निराकार के तद्नुसार नहीं होता। वहाँ **'अहंकार'** और **'ममकार'** के आवरण की त्रुटि आ जाती है। जिससे साकार का निराकार से सम्पर्क टूट सा जाता है। जल स्रोत के निकट बहते हुए भी एक खेत यदि फल लगने के समय सूखने लगे तो स्पष्ट है, कि बहते पानी और खेत के बीच कोई बाड़ या मिट्टी की डौल अवश्य होगी। इसी प्रकार प्रकट साकार सृष्टि और अप्रकट निराकार के रहस्यमय एवं चमत्कारिक आनन्दमय प्रवाह के बीच रुकावट **हमारे अहंकार और ममकार की डौल है, जिसे सद्गुरु यजन द्वारा तोड़ देता है।** निराकार परम स्वस्थ एवं आनन्दमय ही है। निराकार जन्म, मृत्यु, रोग, दोष, जरा, व्याधि आदि से रहित है। साकार जब इनके सहित हो जाता है, तो इसका संशोधन, परिवर्तन, रूपान्तरण, परिवर्द्धन, संकुचन एवं नवीनीकरण यजन द्वारा ही सम्भव है। स्वाहा-स्वाहा की **'हुंकार'**, अहंकार और ममकार के हर आवरण को भेद देती है।

पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित एवं संहारित समस्त साकार महाब्रह्माण्ड का प्रपंच निराकार शिव-शक्ति की स्वयं में, स्वतः, स्वान्तः सुखाय एवं आनन्द में हुई क्रीड़ा के आनन्द का प्रकाट्य है। शिव में शक्ति समाहित है और शिव की शक्ति, अति शक्ति विरक्ति है। इससे शिव पंच-प्राणों की महाशक्ति को प्रकट करता है। दोनों में परस्पर क्रीड़ा होती है। समस्त साकार, आसक्ति युक्त मानस का प्रकाट्य है। विरक्त शिव निराकार है, उसकी आसक्ति महाशक्ति भी निराकार है। **विरक्ति की शक्ति से, आसक्ति की शक्ति द्वारा सम्पूर्ण साकार महाब्रह्माण्ड का;**

निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में प्रकाट्य होता है। विरक्ति, उसकी प्राण-शक्ति है और आसक्ति उसे रूप एवं आकार देती है। साकार की सबसे महत्त्वपूर्ण विधा संहार है, जो इसका श्रंगार है। संहार में समस्त निर्माण और पालन पुनः पंच-महाभूतों में विलीन हो जाता है। सारा खेल निराकार का है। कृपया एकाग्र करें, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

ईश्वर की अतिशक्ति विरक्ति से प्रस्फुटित पंच-प्राणों की, विरक्ति से स्वयं में हुई स्वतः, स्वान्तः सुखाय क्रीड़ा के आनन्द का प्रकटीकरण पंच-महाभूतों की चराचर प्रपंचमयी सृष्टि में निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में होता है। पंच-प्राणों की महाशक्ति से प्रकट ये पंच-महाभूत स्वयं में परम सशक्त हैं, लेकिन सहज जड़ होने के कारण इन्हें अपना, अपनी शक्ति एवं ईश्वर किसी का कोई ज्ञान नहीं है। इस प्रकार अतिशक्ति विरक्ति से प्रकट प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान पंच-प्राण क्रमशः अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल एवं आकाश पंच-महाभूतों के रूप में प्रकट हुए। **'स्वाहा'** की सृष्टि में अदृश्य रूप से दशानन (अविरल, अकाट्य, अबाध, निरन्तन, चिरन्तन, अति संक्षिप्त, अति सारगर्भित, परम विशिष्ट, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) गतियाँ होती हैं। कोई वैज्ञानिक आज तक इन अदृश्य दशानन गतियों के रहस्य को न जान पाया है और न जान सकता है।

अतिशक्ति विरक्ति ही पंच-महाभूतों की **'प्राण-शक्ति'** है, जो पंच-महाभूतों को उनकी शक्तियों सहित संचालित व निर्देशित करती है। यह प्राण-शक्ति ही पंच-महाभूतों के संगम द्वारा चराचर जगत के प्रपंच का निर्माण करती है। पंच-महाभूतों से ही इनके द्वारा हुए निर्माण का पालन करती है। अन्ततः उस पालित निर्माण का संहार करते हुए इन पंच-महाभूतों में ही विलय कर देती है; तब तत्त्वातीत तत्त्व **'भस्मी'** का प्रकाट्य होता है। निर्माण एवं निर्मित का पालन तथा पालित का संहार होने पर पंच-प्राणों की महाशक्तियों से सशक्त एवं सहज जड़ पंच-महाभूत ज्यों के त्यों रहते हैं।

निर्माण से पहले प्रकट पंच-महाभूत और संहार के बाद विलय होने पर रहने वाले पंच-महाभूत दोनों एक जैसे होते हैं। दोनों में अन्तर केवल भस्मी

के प्रकाट्य से होता है। निर्माण और पालन में यह भस्मी अदृश्य रहती है और पंच-महाभूतों में विलय के बाद भस्मी दृश्यमान होकर प्रकट हो जाती है। भस्मी, शिव के अस्तित्व का प्रमाण है, कि निर्माण, पालन, संहार में सारी गाथा का कारण मात्र निराकार शिव ही है। पंच-प्राण निराकार हैं, पंच-महाभूत स्वयं में निराकार हैं। प्राण-शक्ति **'विरक्ति'** निराकार है और अन्ततः प्रकट भस्मी भी निराकार है। निराकार से निराकार की यात्रा के मध्य साकार चराचर सृष्टि सहज चेतन का चिदाभास है। यह देवाधिदेव महादेव की महिमा एवं प्रशासन है, कि जब किसी सशक्त को अपनी शक्ति का आभास न हो और वह ईश्वर समर्पित हो जाए, तो प्रभु स्वयं अपनी समस्त शक्तियों सहित उसकी शक्तियों का सदुपयोग करते हैं।

पंच-महाभूतों की चराचर सृष्टि का प्रपंच प्राण-शक्ति विरक्ति का, विरक्ति में चलता हुआ खेल है; जो शिव-शक्ति ने अपने इकलौते मानस-पुत्र जीवात्मा के मनोरंजन के लिए रचा है। पंच-महाभूतों की चराचर साकार सृष्टि में अत्यधिक रहस्यमय, विशेष चमत्कारिक, अद्वितीय, सुन्दरतम एवं सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह है। एक मानव-देह युगों-युगान्तरों के सम्पूर्ण चराचर महाब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करती है और साकार प्रकाटय का आधार भी है। यह देह सभी ईश्वरीय विभूतियों और ईश्वरीय मायिक संरचनाओं का संघनित स्वरूप है। यह भी चमत्कार और रहस्य ही है, कि ऐसी देह को पाकर मानव ही समस्त चराचर जगत में सबसे अधिक त्रसित, भयभीत, दुःखी और अनेकानेक रोगो-दोषों से ग्रसित है। जिस देह का एक-एक रोम, हृदय की एक-एक धड़कन, एक-एक श्वास, एक-एक सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्य-प्रणाली स्वयं ईश्वर द्वारा ही सम्पादित व संचालित हो वहाँ कष्ट, रोग, दोष, आधि-व्याधि-उपाधि, भय, त्रास, विक्षेप, मलिनता, जन्म, मृत्यु, पाप, पुण्य आदि कहाँ से आए? कहीं अवश्य कोई त्रुटि हुई है, कुछ ढक कर आच्छादित हो गया है। अपने विभिन्न प्रवचनों में विविध आयामों से मैंने इस गम्भीर विषय को रखने का प्रयास किया है। आज उन सबका संघनित स्वरूप आपके सम्मुख रखूँगा।

तीन मुख्य अंग हैं—**एक ईश्वर, एक जीवात्मा और एक मानव-देह।** जब **'मैं'** (जीवात्मा) देह के नाम-रूप की अवचेतना में होता हूँ, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, तो तुरन्त चेतना से अवचेतना में उतर कर एक से अनेक और अनेकानेक की जीव-सृष्टि में आ जाता हूँ। जीव, अवचेतना में एक (देह) होता है, **तो ही** अनेक होते हैं और अनेक होते हैं, तो वह एक देह होता ही है। इसकी एक ऊर्ध्व दैवीय गति भी है, जो एक से अनेक की ओर नहीं, बल्कि एक से **एकान्त** की ओर है। यदि सद्गुरु-कृपा से **'मैं'** (जीव) एक देह के नाम-रूप की सृष्टि से परे की मानसिक स्थिति में किसी भी प्रकार प्रविष्टि पा लूँ, वह मेरी एकान्त की समाधि स्थिति है। उस स्थिति में मेरे लिए **एक** मेरा विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप होगा।

एक देह के नाम-रूप की अवचेतना में आते ही तुरन्त स्वतः, साथ-साथ एवं उस समय की मानसिकता के अनुसार दो प्रकार के जगत प्रकट होते हैं—पहला, प्रकट-प्रकट जगत; जो सामने दृश्यमान होता है। उसे हम आँखों से देख सकते हैं, कानों से सुन सकते हैं, त्वचा से स्पर्श कर सकते हैं, नाक से सूँघ सकते हैं और जीभ से चख सकते हैं। दूसरा, अप्रकट-प्रकट जगत जो अन्य किसी को दिखाई नहीं देता, लेकिन मेरे लिए दृश्यमान होता है, क्योंकि उसमें मैं विचरता हूँ। मेरे दिल-दिमाग में चलते ख्याल, विचार, राग, द्वेष, वैर, वैमनस्य, भूत के शोक, भविष्य की चिन्ताएँ, योजनाएँ, परियोजनाएँ, लेन-देन आदि जो कुछ भी अप्रकट रूप से मेरे भीतर प्रकट होता है, वही मेरा अप्रकट-प्रकट जगत है। यह प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट जगत तभी होता है, जब मैं अपनी एक देह के नाम-रूप की अवचेतना में होता हूँ, नहीं तो नहीं होता। प्रकट-प्रकट जगत से तो मैं पिण्ड द्वारा पिण्ड छुड़ा सकता हूँ। आँखें, कान बन्द करके कहीं किसी कोने में अकेले बैठ कर इससे परे हो सकता हूँ, लेकिन अप्रकट रूप से प्रकट जगत कहीं भी पीछा नहीं छोड़ता। यही मेरी **'एकान्त'** की मानसिक स्थिति में सबसे बड़ी बाधा बनता है और यही मेरे और मेरे इष्ट व सद्गुरु के बीच आवरण बन कर जीवात्मा, परमात्मा और देह तीनों का आच्छादन कर देता है।

'मैं' (जीव) नाम-रूप की अवचेतना में देहाधिपत्य, देहाध्यास और अन्ततः देह धारणावश जीव-कोटि में जब अपनी पहचान खो देता हूँ, उसी के अनुसार देह अपना यथार्थ स्वरूप खो देती है तथा ईश्वर का ईश्वरत्व भी आच्छादित हो जाता है। **'मैं'** जीवात्मा का शब्द रूप में प्रकाट्य है, जो मात्र सुनने में आता है, दृश्यमान नहीं होता। **'मैं'** सबकी एक ही है, क्योंकि जीवात्मा एक ही है। **'मैं'** का अस्तित्व **'तू'** (परमात्मा) है। **'तू'** है, तो **'मैं'** हूँ। **'तू'** (परमात्मा) और **'मैं'** (जीवात्मा) का निराकार में अद्वैत में द्वैत सा है। देह व जगत साकार है और **'मैं'** निराकार है। देह देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, लिंग, सम्बन्ध, माया के तीनों गुणों से बंधी है और **'मैं'** इन सबसे अतीत या परे है। दोनों का मेल हो ही नहीं सकता, लेकिन मेल **सा** हो गया। इस मेल **से** ने सारा गुड़ गोबर कर दिया।

देह में कोई रोग जब तक अप्रकट होता है, तब तक हम अपने को रोगी नहीं कहते। प्रभु की विशेष कृपा हो जाए, तो देह में बीमारी होते हुए भी प्रकट नहीं होती। रोग का प्रकट होना और उस रोग से ग्रसित होना भी दोनों एक साथ नहीं होते। जब कोई रोग प्रकट होता है और उससे हमें तकलीफ होने लगती है तथा दिनचर्या में बाधा पड़ती है तो हम इलाज चाहते हैं। रोग से पूर्णतः ग्रसित होने से पहले उसके लक्षण प्रकट होते हैं। कई बार अति व्यस्तता के कारण हम उन्हें उपेक्षित करते रहते हैं। जब पीड़ा अधिक होती है, तभी उपचार हेतु चिकित्सक के पास जाते हैं। चिकित्सक पहले रोगी की भयंकर पीड़ा को किसी भी प्रकार से शान्त करता है, फिर इलाज करके रोग का निदान करता है। इसके बाद कुछ दिन तक दवाइयाँ देकर रोग को समूल नष्ट करने की कोशिश की जाती है ताकि रोग पुनः प्रकट न हो।

यह रोग का इलाज है, लेकिन यदि किसी को रोग होने का वहम हो जाए, तो उसे ठीक करना अति दुष्कर कार्य है। किसी से सुनकर व्यक्ति को लगने लगता है, कि मुझे भी ऐसा ही कुछ होने लगा है। यह रोग **सा** है। प्रकट रूप से अथवा अप्रकट रूप से किसी भी प्रकार रोग नहीं है, लेकिन वहम के कारण उसके लक्षण प्रकट होने से व्यक्ति स्वयं को रोग ग्रसित

अनुभव करने लगता है। यहाँ रोग का कोई कारण नहीं है, रोग है ही नहीं, लेकिन व्यक्ति रोग से ग्रसित है। रोग **सा** है, लेकिन रोग से ग्रसित होने की पीड़ा निश्चित रूप से है। मुख्यता रोग की नहीं होती, बल्कि उसके लक्षणों की होती है, जो प्रकट होकर ग्रसते हैं। जो अनुभवी चिकित्सक नहीं है, वह वहम कह कर टाल देता है। मरीज उस चिकित्सक से असंतुष्ट होकर दूसरा डॉक्टर देखता है, क्योंकि बीमारी न होते हुए भी उसकी पीड़ा निश्चित रूप से है। पीड़ा महत्त्वपूर्ण है, जो दूर होनी ही चाहिए। इस रोग **सा** का आरम्भ ही पीड़ा से होता है। यही जीवात्मा के साथ जीव-कोटि में हुआ। जीवात्मा देह के साथ तद्‌रूप **सा** हुआ और यह तद्‌रूपता **सी** उसे अवचेतना में जीव-कोटि में ले आई। यहीं से उसके दुःखों की अन्तहीन श्रंखला शुरू हो गई। जीवात्मा स्वयं में ईश्वर का इकलौता मानस-पुत्र है, जो ईश्वर की ही भाँति सच्चिदानंद, निराकार, अदृश्य एवं ब्रह्माण्डातीत है। साकार दृश्यमान देह सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड की प्रतिनिधि एवं आधार है, इसलिए देह से तद्‌रूपता वस्तुतः तद्‌रूपता **सी** है। उसे यह वहम हो गया, कि मैं देह हूँ। जिस देह का उसे मात्र अवलम्बन लेना था, उसके लिए उसे भ्रम हो गया, कि यह देह ही मेरा स्वरूप है।

जीवात्मा स्वयं जीव सृष्टि में देह होने के वहम से त्रसित है, लेकिन यह रोग न उसे है, न हो सकता है। जीवात्मा को अवचेतना (जीव सृष्टि) में देह धारणा **सी** हो गई। देह के साथ इसी तद्‌रूपता सी में एक जीव काल-बन्धन, कर्म-बन्धन और प्रारब्ध-बन्धन की अंतहीन लेकिन स्व-कल्पित श्रंखला में जकड़ा हुआ युगों-युगान्तरों से भटक रहा है। जीवात्मा स्वयं में छः विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति एवं वैराग) का पुंज है। देह के साथ तद्‌रूपता में जीवेंक्रमशः काम, अहंकार, क्रोध, लोभ, मोह और आसक्ति में घिरा हुआ, जन्मों-जन्मान्तरों के मिथ्या एवं काल्पनिक काल-चक्र में भटकता रहता है।

देह के एकान्त की एकाग्रता में जीवात्मा को अपने स्वरूप का दिग्दर्शन एवं अनुभूति होती है। जीव-कोटि में तो उसकी **'स्मृति'** भी नहीं हो

सकती। 'मैं देह हूँ' भाव में **'एक'** के साथ **'अनेक'** भी होगा और **'अनेक'** हैं, तो **'एक'** होगा ही ।ऽयहाँऽअनेक भी प्रकट-अप्रकट दो प्रकार के हैं। प्रकट व अप्रकट अनेक के साथ एक (देह रूप)ऽको हटा कर जब एक से **'एकान्त'** में आएगा, तो वहाँ जीवात्मा **'एकाग्र'** होगा। एकान्त स्वयं में अनेकान्त भी है, क्योंकि एक से अनेक हुआ था। **'एकाग्रता'** में जीव को अपने **'एक'** जीवात्मा स्वरूप की स्मृति आती है। वह आश्वस्त हो जाता है, कि जो मैं स्वयं को मानता रहा हूँ, वह नाम-रूप का जीव मैं नहीं हूँ।

'मैं' (जीव) ने जब तथाकथित होश सम्भाला तो मेरे लिए बनी-बनाई देह प्रकट थी। इस प्रकट वास्तविक देह को मैंने Conceptual देह बना दिया ।ऽConceptual देह वह है, जिसका किसी माँ के गर्भ में गर्भाधान (Conception) हुआ ।ऽइस प्रकार देह के प्रति मेरा दृष्टिकोण बिगड़ गया। जैसे ही विशुद्ध जीवात्मा **(मैं)** ने विशुद्ध देह के साथ जीव भाव में अशुद्ध सम्बन्ध बना लिया तो, इसकी वास्तविक देह, आत्म तत्त्व और परमात्मा तीनों आच्छादित हो गए। ये तीनों ही एक समय में आवृत होते हैं और सद्गुरु-कृपा से एक ही समय अनावृत होते हैं।

सद्गुरु के दिशा-निर्देशन में समस्त कृत्य-अकृत्य, जप, अजप, दान-पुण्य, यज्ञ-हवन, तीर्थ यात्रा, सेवा, तप-अतप, सद्गुरु का श्रवणामृत, चरणामृत, क्रोधामृत, प्रेमामृत, क्रुद्ध एवं सौम्य रूप-अरूप और सब कुछ देह से देहातीत ले जाने के लिए होता है। इसलिए चाहे कोई शिष्य ग्राह्य हो या अग्राह्य सद्गुरु उसे पहले आग्रहपूर्वक ग्रहण कर लेता है। अर्थात् सद्गुरु शिष्य को जैसा भी है, पहले स्वीकार कर लेता है, फिर उसकी निगरानी करता है, कि वह किस योग्य है। उसे योग्य बनाने और उसके विशुद्ध रूप की स्मृति दिलाने का भरसक प्रयत्न करता है। वह कहता है, कि ''जब तुझे देह की अवचेतना नहीं थी, तो वहाँ न जन्म था, न मृत्यु थी। जैसे ही अवचेतना में तुझे देह की धारणा हुई तो तू चेतन जीवात्मा से जीव बनकर जीव-सृष्टि में आ गया। तूने ब्रह्म से विमुख होकर **'भ्रम'** में देह के साथ जीव बनकर तद्रूपता कर ली। तू अपने पद से च्युत हो गया। तूने स्वयं की देह

को व्यष्टि देह या **'स्व'** मान कर शेष समष्टि जगत, जो तेरे साथ प्रकट हुआ था, उसे अपने से पृथक् मान लिया। तेरी देह उस जीव-सृष्टि का अंग थी, लेकिन समस्त सृष्टि का आधार तेरी देह ही थी। तूने भ्रमवश अवचेतना में अपनी देह और सृष्टि में द्वैत भाव रख लिया। इस प्रकार जीव-सृष्टि का प्रादुर्भाव ही दुर्भाव में होता है। इस समस्त नाम-रूप की सृष्टि में तू उलझ गया। किसी से लगाव, किसी से अलगाव, किसी से लगाव में अलगाव, किसी से अलगाव में लगाव द्वारा तू मेरे-तेरे के मोह-जाल में जकड़ा गया। भ्रमवश इस अहंकार और ममकार में तू समस्त विकृतियों में ग्रसित हो गया। तू क्रमशः आवृत एवं पतित होकर अकारण ही अधोगति को प्राप्त हो रहा है। एक मात्र तेरे लिए उस पार ब्रह्म परमेश्वर ने समस्त ब्रह्माण्ड प्रकट किए हैं।''

ब्रह्माण्ड का कारण ब्रह्म है। ब्रह्म का अण्ड=**ब्रह्माण्ड**। ब्रह्म के गर्भ का नाम ब्रह्माण्ड है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड ब्रह्म के उदरस्थ हैं। देह सहित समस्त साकार जगत चेतन ब्रह्म का आभास मात्र है। जिसका प्रकाट्य नाम-रूप की अवचेतना में क्षणिक भ्रमित होते हुए जीवात्मा को दी गई मानव-देह का अवलम्बन लेने पर ही होता है। अवचेतना में इसे देहाध्यास हो गया, कि 'मैं देह हूँ'। सद्गुरु कहता है, कि ''जो देह, मात्र तेरे अवलम्बन के लिए थी, उसके साथ तू अवचेतना वश भ्रम में तद्रूप सा हो गया। इसलिए तेरी वास्तविक देह आच्छादित हो गई और मिथ्या देह तेरे गले पड़ गई। तूने जिस देह के नाम-रूप की अवचेतना में कहा, कि 'मैं देह हूँ', वह देह तू नहीं है और तू देह है ही नहीं। इसलिए तूने जो देह मान ली, वह वास्तविक देह नहीं है, वह तेरी अवचेतना में धारित (जीव सृष्टि की) देह है। तेरी वास्तविक देह का सद् एवं धर्म यह है, कि देह तुझे चेतना में ही मानेगी। अवचेतना में तेरी वास्तविक देह तुझे पहचानती ही नहीं। अवचेतनामयी देह तेरी दृष्टिगत देह है, जो आसक्ति युक्त है। तूने अपनी दृष्टि से मानव-देह का दुरुपयोग किया है।''

अपनी मानव-देह की विलक्षणता, उत्कृष्टता, रहस्य और चमत्कारिक दैवीय शक्तियाँ व प्रतिभाएँ जाने बिना हम उसका अपने हिसाब से दुरुपयोग

ही कर रहे हैं। उदाहरणतः कोई प्रेमवश हमारे पास किसी बहुत ही गुणों से भरपूर व्यक्ति को सेवा में भेजे और हम उसकी विशिष्टताएँ जाने बिना उससे निम्न कोटि के काम लें। कभी उसके मुख से हमें उसकी विलक्षण प्रतिभा का परिचय मिले तो हम हतप्रभ रह जाएँ। यही हमारा व्यवहार हमारी देह के साथ हुआ। देह धारणा में सबकी ईश्वर के बारे में भी अपनी-अपनी पृथक् मान्यताएँ हो गईं। कुछ लोग तो परमात्मा को मानते ही नहीं हैं, परन्तु परमात्मा किसी अमान्य मान्यता या स्व-कल्पित मान्य मान्यता का मोहताज नहीं है।

सद्गुरु कहता है, कि **''अवचेतनावश तेरी विशुद्ध चेतना के आच्छादित होने पर तेरी वास्तविक (यथार्थ) देह भी आच्छादित हो गई। साथ ही साथ ईश्वर तत्त्व या परमात्मा तत्त्व भी आच्छादित हो गया।** परमात्मा रहा, लेकिन वह वैसा ही हो गया जैसा अवचेतना में तू था और तेरी दृष्टिगत देह थी। तूने अवचेतना **सी** में देह **सी** को अपना स्वरूप मानकर परमात्मा को भी परमात्मा **सा** कर दिया। देहत्व, जीवात्मात्व और ईश्वरत्व तीनों को जाने बिना तू ईश्वर से विमुखता में अपनी दृष्टिगत देह में जीव बना हुआ निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थकारी एवं मिथ्या विधाओं में भ्रमित है।''

किसी जन्म में अपनी भटकन की व्यथा इसे बेचैन कर देती है। जब इसकी व्यग्रता, आर्तनाद और पिपासा चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है, तो दैवीय अधिनियमानुसार वह पार ब्रह्म परमेश्वर सद्गुरु रूप में प्रकट हो जाता है। सद्गुरु अवचेतना में दृष्टिगत साकार देह व जगत की विधाओं से ही इसे इसकी चेतना की स्मृति दिलाता है। इसकी अवचेतना में हुई लिप्तताओं का सदुपयोग करता है। सद्गुरु कहता है, कि ''तूने अपना जन्म नहीं देखा, लेकिन अवचेतना में दूसरों का जन्म देख कर तूने अपना जन्म मान लिया, मृत्यु मान ली। मृत्यु के बाद देह की एक अवस्था और भी होती है, कि मृतक काया (शव) अग्निदहन द्वारा पंच-तत्त्वों में विलीन हो जाती है और उसका अवशेष **भस्मी** रह जाती है। अतः दूसरों का जन्म, मृत्यु और भस्मी तीनों तूने अपनी अवचेतना में ही देखीं। ये तीनों तूने अपने में नहीं देखी और न देख पाएगा। तूने अवचेतना में प्रकट सृष्टि के दिग्दर्शन के कारण ही ये अपने लिए भी मान लीं।''

''पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि प्रपंच है, जिसकी प्रतिनिधि तेरी मानव-देह है। लेकिन भस्मी प्रपंचातीत है, क्योंकि तत्त्वातीत है। यह शिव की विभूत्यातीत विभूति वैराग की प्रतिनिधि है, जिससे पंच-प्राणों की महाशक्ति प्रकट हुई। इन्हीं पंच-प्राणों से पंच-तत्त्वों का प्रपंच प्रकट होता है। अतः भस्मी न केवल प्रपंच से परे है, बल्कि समस्त प्रपंच की प्राण-शक्ति है। तू चेतना से अवचेतनामयी जीवसृष्टि में आकर कितना भी अधोगति को प्राप्त हो जाए, उसी अवचेतना में प्रकट सृष्टि में तू जन्म और मृत्यु के समान भस्मी भी देख लेगा।''

इस प्रकार सद्‌गुरु, जीव बने जीवात्मा की अवचेतना में हुए भ्रम की तीन मान्यताओं का सदुपयोग करता है। ''तूने अपना जन्म नहीं देखा लेकिन तू मानता है, मनवाता है और मनाता है। मृत्यु तू चाहता नहीं है, इसलिए उससे बचने के सैंकड़ों प्रयास करता है। लेकिन तू चाहे या न चाहे जन्म हुआ है, तो मृत्यु तो होगी ही और मृत्यु के बाद तेरी देह की भस्मी भी बनेगी। तेरा जन्म हुआ है तो देह थी और मृत्यु होगी तो देह होगी। यदि तू मात्र जन्म और मृत्यु को मानता है, तो देह में ही रहेगा। अब तू भस्मी को भी मान ले, क्योंकि जब भस्मी होगी तो देह नहीं रहेगी। भस्मी तेरी देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है। देह का यह एक ही भविष्य **है**; जिसके साथ गा, गे, गी नहीं लगता, यह भविष्य **'है'**। इसलिए तू अब इस **'है'** का अधिग्रहण कर ले, क्योंकि देह व जीवन में भविष्यों के लिए ही तू दिन-रात लगा रहता है। तेरा स्वभाव ही ऐसा है, कि तू भविष्य को ओढ़ लेता है। देह व जीवन में जितने भविष्य हैं, वे सब अनिश्चित और चिन्ता-युक्त हैं। यह भविष्य (भस्मी) तेरी देह का है और होगा ही तथा कभी भी हो सकता है। भस्मी, अवस्था, स्थान, समय व स्थिति सबसे परे है। तू **अवचेतना** में देह धारणा के दौरान इस भविष्य की **अवधारणा** कर ले। यह अवधारणा अनिश्चित की निश्चित है।''

भस्मी सबकी एक ही है और एक सी ही है। भस्मी Total की है और Total Totality की है। एक विशेष मानव-देह की भस्मी देह विशेष को नहीं

पहचानती। भस्मी से किसी भी देह को पहचाना नहीं जा सकता। यहाँ से सद्गुरु, साधक को उसके भ्रमजाल से बाहर निकालता है, कि ''तू कुछ भी है तू अपनी देह की भस्मी के साथ तद्रूप हो जा। जिस निरर्थक, व्यर्थक, अनर्थक कहानी में तू जन्मों-जन्मान्तरों से उलझा हुआ है, उसका अन्तान्त तो देख। इस असद् देह का सद् देहातीत है, लेकिन वह तेरा सद् है।''

जब सद्गुरु-कृपा से यह भस्मी की अवधारणा करता है, तो इसकी देह धारणा हटनी शुरू हो जाती है। दृष्टिगत देह का जो आवरण इसकी वास्तविक देह को आवृत किए हुए था, वह आवरण हटने लगा। इसकी मूल चेतन वास्तविक देह प्रकट होने लगी, क्योंकि भस्मी की अवधारणा से इसकी चेतन **'मैं'** की स्मृति जाग्रत होने लगी। अवचेतना में भस्मी की अवधारणा से इसकी अवचेतना का आवरण हट गया और चेतना प्रकट हो गई। तदनुसार इसे ईश्वरत्व का दिग्दर्शन भी होने लगा। अन्ततः भौतिक भस्मी की अवधारणा विरक्ति में रूपान्तरित हो गई। तत्त्वातीत तत्त्व (भस्मी) की अवधारणा करने से इसकी विभूत्यातीत विभूति विरक्ति जाग्रत हो गयी। अवधारणा, धारणा बन गई और देह धारणा हट कर विरक्ति की धारणा बन गई। इसकी देह, आत्म-स्वरूप एवं ईश्वर तीनों का आवरण हट गया।

विरक्ति धारणा से जाग्रत हुई यथार्थ देह, जन्म-मृत्यु, काल-बन्धन, कर्म-बन्धन एवं प्रारब्ध से मुक्त नित नूतन होती है। चिन्ताएँ, चिन्तन में और मान्यताएँ मनन में रूपान्तरित हो जाती हैं। देहत्व, जीवात्मात्व एवं ईश्वरत्व तीनों से आवरण हट जाता है। जीव भाव में दृष्टिगत देह ईश्वरीय प्रकृति (माया) के अधीन होती है और जीवात्मा की वास्तविक देह के अनुसार प्रकृति होती है। पहले जो देह समस्त प्रपंच की प्रतिनिधि, संघनित स्वरूप, आधार एवं सर्वोत्कृष्ट थी, वही सर्वव्यापी वास्तविक देह में प्रविष्टि दिला देती है और ईश्वर की सर्वव्यापकता का दर्शन कराती है। यह शास्त्रीय नियम है, कि एक बार आवरण हटने पर दुबारा कभी नहीं पड़ता।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(24 मार्च से 12 अप्रैल, 2009)

मात्र-मात्रा

परमात्मा ने अति कृपालु हो कर हमें दुर्लभतम मानव-देह से नवाज़ा है। जीवन में छोटी-छोटी नवीन प्राप्तियों पर हम फूले नहीं समाते। कोई नई कोठी, बंगला, गाड़ी, पद, धन, सन्तान अथवा सम्बन्ध मिलने पर हम सबको दिखाते हैं और उसका जश्न मनाते हैं। परमात्मा मुझ जीवात्मा को नित-नूतन मानव-देह और तदनुसार नित-नूतन जगत देता है, इसका तो दैवीय नियमानुसार जश्न मनाना आवश्यक है। मुझे मानव-देह मिली है, मैं हँस सकता हूँ, विचार कर सकता हूँ, गले मिल सकता हूँ, विचारों को प्रकट कर सकता हूँ, नृत्य व गायन कर सकता हूँ, चिन्तन-मनन, नित्याध्यासन कर सकता हूँ, भावाभिव्यक्ति कर सकता हूँ। किसी भी प्रकार से उस निर्माणकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता की कृपा प्राप्त करके उसके निकट जा सकता हूँ। जिस देह का मैं एक बाल, एक नाखून तक नहीं बना सकता, वह सम्पूर्ण देह मुझे बनी-बनाई नित्य नूतन स्वरूपों में मिलती है और तदनुसार समय-समय का जगत भी मिलता है। जिसने यह सब मुझे दिया है, उसके नाम से नित्य हर दिवस को किसी भी प्रकार से मनाना ही मानव-जीवन है। पहले **'मैं'** इस **'सद्'** को जान लूँ और मान लूँ, कि मुझे नित नूतन देह व जगत मिलता है। फिर परमात्मा स्वयं इसके रहस्यों को जनवाएगा।

मुझे रिझाने के लिए प्रकृति नित नूतन परिधान पहन कर मेरे लिए नृत्य करती है और अपनी विभिन्न छटाएँ विकीर्ण करती है। उफनते हुए समुद्रों, झरनों, नदियों, प्रपातों की जल वल्लरियाँ, आकाश में विभिन्न ग्रह नक्षत्र,

दामिनी की दमक, बादलों की मचलती-लरजती कलाएँ, अरण्य के विभिन्न पशु पक्षियों के उन्मादित स्वर एवं कलरव 'मात्र' मेरे लिए हैं और मेरे लिए 'मात्र' हैं। ''हे प्रभु ! मैं इनका भोग क्यों नहीं कर पा रहा ? यह सब **मात्र** तुम्हारे द्वारा ही निर्मित, पालित व संहारित है और **मात्र** मेरे लिए ही है। इस समस्त **मात्रा** का अर्थ क्या है? यह मैं अभी जानना चाहता हूँ, क्योंकि यह समस्त मात्रा मेरे लिए मात्र है।'' 'मात्रा' को बाँधने वाला मात्र है। मात्र शिव है और मात्रा (माया) माँ जगदम्बा है। मात्रा छिन्नमस्ता, रुद्राणी, शिवानी, दुर्गा, काली, ब्रह्माणी, वैष्णवी अनेक रूपा है, लेकिन 'मात्र' (शिव) एक है। ''हे मात्र ! (प्रभु) मुझे इस समस्त मात्रा का अर्थ बताइए। नहीं तो मैं मानव-देह पाकर भी जीवन के अर्थ से वंचित रह जाऊँगा। मुझे तुमने मानव-देह दी है। इसमें देहों, अवस्थाओं, स्थितियों एवं विभिन्न पदार्थों की मात्रा असंख्य एवं गणनातीत है। शैशव, बालपन, वयस्कावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था, अतिवृद्धावस्था, प्रौढ़ावस्था, अति प्रौढ़ावस्था, शवावस्था आदि अवस्थाएँ क्रम-अक्रम से हैं। अक्रम से इसलिए क्योंकि प्रथम श्वास से शैशव के प्रारम्भ के बाद अन्तिम श्वास में शव कभी भी बन सकता है। शैशवावस्था एवं शवावस्था के मध्य असंख्य मात्राएँ हैं। हे मात्र ! मुझे इस सब मात्रा का अर्थ जानने की, तेरी कृपा से अति उत्कण्ठा हो गई है।"

"I feel insufficient in sufficiency. I confess my insufficiency in sufficiency." बुद्धि की समस्त सक्षमताओं द्वारा अर्जित समस्त प्राप्तियाँ (मात्रा) जब निरर्थक लगने लगती हैं, तभी मानव-जीवन का अर्थ जानने की उत्कण्ठा (जिज्ञासा) जाग्रत होती है। वहाँ समस्त 'मात्रा' (माया) एक 'मात्र' (शिव) में सिमटने लगती है।

'' यूँ तो तेरे बगैर मुझे कुछ कमी नहीं।
ये और बात है कि मयस्सर ख़ुशी नहीं।
जिस ज़िन्दगी पे नाज़ है इतना हजूर को
उस ज़िन्दगी का क्या है अभी है, अभी नहीं।''

''मुझे मानव-देह मिली है, इस सुयोग को मै व्यर्थ कैसे कर सकता हूँ।

मैं (विशुद्ध जीवात्मा) तुम्हारा एक मात्र मानस-पुत्र हूँ। मुझे तुमने अपनी निर्मित, पालित व संहारित सृष्टि का दृष्टा बनाया है। मैं तुम्हारे रचाए दृश्यों का आनन्द क्यों नहीं ले पा रहा?" जब यह आर्तनाद रूह की गहराइयों से उठकर बेचैन कर देती है, तो वह पारब्रह्म परमेश्वर, सद्गुरु के साकार रूप में प्रकट हो जाता है।

जगत व्यवहार में मात्रा चैक पर लिख दी और मात्र (only) नहीं लिखा तो चैक वापस कर दिया जाता है। मात्र एक है और मात्रा विभिन्न हैं। करोड़, दस करोड़, दस लाख, लाख, हजार, सौ, दस; हरेक मात्रा के साथ मात्र या only एक ही है। महत्त्व 'मात्र' का है क्योंकि मात्र की कोई सीमा नहीं है लेकिन 'मात्रा' की सीमा है। **मात्रा का स्वामी मात्र है।** एक लिंग है और चौरासी लाख योनियाँ हैं। मात्रा (माया) की कृपा के लिए मात्र (शिव) की कृपा चाहिए। शिव चाहे हजारों वर्षों की समाधि में लीन रहे, माँ जगदम्बा उसके संकेत के लिए चरणों में बैठी रहती है। समस्त साकार कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड 'मात्रा' हैं लेकिन निराकार एक ही है। साकार में मात्रा सीमित है और निराकार 'मात्र' असीम है। मात्रा और मात्र सीमा के भीतर मिल नहीं सकते। इस मिलन के लिए नाम-रूप की देह रूपी घर की सीमित सीमाओं के बाहर आना होगा।

मात्रा की सीमाओं रूपी बाउन्ड्री वॉल जन्मों-जन्मान्तरों में अभेद हो चुकी है। हमने अपनी देह के नाम-रूप से स्वयं को पहचान कर उसकी बाउन्ड्री बना ली और इसके बाहर आने का प्रयास नहीं किया। देहाध्यास एवं देह धारणा में यह दीवार बिल्कुल अभेद्य और सुदृढ़तर होती चली गई। आनन्द देहातीत है उसकी अनुभूति के लिए देहातीत आना होगा। देह और देहातीत के मध्य की नाम रूपी दीवार में एक द्वार है, जिसका अधीश द्वारकाधीश (प्रभु) कृष्ण हैं। इस द्वार को मैं खोल नहीं सकता हूँ और दीवार को कूद नहीं सकता तथा तोड़ भी नहीं सकता। केवल एक शिशु की नाईं चिल्ला सकता हूँ। रो-रो कर आर्तनाद कर सकता हूँ। वह सद्गुरु, शंकर जो द्वारकाधीश है, वह कृपा करके द्वार खोल देगा और असीम देहातीत क्षेत्र

की आनन्दमय झलक दिखलाकर फिर भीतर ले आएगा। फिर वे सीमाएँ खलेंगी नहीं।

अनेक देहों की **'मैं'** एक है, इसका अर्थ है कि **'मैं'** स्वतः ही सीमा से बाहर है। जैसे घर का बाहर एक है उसी प्रकार सारी देहों की **'मैं'** एक ही है। अर्थात् 'मैं' दैहिक नहीं है, देहातीत है। मानव-देह व जीवन का अर्थ देहातीत है और वह डेढ़ दो किलो भस्मी है। जैसे **'मैं'** देहातीत है, वैसे ही भस्मी भी देहातीत है। सदगुरु कहता है, कि ''तू अन्ततः मात्र भस्मी और भस्मी मात्र बनेगा। इसलिए देह के रहते जीवन-काल में भस्मी की अवधारणा कर, माँ जगदम्बा समस्त 'मात्रा' मेरे चरणों में बिछा देगी। क्योंकि तूने भस्मीत्व या शिवत्व का अधिग्रहण कर लिया।'' दृश्य, दृष्टि, दृष्टिकोण एवं दृष्टा साकार दृश्यमान सृष्टि के इन चारों अंगों में दृश्य और दृष्टि साकार है, **'मात्रा'** में हैं। दृष्टिकोण एवं दृष्टा निराकार है और '**मात्र**' (जीवात्मा) के लिए 'मात्र' (परमात्मा) का है। अध्यात्म के अति गहनतम एवं केवल श्रुतिगम्य परम रहस्य को आज मैं आप अति श्रद्धालु जिज्ञासुओं के लिए अनावृत कर रहा हूँ, कृपया एकाग्र करें।

दृश्य अनेक रूपों में साकार है और दृष्टि भी देह की है, अतः साकार है। आँखों में कोई दृष्टि दोष हो जाए और दृश्य स्पष्ट नज़र न आए तो चिन्ता हो जाती है। वह दोष चश्मा आदि लगाकर दूर किया जा सकता है। आँखें और दृष्टि, हर दृश्य को देखने का माध्यम हैं। दृश्य हमें वैसा लगेगा जैसा हमारा **'दृष्टिकोण'** है। यह दृष्टिकोण रोज बदल जाता है। अतः दृश्य को दृष्टि वैसा दिखाती है, जैसा दृष्टा का दृष्टिकोण होता है। साकार दृश्यों में विविधता और सुख-साधनों की भरमार होते हुए भी **'मैं'** रोज़ खुश नहीं होता, क्योंकि दृष्टिकोण पल-पल बदलता रहता है। यह दृष्टिकोण मेरे हाथ में नहीं है। मैं सोचता हूँ, कि ऐसा करने से, अमुक वस्तु पाने से, अमुक से पीछा छुड़ाने से, ऐसा होने से **'मैं'** सुखी हो जाऊँगा। लेकिन यह एक अस्थाई सोच और उस समय का एक दृष्टिकोण मात्र है, जो समय-समय पर माया (मात्रा) की चौरासी लाख विभिन्न स्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।

इसके बदलते ही करना, पाना, खोना, होना सब कुछ निरर्थ एवं व्यर्थ ही नहीं, कभी-कभी अनर्थकारी हो जाता है। वही पदार्थ व व्यक्ति जो कल मुझे सुख दे रहा था, आज दुःख का हेतु बन जाता है। यह दोष **'दृष्टिकोण'** का है।

'दृष्टिकोण' के लिए सद्गुरु की शरणागति आवश्यक है, क्योंकि दृष्टिकोण निराकार (स्रष्टा, ईश्वर) का निराकार (दृष्टा, जीवात्मा) के लिए है, नाम-रूप की किसी साकार देह के लिए नहीं है। मेरी देह सहित जितना साकार बाह्य जगत है वह मेरे निराकार दृष्टिकोण के ज़रिए प्रकट हुआ है और उसका अधिग्रहण **'मैं'** अपने दृष्टिकोण के अनुसार करता हूँ। दृष्टिकोण बदलता रहता है इसलिए मैं स्वयं में भ्रमित ही रहता हूँ और दृश्य नित्य आनन्दमय नहीं होते। मुझे वह कभी अच्छा, कभी बुरा लगता है, क्योंकि मुझे यह ज्ञान नहीं है, कि दृश्य मेरे द्वारा, मेरे दृष्टिकोण से प्रकट हुआ है और मेरे ही दृष्टिकोण के लिए है। यदि उसे देखकर मेरा मूड खराब हो गया तो मेरे अपने दृष्टिकोण में दोष है। मुझे मेरे दृष्टिकोण का ज्ञान साकार प्रकाट्य के माध्यम से ही होता है। सद्गुरु बताता है कि "जो साकार दृश्य तेरे सम्मुख प्रकट हुआ है, वह तेरे ही दृष्टिकोण (निराकार) से तेरी देह सहित जगत बन कर प्रकट हुआ है। तेरा दृष्टिकोण ही तुझे आज सुखी, कल दुःखी करता है।"

कहा जाता है कि जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, लेकिन 'दृष्टि' दृष्टा को वैसा ही दिखाती है जैसा दृष्टा का दृष्टिकोण होता है। सद्गुरु कहता है, कि "आज दृश्य तुझे कैसा लगा इसका ज्ञान तुझे अपने दृष्टिकोण से हुआ। इसलिए दृष्टा हर दृश्य में स्वयं को ही देखता है। यह दृष्टिकोण जो स्वयं में निराकार है, तभी बिगड़ा हुआ होता है जब दृष्टा नाम-रूप की देह के साथ तद्रूपता में साकार हो कर देखता है। **'दृष्टि'** तो साकार देह की ही है, **'दृश्य'** भी साकार है लेकिन **'दृष्टिकोण'** और **'दृष्टा'** निराकार है। **'दृष्टि'** देह रूप में मेरी है, लेकिन दृष्टा 'मैं' जीवात्मा हूँ, जो निराकार है। यदि तद्रूपतावश दृष्टिकोण पर साकार देह ने अधिकार कर लिया तो हर दृश्य बेकार ही होगा। क्योंकि तब दृष्टा अपने निराकार जीवात्मा पद से च्युत

होकर नाम-रूप की देह में जीव बन कर जीव-सृष्टि में आ जाता है। ऐसी स्थिति में समस्त 'मात्रा' (साकार माया) तनाव का हेतु ही बनेगी। 'शिव' मात्र है, जो दृष्टिकोण और दृष्टा का अधिकारी है और 'मात्रा' शक्ति (माँ जगदम्बा) है जो दृष्टि और दृश्य की स्वामिनी है। सद्‌गुरु की कृपा दृष्टिकोण बदल देती है। जीवन-काल में समस्त मात्रा (विभूतियों) का रसास्वादन मात्र (भस्मी) की अवधारणा द्वारा ही सम्भव है। अन्यथा फंसास्वादन होगा।

मानव-जीवन स्वयं में जश्न एवं उत्सव है। जश्न को यजन भी कह सकते हैं। मानव-जीवन वस्तुतः हवन है, जिसके आगे, पीछे और मध्य में भी '**भस्मी**' का महासागर है। जीवन **में** व देह **में** असंख्य व अगणित भविष्य हैं, लेकिन जीवन व सम्पूर्ण देह **का** निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य एक ही है, वह है डेढ-दो किलो राख या भस्मी। देह का भविष्य भस्मी है, लेकिन भस्मी का अतीत देह नहीं है। भस्मी का कोई आगे भविष्य नहीं है, इसलिए 'भस्मी' भविष्यातीत भविष्य है। भस्मी का अतीत, वर्तमान, भविष्य भस्मी ही है, इसलिए भस्मी अकाल है। भविष्य के लिए 'गा', 'गे', 'गी' और अतीत के लिए 'था', 'थे', 'थी' शब्दों का प्रयोग किया जाता है, लेकिन देह के इस निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य 'भस्मी' के लिए कहा गया, कि देह का भविष्य **'भस्मी' है**। अर्थात् भस्मी देह के वर्तमान में भी है। यही शिव की अतिशक्ति विरक्ति की प्रतिनिधि है जो पंच-महाभूतों की देह सहित जगत के कण-कण में अदृश्य रूप से समाहित रहती है। इसका प्रकाट्य संहार (मृत्यु) के बाद शव के अग्नि-दहन होने पर होता है।

यज्ञन या हवन द्वारा इस परम सद् की अनुभूति की जा सकती है। जब यज्ञ की अग्नि अपनी प्रचण्डता, तीव्रता एवं पराकाष्ठा पर होती है उस समय नीचे तल में उतनी ही तीव्रता से बन रही 'भस्मी' की ओर हम ध्यान नहीं देते। हम अग्नि की लपटों के सौन्दर्य, प्रकाश और प्रचण्डता में खो जाते हैं। जबकि लपटों की प्रचण्डता और तीव्रता साथ-साथ नीचे बन रही भस्मी के कारण होती है। जब लपटें कम हो जाएँगी, जब प्रकाश मन्द पड़

जाएगा और जब धूना भी नहीं रहेगा तब मात्र (भस्मी) ही प्रकट होगी। वह भस्मी अग्निमुक्त होगी। संहार (मृत्यु) के बाद शव के अग्नि दहनोपरान्त प्रकट होने वाली **'भस्मी'** जड़ एवं अग्निमुक्त होती है। लेकिन जीवन-काल में देह के रहते, देह के इस निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य (जो है) की अवधारणा में धारित भस्मी चेतन एवं अग्नियुक्त होती है। उस समय अग्नि (मात्रा) और भस्मी (मात्र) दोनों का आनन्द लिया जा सकता है। अग्नि, भस्मी के बिना हो नहीं सकती, लेकिन भस्मी, अग्नि के बिना भी है।

ईश्वर की पाँच विभूतियाँ हैं। सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति। इनका स्रोत छटी विभूत्यातीत विभूति वैराग है। अधिकतर जीवन-काल में हम सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य की लपटों में खो जाते हैं और साथ ही साथ नीचे उतनी ही तीव्रता से बनती भस्मी को भूल जाते हैं। इसलिए मात्रा तनाव का हेतु बनी रहती है। ईश्वर साकार एवं निराकार दोनों में इन विभूतियों से युक्त है। हवन प्रभु के निराकार स्वरूप का प्राकट्य है और स्वयं में संहार का पूजन है। यज्ञाग्नि में अग्नि की लपटों का विविधमुखी नृत्य और हर-हर की ध्वनि युक्त ऊर्ध्व गमन प्रभु का **सौन्दर्य** है। अग्नि का प्रकाश **ज्ञान** का द्योतक है, प्रचण्डता, **शक्ति** का प्रतीक है तथा हवन-अग्नि में अर्पित किए गए विभिन्न द्रव्य व पदार्थ उसका **ऐश्वर्य** है तथा उसमें उठता धूना **ख्याति** है। जब लपटों की प्रचण्डता, प्रकाश, सौन्दर्य और विभिन्न पदार्थों का ऐश्वर्य शान्त होने लगता है, तब धूना उठता है। इसी प्रकार जीवन में जब जीव अपनी समस्त शक्तियों, सौन्दर्य, ज्ञान-ध्यान, ऐश्वर्य आदि से ऊपर उठ जाता है, अर्थात् इन विभूतियों का महत्त्व गौण होने लगता है, तभी उसकी वास्तविक ख्याति स्वतः फैलती है। विज्ञापन वाली '**ख्याति**' का कोई अर्थ नहीं है। जो जीवन में ऊपर उठते समय नीचे बनती भस्मी को देखता रहता है, वही यश का अधिकारी होता है। जब यज्ञाग्नि में धूना भी शान्त हो जाता है, तो मात्र भस्मी ही रह जाती है। यह भस्मी देह **का** निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **है**। जो भविष्य मृत्योपरान्त **होगा** वह **है**, जो **था** वह **है**।

यज्ञाग्नि में लपटों की प्रचण्डता, तीव्रता और अद्‌भुत प्रकाश के बीच नीचे बनती भस्मी नजर नहीं आती, लेकिन होती अवश्य है। अग्नि, बिना भस्मी के हो ही नही सकती। भस्मी मात्र है और तत्वातीत तत्व है। सम्पूर्ण यज्ञ के दौरान भस्मी ने नृत्य करती लपटों के **सौन्दर्य**, प्रकाश रूपी **ज्ञान**, प्रचण्डता रूपी **शक्ति,** विभिन्न द्रव्य पदार्थों रूपी **ऐश्वर्य** एवं धूना रूपी **ख्याति** की विभिन्न मात्राओं को अपने सम्मुख समाप्त होते हुए देखा है। यज्ञाग्नि प्रकट होते ही भस्मी बनने और बढ़ने लगती है। अग्नि की एक लपट अनेकों में रूपान्तरित होती हुई चारों दिशाओं को छूती है। साथ ही नीचे भस्मी भी बनती रहती है। इस अग्नियुक्त भस्मी में आनन्द अन्तर्हित है क्योंकि उसकी लपटों के सौन्दर्य, विभिन्न पदार्थों के **ऐश्वर्य**, प्रचण्डता और धूने रूपी **ख्याति** की महक में लिप्तता नहीं है। इस अग्नियुक्त 'भस्मी' को यह ज्ञान है, कि लपटें, उनका प्रकाश, प्रचण्डता, उद्वेग, प्रकाश, विभिन्न पदार्थ, धूना आदि पहले नहीं था और अन्ततः रहना नहीं है। भस्मी पहले थी, अब है (अग्नि की लपटों के नीचे) और बाद में भी रहेगी। वास्तव में 'दृष्टा' मात्र भस्मी है। अग्नियुक्त भस्मी कहती है कि ''मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ।'' लपटों का सौन्दर्य, प्रकाश रूपी ज्ञान, प्रचण्डता रूपी शक्ति, विभिन्न द्रव्य पदार्थ रूप ऐश्वर्य, धूना रूपी ख्याति आदि मात्राएँ पहले नहीं थीं, अब हैं और अन्ततः नहीं रहेंगी।

हम जीवन-काल में जीवन का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित, भविष्य 'भस्मी' देख लें, उसकी अवधारणा कर लें, कि जीवन में **'मैं'** कुछ भी बन जाऊँ, किसी भी समय 'भस्मी' बन सकता हूँ। भस्मी मेरा निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **है।** भस्मी कालातीत है। जो कालातीत है, वह अकाल है। साथ ही देह की भस्मी देहातीत है। देहातीत, देह के बाद नहीं, देह से परे का क्षेत्र है। मृत्योपरान्त देह के दहन होने के बाद भी भस्मी प्रकट होगी, तब समस्त पाँचों विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति) का मेरे लिए कोई अर्थ नही रह जाएगा। कभी भी मेरी देह डेढ़ दो किलो भस्मी में रूपान्तरित हो सकती है। अतः जीवन-काल में अपनी समस्त शक्तियों के

रहते सद्‌गुरु कृपा से अपनी देह की उस देहातीत 'भस्मी' का चिन्तन आवश्यक है।

हवन प्रकरण में लपटों एवं धूने को शान्त होने में मात्र आधा घण्टा लगता है और फिर जो भस्मी प्रकट होती है, वह अग्नि मुक्त एवं विभूत्यातीत होती है। क्योंकि लपटों का सौन्दर्य, उनका प्रकाश रूपी ज्ञान, प्रचण्डता रूपी शक्ति, विभिन्न द्रव्य पदार्थों रूपी ऐश्वर्य और धूने रूपी ख्याति से वह भस्मी अतीत होगी। उस भस्मी का मैं जीवन-काल में देह के रहते कुछ देर चिन्तन करूँ तो देह सहित जगत की समस्त चिन्ताएँ स्वतः समाप्त होने लगती हैं। चिन्ता और चिन्तन एक साथ नहीं रह सकते। जीवन-काल में देह के दौरान जब सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य की प्रचण्डता में साथ-साथ बनने वाली भस्मी का चिन्तन होगा, तो वह भस्मी अग्नियुक्त होगी और वह मेरे वैराग की द्योतक होगी। यह वैराग ही मेरा धर्म है। मृत्योपरान्त अग्निमुक्त और देह के बाद की भस्मी तत्वातीत तत्व और विभूत्यातीत विभूति है। देह के रहते जीवन-काल में उसका चिन्तन-मनन करने से उस तत्वज्ञ का जीवन स्वतः समस्त विभूतियों से विभूषित हो जाएगा।

देहातीत, भस्मी को तत्वज्ञ ने देह के दौरान जिस देह में धारण किया, वह विदेह देह हो जाएगी। जीवन-काल में देह, काल से बँधी होती है, लेकिन उस विदेह देह में वह तत्वज्ञ 'अकाल' होगा। अकाल ऐसी स्थित्यातीत स्थिति है, जो स्वयं कालेश्वर की दी हुई होती है। इस अकाल स्थिति में वह विदेह देह माया की चौरासी लाख स्थितियों (जो समय और स्थान का निर्धारण करती हैं) से मुक्त होगी। वहाँ काल-बन्धन, कर्म-बन्धन एवं समस्त बन्धन स्वतः छूट जाते हैं। धीरे-धीरे महाकाल की कृपा से देह सहित जगत का समस्त साकारत्व, निराकार व चेतन का चिदाभास मात्र रह जाएगा। अनिवर्चनीय निराकारत्व, शाश्वत् अकाल स्थिति में वह तत्वज्ञ, विदेह देह में समस्त विभूतियों का स्वामी हो जाएगा। विदेह स्वयं में तत्वज्ञ जन्म-मृत्यु, जरा-रोग से रहित मृत्युंजय एवं जनमेजय होता है। 'भस्मी' दृष्टा है और यह जीवन्त अग्नियुक्त भस्मी जीवात्मा का स्वरूप है। जो लोग देह से

तद्‌रूपता वश जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि आदि व्याधियों से युक्त हैं उन्हें वह विदेह देह तत्वज्ञ भी अपने जैसा ही दिखाई देगा। लेकिन उस तत्वज्ञ ने समस्त मात्राओं को एक 'मात्र' के साथ जोड़ा हुआ है। वह दृष्टा पद से प्रत्येक 'मात्रा' का रसास्वादन करता है। वह अपने इष्ट व सद्‌गुरु से अच्युत होता है। वह कहता है कि ''हे प्रभु !'' तुम मात्र मेरे हो और मात्र तुम मेरे हो तथा 'मैं' मात्र तुम्हारा हूँ और मात्र 'मैं' तुम्हारा हूँ।''

''तोहि मोहि भेद कैसा जल तरंग जैसा''

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय'

(8 एवं 12 मई 2009)

मानसिकता

आज मैं परम इष्ट-कृपा एवं आप समस्त जिज्ञासुओं की जिज्ञासावश अध्यात्म के परम रहस्यमय विषय का वर्णन करूँगा। विषय है– **'मानसिकता'।** आत्मानुभूति के आधार पर मैं अपने विभिन्न प्रवचनों में बहुत बार इंगित कर चुका हूँ, कि समय-समय पर हमारी साकार देह और जगत का, उस समय की **मानसिकता** के अनुसार, निराकार से साकार में प्रकाट्य होता है। यह मानसिकता क्या है और यदि यह आनन्द का, आनन्द में प्रकाट्य है, तो हम सबके लिए आनन्दमय क्यों नहीं है? **'चेतना'** स्वयं में आनन्दमय एवं निराकार मन है। **'अवचेतना'** मानसिकता है। वह भी स्वयं में निराकार है। मानव-देह साकार है और जगत भी साकार एवं दृश्यमान है। मन की मानसिकता है और मानसिकता, मन की है। दोनों अदृश्य एवं निराकार हैं। कौन किसका आधार है, किसको किस पर अधिकार है?

मन है तो मानसिकता है, बिना मन के मानसिकता नहीं हो सकती। जिस प्रकार बिना ब्रह्म के जीवात्मा नहीं हो सकती। परमात्मा एक है, जीवात्मा एक है, मानव-देह एक है और उस पर आधारित जगत भी एक है। देह और जगत साकार है तथा **'मैं'** (जीवात्मा) और **'तू'** (परमात्मा) निराकार हैं। मानव **'मन'** ईश्वरीय आनन्द का स्रोत है और **'बुद्धि'** चेतना है। मन (आनन्द) बुद्धि (चेतना) स्वयं में निराकार और अदृश्य हैं। दोनों के पारस्परिक समन्वय से जो साकार प्रकाट्य होगा, वह **'सद्** ही होगा। यहाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका मन की है। मन यदि आनन्दमय होगा, तो बुद्धि चेतना युक्त ही होगी और दोनों में परस्पर **'समन्वय'** ही होगा। ईश्वरीय **'मानस'** स्वयं में

आसक्ति रहित, अभावमय एवं आनन्दमय है। जहाँ आनन्द होता है, वहाँ सद् और चेतन भी होता ही है। इसलिए शास्त्र ने ईश्वर को **'सच्चिदानंद'** कह कर पारिभाषित किया है। नाम-रूप की अवचेतना में जीव का मानवीय मन आसक्ति युक्त होता है। कामना स्वयं में कमी एवं अभाव की द्योतक है। तभी विशुद्ध मन **'मानसिक'** (sick यानि रोगी) हो जाता है। उसके साथ तदनुसार जो बुद्धि है, उसकी चेतना आच्छादित हो कर अवचेतन हो जाती है और यहाँ मन-बुद्धि में समन्वय नहीं हो सकता। दोनों में कुछ सम्बन्ध होगा और उन अस्त-व्यस्त एवं विश्रंखलित सम्बन्धों (disco relations) का साकार प्रकाट्य कभी सद् नहीं हो सकता। ऐसी विश्रंखलित देह में अवचेतन बुद्धि के साथ **'मन'** आसक्तियुक्त (sick) ही होगा और जहाँ मन आसक्तियुक्त होगा, वहाँ बुद्धि भी अवचेतन होगी। मूलतः ऐसा मन और ऐसी बुद्धि भटकी हुई बेघर ही होती है। स्थिरता की तलाश में मन-बुद्धि दोनों भटकते रहते हैं।

निराकार, निर्विकार, अनादि, अनन्त एवं ठोस-घन-शिला ईश्वर स्वयं में विरक्ति है। परम स्थिर प्रभु निराकार एवं साकार दोनों में छः विभूतियों से विभूषित हैं। ईश्वर स्वतः, स्वान्तः सुखाय, स्वयं में और स्वयं के साथ क्रीड़ा करता है। क्रीड़ा हमेशा दो पक्षों में होती है। शिव अपनी अतिशक्ति **'विरक्ति'** से महाशक्ति के रूप में पंच-प्राणों (प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान) की अदृश्य ज्योति प्रकट करता है। अतिशक्ति और महाशक्ति में स्वतः, स्वान्त सुखाय और स्वयं में क्रीड़ा होती है; जिसे शिव-शक्ति-क्रीड़ा कहा गया है। इस क्रीड़ा में पंच प्राणों से पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश, पंच-महाभूतों का प्रकाट्य होता है।

ईश्वर ने यह विशिष्ट चमत्कारिक एवं रहस्यमय संरचना की है, कि महाचेतन की महाचेतना में हुई क्रीड़ा के एवज़ में प्रकट ये पंच-महाभूत अति सशक्त होते हुए भी स्वयं में सहज जड़ हैं। एक-एक महाभूत में इतनी शक्ति है, कि सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का कुछ ही क्षणों में प्रलय लाकर विलय कर सकता है। सहज जड़ता के कारण इन्हें अपनी शक्ति का कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए ये स्वयं अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते। ईश्वर का

प्रतिनिधित्व करने वाली अतिशक्ति विरक्ति, इन पंच-महाभूतों की प्राण-शक्ति है। इसी अदृश्य प्राण-शक्ति से पंच-महाभूतों में दशानन (अविरल, चिरन्तन, निरन्तर, अकाट्य, अबाध, अति सारगर्भित, परम विशिष्ट, अति संक्षिप्त, उद्देश्यात्मक एवं गुणात्मक) गतियाँ होती हैं। अतः पंच-महाभूतों की गतियाँ स्वयं में प्रभु द्वारा प्रेरित, संचालित, प्रतिपादित, सम्पादित एवं निर्देशित होती हुई पूर्णतः अनुशासित और ईश्वर की भाँति ही अदृश्य रहती हैं।

महाप्राणशक्ति विरक्ति का भौतिक दृश्यमान स्वरूप एवं प्रतिनिधित्व **'भस्मी'** है, जो निर्माण और पालन में अदृश्य रहती है और महासंहार के बाद प्रकट होती है। कृपया एकाग्र करें, मैं पुनः वर्णन करूँगा। गतिमान होने के दौरान भी सहज जड़ पंच-महाभूतों को यह ज्ञान नहीं होता, कि इनकी अपनी प्राण-शक्ति द्वारा क्या-क्या हो रहा है। जो स्वभाव से जड़ हों, उन्हें सहज जड़ कहा जाता है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश, ईश्वर की प्रकृति है और इस प्रकृति की प्रकृति (**प्रकृत्यातीत प्रकृति**) सहज जड़ता है। किसी भी गति के लिए शक्ति अपेक्षित है, चाहे वह स्वयं की शक्ति हो अथवा बाह्य शक्ति हो। पंच-प्राणों में शक्ति एक ही है, इस महाशक्ति का अभ्युदय अतिशक्ति **'विरक्ति'** से हुआ। महाप्राणशक्ति पंच-प्राणों से प्रकट पंच-महाभूतों के संगम से सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की चराचर सृष्टि का निर्माण, पालन एवं संहार करती है। संहार में जो कुछ भी पंच-महाभूतों में निर्मित और पालित है, वह **पुनः** पंच-महाभूतों में विलय हो जाता है।

मानव-देह पंच-महाभूतों (पृथ्वी, वायु, जल, आकाश व अग्नि) के संगम से निर्मित है। इसके पालन के लिए भी पंच-महाभूत आवश्यक हैं और अन्ततः संहार (मृत्यु) के बाद, अग्नि-दहन होने पर पंच-महाभूतों से संगमित देह पुनः इन्हीं पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि में जब संहार-प्रकरण हुआ, तो वही पंच-महाभूत उन्हीं पंच-महाभूतों में विलीन हो गए। तब जो प्राण-शक्ति सहज जड़ पंच-महाभूतों को अदृश्य रूप से दशानन स्वरूपों में गतिमान कर रही थी, उस प्राण-शक्ति का प्रतिनिधित्व (भस्मी) प्रकट रूप में दृश्यमान हुआ। इससे यह सिद्ध हुआ, कि सम्पूर्ण

निर्माण और पालन का कारण भी महाप्राणशक्ति **विरक्ति** ही थी। विलय के बाद जो रहा, वह निर्माण से पहले भी था।

ईश्वर की एक गुप्त एवं अदृश्य संकल्प-शक्ति या आसक्ति है, जिसका नाम **'आद्याशक्ति—माँ भवानी'** है। विरक्त प्रभु की **'आसक्ति'** भी स्वयं में महाशक्ति है। आद्याशक्ति, ईश्वर की इतनी चेरी है, कि वह विरक्त भी उसमें आसक्त है। विरक्त की आसक्ति उसकी आसक्तिता है, जो विरक्ति में आसक्त है। **जब आसक्ति, विरक्त में आसक्त हो जाती है, तो विरक्त उसमें आसक्त हो जाता है। यह अद्वैत में द्वैत सा है।** अति सशक्त एवं स्वयं में सहज जड़ पंच-महाभूतों और उनमें होती दशानन गतियों का जब आभास होता है, तो प्रभु की आसक्तिता आद्याशक्ति के मन में इच्छा होती है, कि इससे कुछ ऐसा बनाया जाए, जिसे देखकर मेरा प्रभु अपने आनन्द के प्रकटीकरण से आनन्द में अति सराबोर हो उठे। ईश्वर के आनन्दमय मन की आसक्तिता (संकल्प शक्ति) = मन+आसक्तिता = मनासक्तिता से **'मानसिकता'** शब्द बना है। महाशक्ति, प्रभु के संकेत के बिना कुछ नहीं करती और उस आनन्द का साकार मायिक रूपों में प्रकाट्य चाहती है। जहाँ आसक्ति होगी, वहाँ प्रकाट्य होगा और प्रकाट्य साकार में होगा। आनन्दमय मन दृष्टा है और मानसिकता प्रकाट्य है।

ईश्वर की अतिशक्ति विरक्ति और उससे प्रस्फुटित पंच-प्राणों की महाशक्ति में हुई क्रीड़ा का सुफल यह पंच-महाभूतों की साकार सृष्टि है। यह क्रीड़ा पंच-महाभूतों की साकार सृष्टि प्रकट करने के लिए नहीं होती, बल्कि स्वतः, स्वयं में, स्वयं के साथ एवं स्वान्तः सुखाय होती है। इससे जो प्रकट होता है, वह भी स्वयं में आनन्द एवं चेतनायुक्त होता है। आनन्द व चेतना से आनन्द के मध्य साकार सृष्टि आनन्द का प्रकटीकरण ही है। इस समस्त साकार प्रकाट्य के भीतर आनन्द एवं चेतना का अदृश्य सागर हिलोरें लेता रहता है। ईश्वरीय आनन्दमय मानस और चेतनायुक्त बुद्धि के समन्वय से हुआ **'सद्'** साकार प्रकाट्य मानवीय मन-बुद्धि से परे का चमत्कार है। जब तक ये मन-बुद्धि से परे होता है, तब तक **'सद्'** होता है,

सच्चिदानंद होता है। मन-बुद्धि की पकड़ या हस्तक्षेप होते ही असद् **सा** हो जाता है। इस प्रकार समस्त साकार महाब्रह्माण्ड **'सद्'** है। शिव-शक्ति-क्रीड़ा के इस आध्यात्मिक एवं परम रहस्यमय विषय की अनुभूति दिव्य बुद्धियों (विवेक, मेधा, प्रज्ञा एवं ऋतम्भरा) द्वारा ही हो सकती है। मानव-देह में आई. क्यू. वाली मानवीय बुद्धि जब पूर्णतः समर्पित हो जाती है, तब ये बुद्धियाँ जाग्रत होती हैं। कृपया श्रद्धा एवं एकाग्रता से इसका श्रवण एवं पठन-पाठन करें।

प्रभु की संकल्प-शक्ति, साकार की स्वामिनी **'आद्याशक्ति'** ने पंच-महाभूतों में प्रकट चराचर सृष्टि के सम्पूर्ण आलोकित प्रपंच व इन्द्रजाल की प्रस्तुति, अधिग्रहण एवं महावलोकन के लिए अपने एकमात्र मानस पुत्र जीवात्मा को एक मानव-देह से नवाज़ा। यह मानव-देह इस निर्देश के साथ दी गई, कि ''इसका **तनिक अवलम्बन** साकार सृष्टि में प्रकट विभिन्न विधाओं एवं खेल के रसास्वादन के लिए लेना। देहावलम्बन के लिए दी जाने वाली देह सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की युगों युगान्तरों की सम्पूर्ण मायिक महाप्रकृति की प्रत्यक्ष प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप है। यह मानव-देह उन्हीं पंच-महाभूतों का संगम है, जिनकी प्रकृत्यातीत प्रकृति सहज जड़ता है। महाप्राण शक्ति विरक्ति से पंच तत्त्वों में समस्त निर्माण व पालन होता है और संहार के बाद तत्त्वातीत तत्त्व भस्मी के रूप में वह प्राण शक्ति दृश्यमान होती है। मानव-देह ईश्वर प्रदत्त बहुत बड़ा कैरियर एवं स्वयं में परम विशिष्ट पद है। सम्पूर्ण विश्व में कोई ऐसी विभूति, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, पद, ज्ञान, प्रतिष्ठा, निधि व सिद्धि नहीं है, जो मानव-देह से ऊँची एवं वृहद् हो। विश्व के समस्त छत्रपति सम्राट और महान लोग देह और देहों की वजह से ही महान बने।

जीवात्मा को दी गई मानव-देह समस्त साकार का संघनित स्वरूप, प्रतिनिधि एवं नाम-रूप की अवचेतना में साकार प्रकाट्य का आधार है। जब तक यह जगदाधार सक्रिय नहीं होता, तब तक जगत प्रकट नहीं होता। कोई भी नेता जनता में से ही बनता व बनाया जाता है। नेता बनकर वह जनता का प्रतिनिधि हो जाता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण कोटि-कोटि साकार

महाब्रह्माण्ड जो पंच-महाभूतों में प्रकट है, उनका एकमात्र आधार एवं प्रतिनिधि जीवात्मा को दी गई एक मानव-देह है। जब देह सक्रिय होती है, तब जगत प्रकट होता है। इस प्रकार समस्त साकार प्रकाट्य की स्वामिनी एक मानव-देह है। इस साकार आधार की सक्रियता निराकार के हाथ में है। साकार प्रकाट्य के इस साकार आधार का आधार मेरी (जीवात्मा की) चेतना या अवचेतना है। जब यह **चेतना में** सक्रिय होगी, तो आनन्द में मेरे आनन्द के लिए होगी, जिसमें मेरी अपनी कोई लिप्तता नहीं होगी। वह चेतन देह आसक्तिमुक्त, विरक्त एवं **'मैं मयी'** होगी। यदि देह की सक्रियता जीवभाव की **अवचेतना में** होगी, तो इसके प्रतिनिधित्व में प्रकट जगत कष्टमय, मल-विक्षेप आधि-व्याधि-उपाधि, व आवरणयुक्त होगा। वह आसक्तियुक्त देह, **'मैं मयी'** तो होगी ही नहीं, उस देह की **'मैं'** भी अवचेतन व देहमयी ही होगी।

देह के साथ **'मैं'** लगने पर ही देह सक्रिय होती है और तभी **'मैं'** (जीवात्मा) अपने पिता परमात्मा द्वारा रची आनन्दमय सृष्टि का रसास्वादन कर सकता हूँ। माता-पिता अपने बच्चे के लिए अपनी सामर्थ्यानुसार खिलौने लाते हैं। खिलौनों का अर्थ मात्र खेल होता है। बच्चा जब तक बच्चा है, तब तक खेलता है और जब बच्चा होता है तब खेलता है। जब बच्चा नहीं बचता, जवान हो जाता है तो खिलौनों से नहीं खेलता। बचपन में बच्चे गुड़िया आदि खिलौनों से बातें करते हैं और आनन्द लेते हैं। खिलौनों को सक्रिय करने के लिए चाबी लगाई जाती है। जीवात्मा के लिए समस्त साकार जगत मानव-देह में self (मैं) की चाबी लगाने से प्रकट होता है। इस साकार जगत के तमाशे में भाँति-भाँति के नज़ारे हैं, जिनका रसास्वादन इस देह का अवलम्बन लिए बिना नहीं किया जा सकता। आधार देह तमाशे का अवलम्बन मात्र है। युगों-युगान्तरों के समस्त कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्डों में कुछ भी प्रकट तब होता है, जब जीवात्मा इस आधार मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेता है।

दुर्भाग्यवश **'मैं'** (जीवात्मा) ने भ्रमित अवस्था में देह के साथ अवलम्बन की जगह तद्‌रूपता कर ली और **'मैं'** चेतना से अवचेतना में पतित हो कर

जीवकोटि में आ गया। चेतना के आच्छादित होने पर अवचेतन होते ही अभावमय व आनन्दमय मन मानवीय मन बनकर आसक्तियुक्त एवं अभाव **में** हो गया। **'मैं'** (जीवात्मा) एवं **'तू'** (ईश्वर) दोनों **निराकार एवं अदृश्य हैं। 'तू'** और **'मैं'** का यह द्वैत, अद्वैत में द्वैत **सा** है। देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में तद्‌रूपतावश **'तू'** और **'मैं'** का अद्वैत में वह द्वैत देह और जगत में प्रकट हो गया। मैंने देह को तो **'मैं'** मान लिया और उसके साथ उसी मानसिकता में प्रकट जगत को **'तू'** मान लिया। अर्थात् जिस प्रकाट्य का आधार एवं प्रतिनिधि मेरी देह थी, उस प्रकट देह को अपना स्वरूप (**'मैं'**) मानकर उसके साथ ही प्रकट जगत को **'तू'** मानते हुए अपने से पृथक् मान लिया। इस प्रकार अपनी पहचान खोकर जीव कोटि में 'जीवात्मा' आत्म तत्त्व एवं ईश्वर के सान्निध्य का अधिकार खो बैठा और तदनुसार इसकी देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) भी आच्छादित हो गया। **'मैं'** और **'तू'** रहा, लेकिन **'मैं'** साकार देह बन गया और **'तू'** साकार जगत बन गया। इस स्थिति में जीवात्मा, ईश्वर के विमुख **सा** हो गया। वहाँ से काल, कर्म एवं प्रारब्ध-बन्धन आदि का अन्तहीन सिलसिला प्रारम्भ हो गया। जीव आत्म तत्त्व के आच्छादित होने के कारण Sick मानसिकता की मायिक दलदल में फंसता ही चला गया।

जीव मानव-देह के साथ इतना लिप्त एवं आच्छादित हो जाता है, कि अपने मूल, सच्चिदानंद, छः विभूतियों से विभूषित, विशुद्ध एवं अभावमय स्वरूप को खोकर **भूल** ही जाता है। खोना और भूलना दो पृथक् बातें हैं। अपनी पहचान खो देना अर्थात् अपनी पहचान का ज्ञान हो और यह ज्ञान हो, कि अब उसे खो चुके हैं। कृपया एकाग्र करें, आप किसी बड़ी स्टेट या सम्पदा के स्वामी थे और उसे आपने खो दिया। तो आपको ज्ञान है कि वह सम्पदा आपके पास थी और अब आप उसे खो चुके हैं। उस सम्पदा की विभूतियों का भी आपको ज्ञान है और यह भी ज्ञान है, कि वह आपसे खो गई है। दूसरा है, उसके बारे में बिल्कुल भूल ही जाना। **देह-धारणा** में जन्मों-जन्मान्तरों में देह के साथ तादात्म्य एवं तद्‌रूपता में देह ही जीव का

साध्य बन गई। जीवात्मा जीवकोटि में अपने विशुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप और अपनी खोई हुई पहचान के बारे में भी भूल गया। सद्गुरु उसे पहले यह याद करवाता है, कि ''तेरा कुछ खो गया है। जो तू स्वयं को मान रहा है, वह तू नहीं है। तू अपनी पहचान खोकर भटक रहा है। तू जीवात्मा है, सच्चिदानंद है और स्वयं में छः विभूतियों से विभूषित है।'' तब इसमें उस स्वरूप के दिग्दर्शन एवं अनुभूति के लिए जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

सद्गुरु की भूमिका वहाँ शुरू होती है जहाँ इसे अपना **'आपा'** खोना याद आ जाता है। यह अपनी भूल को कबूल करके पूर्णतः सद्गुरु का शरणागत हो जाता है। सद्गुरु जीव को इस मिथ्या चक्रव्यूह से बाहर निकालने के लिए अनेक दैहिक, बौद्धिक एवं मानसिक प्रकरण करवाता है। वह दैहिक सुखों द्वारा ही इन्द्रियों को बाईपास करके इन्द्रियातीत एवं अतीन्द्रिय आनन्द में ले जाता है। जीव धीरे-धीरे अपने आनन्द-स्वरूप के प्रति आश्वस्त हो जाता है। देह धारणा में फँसे जीव को सद्गुरु, कृपा करके उसकी देह के ही निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भस्मी'** की अवधारणा करवाता है।

देह सहित जगत के प्रकाट्य में निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ हैं। **'मैं** (जीव कोटि में) ने अज्ञानवश, मात्र निर्माण और पालन (साकार) में ही तद्रूपता की और संहार (निराकार) को भूल गया। निर्माण और पालन के साथ तद्रूपता जीव कोटि में अपनी इच्छा से हो सकती है, लेकिन जीव अपनी इच्छा से संहार (निराकार) के साथ तद्रूप नहीं हो सकता। वह परमात्मा की इच्छा से ही होगा। एक बार संहार (भस्मी) के साथ तद्रूपता हो जाए, फिर निर्माण और पालन में तद्रूपता नहीं हो सकती। वह लीला होगी एवं जीवन का आनन्दमय रसास्वादन ही होगा।

मन और मानसिकता का सारा खेल निराकार का ही है। देह से, देह सहित जगत में प्रकट होने वाला आनन्द स्वयं में देहातीत है। जिस समय आनन्दमय मानस का प्रकाट्य होता है, उस समय देह व देहों को अपने आकार का आभास नहीं रहता। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में निर्माण, पालन व

संहार **'निराकार'** का साकार में आनन्दमय प्रकाट्य है। निराकार **'एक'** है और साकार असंख्य हैं। निराकार से कहानी प्रस्तुत होती है, चलचित्र की तरह साकार में चलती है। उसका मानस पर हुआ प्रभाव निराकार में समाहित हो जाता है। पूर्ण प्रकाट्य आनन्द से, आनन्द में एवं आनन्दमय है। देह के साथ तद्‌रूपता में यदि प्रकाट्य हमारे लिए आनन्दमय नहीं है, तो प्रभाव भी आनन्दमय नहीं होगा। सुख-दुःखमयी मानसिकता एवं आनन्दमय मानस के साकार प्रकाट्य में यही अति सूक्ष्म एवं महत्त्वपूर्ण अन्तर है।

इस संसार महानाट्यशाला में जो भी हम सब देख रहे हैं, वह एक दृश्य है। इस दृश्य में समस्त चराचर जगत जलचर, नभचर, थलचर, असंख्य मानव-देहें, जीव-जन्तु, कीट-पतंगे व प्राणी-जगत है। दृश्य को देखने के लिए दृष्टि चाहिए। आँखों में कोई दृष्टि-दोष हो जाए और स्पष्ट नज़र न आए, तो चश्मा आदि लगाते हैं, जिससे दृश्य स्पष्ट नज़र आता है। एक ही दृश्य को कई व्यक्ति देखते हैं, लेकिन सबको एक जैसा नहीं लगता। सब अलग-अलग इसलिए देखते हैं, क्योंकि **दृष्टि** व **दृश्य** एक होते हुए भी सबका **दृष्टिकोण** पृथक्-पृथक् होता है। सबके लिए दृश्य वैसा ही होता है, जैसा उनका अपना निजी दृष्टिकोण है। साकार में एक ही दृश्य की प्रस्तुति का सौन्दर्य और चमत्कार यह है, कि सबके लिए वह दृश्य विभिन्न मानसिकताओं (दृष्टिकोण) के अनुसार प्रकट हुआ है, क्योंकि वह सबकी निराकार मानसिकता के ज़रिए प्रकट हुआ है।

अलग-अलग कर्मों, धर्मों, क्रियाओं, अक्रियाओं, प्रतिक्रियाओं से मेरी मानसिकता क्या बनी है, वह मुझे मालूम नहीं है। समस्त साकार जगत की प्रस्तुति के अधिग्रहण का दृष्टिकोण एवं प्रभाव निराकार है। जिस पर प्रभाव हुआ और जैसा प्रभाव हुआ, वह निराकार का निराकार है। प्रभाव दृष्टा के नज़रिए या दृष्टिकोण के तद्‌नुसार होता है। दृश्य मुझे अच्छा नहीं लगा और अपने प्रतिकूल लगा अथवा बहुत अच्छा लगा तथा अपने अनुकूल लगा। कभी उससे बहुत सुख मिला, कभी दुःखी हो गए, कभी कम-ज्यादा सुख-दुःख मिला। कई वस्तुएँ अकस्मात् बिना चाहे भी हमें अनुकूल अथवा

प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। जो कुछ भी हम अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखते, सुनते, सूँघते, चखते और स्पर्श करते हैं अथवा करना चाहते हैं, उस सब साकार दृश्यमान की दृश्यमान द्वारा निराकार अनुभूति होती है, कि मुझे वह कैसा लगा? यह **लगना** सबसे महत्त्वपूर्ण है और यही दृष्टिकोण है। इस **लगने** ने सबको अलग-अलग कर दिया। एक ही व्यक्ति अलग-अलग समय पर अलग-अलग लगता है और एक ही व्यक्ति को एक ही वस्तु, प्राणी या साकार विधा अलग-अलग समय पर अलग-अलग लगती है। इसका मूल कारण मानसिकता या दृष्टिकोण का परिवर्तन है। दृश्य मेरी मानसिकता के अनुसार मेरे द्वारा, मेरे लिए प्रकट हुआ। मैं यह भूल जाता हूँ, कि यह मेरी उसी मानसिकता से प्रकट हुआ है जिसे यह अच्छा-बुरा अथवा अनुकूल-प्रतिकूल लग रहा है।

दृष्टा निर्माणकर्ता, पालनकर्ता और संहार करने वाला नहीं है। जीवात्मा रूप में भी साकार सृष्टि में प्रकट निर्माण, पालन और संहार मेरे हाथ में नहीं है। लेकिन जब मैं साकार दृष्टा बनता हूँ, तो स्वतः प्रकट जगत में हस्तक्षेप ही करता हूँ। कुछ भी कर-करवा कर अतृप्त एवं असंतुष्ट ही रहता हूँ। हम सब अपने वास्तविक दृष्टा स्वरूप एवं दैवीय दृष्टिकोण को खो बैठे हैं। दृष्टिकोण तो हर प्रकार से निराकार ही होता है। यह निराकार दृष्टिकोण यदि साकार का है, तो साकार की तरह ही परिवर्तनशील होगा। जीवकोटि में अस्त-व्यस्त एवं विश्रंखलित साकार दृष्टा का हर दृष्टिकोण के लिए प्रत्येक साकार प्रकाट्य भी अस्त-व्यस्त एवं विश्रंखलित ही होगा।

साकार की चाहत जीव की मानसिकता है। समस्त साकार प्रकाट्य निराकार (आनन्दमय मन) से आनन्द में हुआ। जो मानस आनन्दमय एवं अभावमय है, उसमें किसी वस्तु, प्राणी अथवा साकार देह व जगत की किसी भी विधा से सम्बन्धित चाहत उस मानस की आसक्ति या sickness है। विशुद्ध अभावमय एवं विरक्त मानस में आसक्ति अथवा sick(ता) आ गई। इसी sick मानस या मान-सिकता में हम रहते हैं और असंतुष्ट के असंतुष्ट तथा आसक्तियों से भरे रहते हैं।

हम अपनी मानसिकता के अनुसार ही जगत में दुःखी-सुखी होते हुए हर प्रकट दृश्य की आलोचना, प्रत्यालोचना, प्रशंसा या अवहेलना आदि करते हैं। यही हमारी दैनिक जीवनचर्या में हो रहा है। हम सोचते कुछ और हैं, करते कुछ और हैं और हमारे सम्मुख कुछ और ही प्रकट हो जाता है।

होश सम्भालते ही निराकार को भूलकर हम देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपतावश देहार्थ साकार विधाओं एवं पदार्थों की प्राप्ति के लिए संघर्षरत हो जाते हैं। अधिक से अधिक एकत्र करने की दौड़ में हमारी मानसिकता प्रदूषित हो जाती है। हम अहंपूर्वक कर्ताभाव से संघर्ष करते हुए जो कुछ प्राप्त करते हैं, वह प्राप्य की प्राप्ति होती है। हमें वह प्राप्त होना ही था। वह सब हमने प्रकट नहीं किया, बल्कि हमारी मानसिकता या दृष्टिकोण के अनुसार प्रकट हुआ है। जब हम यह मान लेते हैं, कि हमारे करने से हमें कुछ मिला है, वहीं हमारी मानसिकता प्रदूषित हो जाती है। यह मानसिकता हट जाए और वह निर्मल विशुद्ध आनन्दमय मानस प्रकट हो जाए, दृष्टा और दृष्टिकोण एक हो जाए। इसी के लिए जप-तप, ध्यान, पूजा-उपासना, तीर्थ-यात्रा, सद्‌गुरु-सेवा आदि प्रकरण किए-करवाए जाते हैं। दृष्टि और दृश्य साकार हैं, दृष्टिकोण और दृष्टा दोनों निराकार होने चाहिए।

समस्त चराचर मायिक महाब्रह्माण्डों में निर्माण, पालन एवं संहार का क्रियान्वयन वस्तुतः ईश्वर के आनन्द का विस्तार है। विशुद्ध आनन्दमय मानस जीवात्मा है। देह जिसका वह अवलम्बन लेता है, उसका साकार में प्रतिनिधित्व है। इसे **'जीवात्मावतरण'** कहा गया है। **'मैं'** (जीवात्मा) None in All हूँ और मेरा सीधा सम्बन्ध All in All (परमात्मा) से है। यही परमात्मा और जीवात्मा का अद्वैत में द्वैत सा है। देह और जगत है, लेकिन न मैं देह हूँ, न जगत हूँ। जीवात्मा ने मानव-देह रूपी उपकरण का तनिक अवलम्बन लेकर समस्त दृश्यमान साकार चराचर मायिक सृष्टि के प्रपंच को देखा, सुना, चखा, सूंघा और स्पर्श किया तथा इसकी वाह-वाह की। जब आसक्तिरहित विशुद्ध मन दृष्टा बनता है, तो जो भी प्राकट्य होता है वह आनन्दमय ही होता है और उसका प्रभाव भी आनन्दमय होता है। इसलिए वह

किसी भी प्रकाट्य में लिप्त नहीं होता और उसे प्रकाट्य में किसी भी प्रकार के परिवर्तन, संशोधन, परिवर्द्धन या नवीनीकरण की चाहत नहीं होती।

इस दृश्यमान साकार जगत का समस्त रहस्य इसमें अन्तर्हित है, कि जीवात्मा को इसका दिग्दर्शन, प्रस्तुति एवं अधिग्रहण करने के लिए नाम-रूप की अवचेतना में उतरना ही पड़ता है। मानव-देह के रूप में इस आकार की यह उत्कृष्टता है, कि जीवात्मा यदि स्वयं को इस देह के साथ पहचानेगा तो अवचेतना में उतरना पड़ेगा, चाहे मात्र अवलम्बन ले या तद्‌रूप हो। लेकिन यह देह जब स्वयं को जीवात्मा (**मैं**) से पहचानेगी तो चेतना में ही पहचानेगी। **'मैं'** (जीव) देह के साथ तद्‌रूप सा होता है। यद्यपि देह, **'मैं'** के साथ तद्‌रूप नहीं हुई, लेकिन फिर भी जीवभाव में जीवात्मा स्वयं को जन्मने-मरने, परिवर्तित होने और सुखी-दुःखी होने वाला मानने लगा। देह के साथ जब नाम-रूप में तद्‌रूपता होती है तो न केवल जीव स्वयं **अभाव में** आ जाता है, बल्कि वह देह भी **'व्यष्टि देह'** (Individual) होती है। उसकी जीव-सृष्टि में एक मानसिकता बन जाती है। देह का प्रकाट्य चेतना में हो अथवा अवचेतना में हो, उसके साथ एक सृष्टि भी होती ही है। जिस समय, जिस मानसिकता की देह होती है, उस समय का जगत भी साथ-साथ स्वतः एवं तदनुसार ही होता है।

काल-बन्धन, जन्म-मरण, जरा-रोग, कर्म-बन्धन, सम्बन्ध, परिवर्तन आदि उस देह के **'सद्'** हैं, जिसके साथ जीव नाम-रूप में तद्‌रूप सा हुआ। सद् प्रकाट्य प्रत्येक स्थिति में **'सद्'** ही होता है। देह के साथ तद्‌रूपता सी में **'मैं'** विशुद्ध मन से मन+सिक (Sick) =मानसिक हो गया। मानस की उस सिकता (Sickness) में ही जीव जन्म-मरण, परिवर्तन, देहावधि, काल, कर्म, लिंग, धर्म, पाप-पुण्य, देश-विदेश, माया के तीनों गुण, प्रारब्ध आदि देख रहा है। नाम-रूप की अवचेतना में तद्‌रूपतावश मेरी जो देह है, वह मेरी मानसिक देह, **धारित** है। इसलिए उस शाश्वत् जीवात्मा को वह देह नश्वर, जन्म-मृत्यु की निश्चित अवधि में बँधी, परिवर्तनशील, रोग-दोषों से युक्त लगने लगी।

किसी ने अपना जन्म नहीं देखा और न ही देख पाने की सम्भावना है। अवचेतना में औरों को जन्मते-मरते देखकर अपने जन्म एवं मृत्यु की कल्पना के आरोपण से उसकी **निर्धारित** देह (यथार्थ) स्थूल एवं दृष्टिगत (conceptual) **धारित** देह बन गई। मैं देह हूँ, यह अवचेतना में मेरी मानसिकता है। यह मानसिक धारित देह जन्म-मृत्यु की अवधि में बँधी, सतत् परिवर्तनशील नश्वर देह है। यह देह **सर्वोत्कृष्ट** है, लेकिन **सर्वव्यापी** नहीं है। जीवात्मा के लिए निर्धारित वास्तविक देह शाश्वत् एवं सर्वव्यापी है। **'मैं'** (जीवात्मा) एक से अनेक होता हूँ और अनेकों में **'मैं'** एक ही हूँ। मेरी एक देह के साथ स्वतः साथ-साथ जो देहें प्रकट होती हैं, वे मेरी एक देह के तदनुसार होती हैं। उनमें भेद नहीं है। देह की चमड़ी दीवार बनकर अनेकता में एकता को छिपा नहीं सकती। जब मेरी मानसिकता उदात्त होगी, उस समय मेरी यही देह सर्वव्यापी भी होगी।

जब मैं देह सहित प्रकट जगत में अपने ही विभिन्न रूपों में विभिन्न मानसिकताओं को आनन्द में देखता हूँ, तो मैं विशुद्ध एवं निराकार दृष्टा (जीवात्मा) होता हूँ। साकार देह की साकार दृष्टि से अपने निराकार दृष्टिकोण को निराकार जीवात्मा देखेगा, तो उसकी देह सहित समस्त साकार दृश्य आनन्दमय ही होगा। जीवात्मा, परमात्मा के उदरस्थ है और उस (विशुद्ध मन) में समस्त कोटि-कोटि साकार ब्रह्माण्ड समाहित हैं। देह सहित जगत प्रकाट्य है। इसका महावलोकन आनन्द में है और अवलोकन का प्रभाव भी आनन्दमय ही है। यह Outstanding मानसिकता है। जिसमें जीवात्मा अपनी देह सहित जगत से परे या बाहर रहते हुए देह का तनिक अवलम्बन लेकर समस्त साकार सृष्टि का आनन्द में रसास्वादन करता है। फिर देह रूपी वस्त्र को अपने पिता (शिव) की तरह उतार कर दिगम्बर स्थिति के आनन्द में समाहित हो जाता है।

देह रूपी वस्त्र ओढ़ कर कोटि-कोटि आलोकित महाब्रह्माण्डों के प्रकाट्य का विहंगावलोकन जब देह द्वारा ही हुआ, तो जीवात्मा को लगा, कि देह सहित जगत में मैं ही मैं हूँ। मानसिकता Outstanding से

standing हो गई, कि मैं देह हूँ तो जगत भी मैं ही हूँ। यह मायिक प्राकट्य में उलझना शुरू हो गया। यहाँ से वह **विशुद्ध** (Outstanding) जीवात्मा से **अशुद्ध** (Standing) जीव हो गया। शनैः शनैः वह देह से तद्‌रूप सा होने लगा। देह कभी जन्मती थी, कभी सोती थी, कभी मूर्च्छित होती थी, कभी विस्मृत होती और मरती थी। देह के साथ तद्‌रूपता का धीरे-धीरे देहाध्यास और अन्ततः देहधारणा में रूपान्तरण हो गया। मैं देह ही हूँ, देह ही था और देह ही रहूँगा। इस स्थिति में वह **विशुद्ध** और **अशुद्ध** मानसिकता ही **विकृत** हो गई, क्योंकि देह के साथ प्रकट जगत को अपने से पृथक देखने लगी।

हमारा प्रत्येक दिन आसक्तियुक्त निराकार से प्रारम्भ होता है। जैसे ही **'मैं'** देह के साथ तद्‌रूप सा हुआ निद्रा से उठकर देह के नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तो तुरन्त काल-बन्धन और कर्म-बन्धन में फँस जाता हूँ। देह का दिन समाप्त हो जाता है और मैं पुनः आसक्तियुक्त निराकार में समाहित हो जाता हूँ। मैं आसक्तियुक्त जर्जर देह लेकर सोता हूँ और जर्जर देह में ही उठता हूँ। इस प्रकार निराकार से साकार और साकार से निराकार आसक्तियुक्तता में मुझे हर दिन की देह में एक निरन्तरता (Continuity) प्रतीत होती है। यह बहुत बड़ा भ्रम है। आसक्तियुक्तता Common है, जो मुझे अपनी नित्य नूतन देह की प्रतीति नहीं होने देती। आसक्तियुक्तता के कारण भूत के शोक, भविष्य की चिन्ताएँ, जन्म-मृत्यु, रोग-दोष, वैर-वैमनस्य, ईर्ष्या-कपट, आधि-व्याधि-उपाधि और न जाने क्या-क्या हमारे गले पड़ जाता है।

हमारी नित्य नूतन देह का शुभारम्भ आसक्तिमुक्तता से हो। यदि हम आसक्तियुक्त निराकार से आसक्तियुक्त साकार में भी आए हैं, तो दिन का शुभारम्भ इष्ट-कृपा से अपनी देह के निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भस्मी'** की अवधारणा से करें। देह व जीवन में भविष्यों की धारणा हमारी देह की धारणा को हृष्ट, पुष्ट एवं तुष्ट करती है। देह व जीवन में भविष्य अनिश्चित होने के कारण भय, चिन्ता एवं आसक्तियुक्त होते हैं, लेकिन देह

का निश्चित भविष्य **'भस्मी'** है। इसकी अवधारणा आसक्तिमुक्त एवं विरक्त कर देती है। देह का सद् है कि अन्ततः, देह डेढ़ दो किलो भस्मी में रूपान्तरित हो जाती है। भस्मी, देह का अस्ति (है) **'तत्त्व'** अर्थात् अस्तित्व है। यदि मुझे उस पर अधिकार नहीं है, तो मुझे देह के आकार पर अधिकार हो ही नहीं सकता। नाम-रूप की अवचेतना की तद्‌रूपता में भी देह का सदासद् है, कि भस्मी इसका निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **है।** सद्‌गुरु कहता है, कि ''यह सदासद् इसलिए है, क्योंकि तेरे लिए **निर्धारित** सर्वव्यापी वास्तविक देह और मानसिकता में **धारित** जन्म-मृत्यु से बँधी दृष्टिगत स्थूल देह दोनों का सद् है। देह धारणा के दौरान तू इस धारित देह में भस्मी की अवधारणा कर, इससे तेरी देह धारणा हट जाएगी। देह धारणा की जगह जब भस्मी धारणा हो जाएगी, तब जो देह होगी वह **'मैं मयी'** देह होगी और वह देह सर्वोत्कृष्ट के साथ सर्वव्यापी भी होगी। तब देह सहित जगत में विशुद्ध आनन्दमय मानस का प्रकाट्‌य होगा, उस आसक्तिमुक्त मानस का प्रकाट्‌य तेरे लिए निर्धारित विरक्तियुक्त **'मैं मयी'** देह में होगा। आसक्तिमुक्त एवं विरक्तियुक्त देह द्वारा ही नित्य नूतन देह की प्रामाणिकता मिल सकती है।

विरक्ति विभूत्यातीत विभूति है। देहातीत क्षेत्र (भस्मी) से गुज़रने पर अतीन्द्रिय आनन्द में विचरण होता है। देहातीत क्षेत्र मेरी सभी देहों से परे का मानसिक क्षेत्र है। हर देह की आसक्तियाँ, सुख-दुःख पृथक्-पृथक् हैं, थे और होंगे। देहातीत क्षेत्र (भस्मी) सब देहों से परे है, जो देह है, जो पहले थीं और जो भविष्य में आएँगी, उन सबसे परे है। देह के साथ तद्‌रूप सा हुआ जीव परम सद्‌गुरु-कृपा से जब उस देहातीत क्षेत्र **'भस्मी'** का स्नान करके आता है और उसके बाद जिस सद्यःस्नाता नूतन देह का अधिग्रहण करता है, वह Newly Bud, **'मैं मयी'** एवं विरक्तियुक्त देह होती है। संहार रूपी श्रंगार से सुसज्जित देह के अधिग्रहण से जीव को नित्य नूतन देह का आभास होता है। देह की उम्र चाहे कुछ भी हो, मानसिकता Newly Bud शैशव की होती है।

माया की चौरासी लाख विधाओं में निर्माण और पालन में अनेकरूपता एवं विभिन्नता है, लेकिन संहार एक ही है। यह संहार ही माया का श्रंगार है। संहार उस निराकार सत्ता शिव ने अपने ही हाथ में रखा है। साकार की स्वामिनी माँ जगदम्बा है। निराकार का स्वामी एक लिंग या शिव है। देहान्त, एकान्त, शवान्त और एकान्तान्तऽ(भस्मी) सबमें **'अन्त'** Common है। माला को पहनने के लिए गले का अवलम्बन लिया जाता है। गले का श्रंगार माला है और गला, माला का अवलम्बन है। जो सहारा देता है, वह श्रंगारित होता है। जो श्रंगारित होता है, उसका अवलम्बन लेना होता है। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का देह प्रतिनिधि एवं संघनित रूप है, इसलिए देह का संहार **'भस्मी'** सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संहार है। यह संहार (भस्मी) ही कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का श्रंगार है, जो प्रभु की अतिशक्ति **'विरक्ति'** का भौतिक प्रतिरूप है। भस्मी के प्रकाट्य के लिए देह का अवलम्बन लिया है, इसलिए देह का कुल श्रंगार **'भस्मी'** (संहार) है (कृपया विस्तार के लिए **'संहार-श्रंगार'** शीर्षक प्रवचन देखें)। दिव्य रत्नों और समस्त अमूल्यताओं व विशेषताओं का श्रंगार भस्मी है। भस्मी श्रंगारों का श्रंगार है। देह का अवलम्बन लेने से देह के संहार के बाद भस्मी प्रकट होती है। भस्मी जिसका भी अवलम्बन लेगी, उसे श्रंगारित करेगी। देह सहित जगत में श्रंगार की जितनी विधाएँ हैं, वे विरक्ति (भस्मी) के कारण हैं।

आसक्ति में जीव देहार्थ (देह व देहों के लिए) पदार्थों की चाहतों में जन्म-दर-जन्म भटकता है। देह का अर्थ मात्र भस्मी है। जो, जब, जहाँ, जैसी देह है, थी और होगी उसका अर्थ एक **'भस्मी'** मात्र ही है। देह के इस निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य को आत्मासात् करने की चेष्टा ही पुरुषार्थ का प्रथम सोपान **अर्थ** है। भस्मी की अवधारणा ही वैराग **'धर्म'** है। वैराग की धारणा परिपक्व होने पर ही ईश्वरीय **कामना** जाग्रत होती है और भक्ति मिलती है। यही **'काम'** है। चौथा है—**मोक्ष**, यह ईश्वरीय अनुराग है अर्थात् जब **'जीव'** ईश्वर के प्रेम को प्राप्त होता है। अतः देह के उस निश्चित भविष्य (भस्मी) की सुनिश्चितता उस परिलक्षित को लक्ष्य बनाकर

कर लें, वह दर्शित भविष्य दृश्य बन जाए। **'मैं'** और **'भस्मी'** दोनों देहातीत हैं। युगों-युगान्तरों में जितनी देहें थीं, हैं और होंगी उनकी **'मैं'** और **'भस्मी'** एक ही थी, है और होगी। **'मैं'** (जीवात्मा) शब्द रूप में परमात्मा का प्रतिनिधि है और **'भस्मी'** दृश्यमान स्वरूप में ईश्वर की 'अतिशक्ति' विरक्ति की प्रतिनिधि है। पुरुषार्थ द्वारा दोनों के मिलने पर ही उस स्थित्यातीत स्थिति **मोक्ष'** की प्राप्ति होती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(18 जनवरी से 25 जनवरी एवं 2 से 16 मार्च 2009)

सम्यक् दृष्टि

परमात्मा 'एक' है। एक परमात्मा के असंख्य नाम एवं असंख्य रूप हैं। मूलतः परमात्मा अदृश्य, अरूप एवं निराकार है। असंख्य नाम-रूपों में विभिन्न अनगिनत प्राणियों की सृष्टि है। असंख्य मानवों की असंख्य प्रतिभाएँ एवं बुद्धियाँ हैं। ईश्वर को सब नास्तिकता, आसक्तिकता, रूपों, अरूपों, नामों, अनामों, निराकार या साकार में मानते ही हैं। कहीं मान्य मान्यता है, कहीं अमान्य मान्यता है। ये असंख्य मान्यताएँ मुझ 'एक' (जीवात्मा) के, एक मानव-देह के नाम-रूप की अवचेतना (जीव-सृष्टि) में आते ही प्रकट होती हैं और नाम रूप की देह की अवचेतना न रहने पर लुप्त हो जाती हैं। चाहे वह निद्रा की जड़ता हो अथवा समाधि की चेतना हो। युग-युगान्तरों का साकार मायिक जगत ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि है और एक मानव-देह उसका संघनित स्वरूप, एक मात्र प्रतिनिधि एवं साकार प्रकाट्य का प्रत्यक्ष आधार है। दूसरे शब्दों में समस्त कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का साकार प्रकाट्य एक मानव देह का विस्तार है। जिस जगत को हम अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देख, सुन, सूँघ, चख एवं स्पर्श कर सकते हैं, उसे **दृश्यमान** कहा गया है। इस समस्त जगत के किसी भी प्रकार और सब प्रकार से आनन्दमय अधिग्रहण, प्रस्तुतिकरण, दर्शन एवं प्रशंसा के लिए प्रभु ने अपने मानस-पुत्र जीवात्मा को एक साकार मानव-देह दी। सद्गुरु कृपा, आत्म-चिन्तन, मनन, प्रवचन, श्रवण, नित्याध्यासन, एवं इस **साकार मायिक जगत के आनन्दमय अधिग्रहण, प्रस्तुति एवं अनुभूति के लिए सम्यक् दृष्टि अपेक्षित है।**

युगों-युगान्तरों में विस्तृत कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार मायिक सृष्टि पंच-महाभूतों पर आधारित प्रपंच है। पंच-महाभूतों की प्राण-शक्ति सहित इस समस्त साकार मायिक प्रपंच का प्रतिनिधित्व एवं आधार मात्र एक मानव-देह है। जीवात्मा की मानव-देह के साथ अवचेतना में क्षणिक तद्‌रूपता इस समस्त साकार प्रपंच के प्रकाट्‌य के लिए आवश्यक है। अवचेतना में देह का बाना ओढ़कर ही जगत की प्रस्तुति एवं अधिग्रहण हो सकता है। जीवात्मा की देह के साथ जब भी तद्‌रूपता हुई तो अवचेतना में ही हुई। जड़ता और चेतना दोनों स्थितियों में तद्‌रूपता नहीं हो सकती। प्रगाढ़ निद्रा जड़ता है, इस स्थिति में जीव देह सहित जगत के साथ तद्‌रूप नहीं होता। इसलिए देह व जगत का इसे आभास नहीं होता और अपना स्वयं का भी कोई आभास नहीं होता। देह और जगत का आभास न होने का आभास जीवात्मा को चेतना (एकान्त या समाधि) में ही होता है। जीवात्मा स्वयं अवचेतना में देह के साथ हुई क्षणिक तद्‌रूपता एवं तद्‌ानुसार प्रकट जीवकोटि की प्रपंचमय सृष्टि का रसास्वादन कर सकता है।

देह के साथ तद्‌रूपता का भ्रम, कि 'मैं देह हूँ' यह जीवात्मा का चेतना से अवचेतना में पतन है। यह **'अवचेतना'** वास्तव में एक निराकार मानसिकता है, जो देह के साथ तद्‌रूपता **सी** (जीव कोटि) में जगत सहित प्रकट होती है। मेरे लिए जगत का प्रकाट्‌य देह के प्रकाट्‌य से नहीं बल्कि देह के साथ अवचेतना में तद्‌रूपता से होता है। अन्यथा सोई हुई देह भी प्रकट होती है सुषुप्त देह की आन्तरिक कार्य प्रणालियाँ सुव्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध रूप से क्रियान्वित होती रहती हैं, उसके साथ जगत भी होता है, लेकिन उस जड़ता की स्थिति में मेरी देह के साथ अवचेतना में तद्‌रूपता नहीं होती। **'मैं'** रूपी Self साथ नहीं लगी होती, इसलिए देह व जगत होते हुए भी मेरे लिए नहीं होते। **'जड़ता'** भी निराकार मानसिकता है, जो प्रगाढ़ निद्रा के रूप में प्रकट होती है, यह दूसरी बात है इस प्रकाट्‌य का मुझे ज्ञान एवं आभास नहीं होता। जड़ता और अवचेतना के मध्य एक निराकार मानसिकता

'जड़तामयी अवचेतना' की भी होती है, जो स्वप्न सृष्टि के रूप में प्रकट होती है। वैसे तो अवचेतना में प्रकट सृष्टि भी स्वप्न सृष्टि जैसी ही होती है, लेकिन यह एक सुव्यवस्थित, सुसम्बद्ध एवं परिष्कृत सृष्टि होती है, जिसमें देह के साथ तद्‌रूपतावश **'मैं'** (जीव कोटि में) अवचेतना के विभिन्न स्तरों में तथाकथित उन्नति-अवनति, विकास-ह्रास, लाभ-हानि, योजनाओं, संघर्षों, प्रयत्नों, महत्त्वाकांक्षाओं आदि की सृष्टि देखता हूँ और तद्‌नुसार प्रभावित होता हूँ।

एक मानव-देह जब जगदाधार बनती है, तो इसकी एक दैवीय औपचारिकता है, कि इसकी **'मैं'** (जीवात्मा) के साथ अवचेतना में क्षणिक तद्‌रूपता आवश्यक है। **'मैं'** को अंग्रेज़ी में 'Self' कहते हैं, जैसेकि गाड़ी को स्टार्ट करने के लिए Self लगाते हैं, तभी गाड़ी चलती है लेकिन जैसे **Self गाड़ी** नहीं है उसी प्रकार **मैं** कोई **देह** नहीं है। एक गाड़ी खड़ी है, उसका विशिष्ट मॉडल, मूल्य, शोभा आदि-आदि है, उसकी समस्त कार्यप्रणालियाँ बिल्कुल ठीक हैं, पेट्रोल से भरी है, यह सब कुछ होते हुए, उसे सैल्फ मारनी पड़ती है अन्यथा गाड़ी नहीं चलेगी। मानव-देह रूपी गाड़ी की Self **'मैं'** है, जो जीवात्मा का शब्द रूप में द्योतक है। **'मैं'** इसके साथ लगेगी, तो ही देह सक्रिय होगी, अन्यथा देह होते हुए भी निष्क्रिय, बेकार अथवा किसी भी उपयोगिता से रहित होगी। देह रूपी गाड़ी **'मैं'** के साथ अवचेतना में तनिक तद्‌रूपता से स्टार्ट होगी। उस समय यह एक मानव-देह सम्पूर्ण कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्डों का न केवल प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि जग़दाधार भी होती है।

सम्पूर्ण करोड़ों महाब्रह्माण्डों की सक्रियता एवं क्रियान्वयन के लिए एक **'मैं'** (जीवात्मा) की नाम-रूप की अवचेतना में एक मानव-देह के साथ क्षणिक तद्‌रूपता आवश्यक है। अतः सम्पूर्ण साकार दृश्यमान जगत का प्रकाट्‌य, पालन, संहार और सब कुछ एक **'मैं'** की एक मानव-देह **के** नाम-रूप की अवचेतना पर आधारित है। अवचेतना में देह के साथ सैल्फ (**'मैं'**) लगते ही स्वतः एवं साथ-साथ उस समय की अवचेतनामयी

मानसिक स्थिति के अनुसार सक्रिय जगत भी प्रकट हो जाता है। इसका अनुभव हम कर सकते हैं। जैसे कभी-कभी गाड़ी बार-बार सैल्फ मारने पर भी स्टार्ट होते-होते बन्द हो जाती है। इसी प्रकार कभी सुबह उठना पड़ रहा हो और बहुत नींद आ रही हो, तो हम उठते-उठते फिर सो जाते हैं। इसी सुषुप्ति में कभी-कभी स्वप्न भी आ जाता है, अन्ततः फिर किसी के उठाने पर अथवा स्वयं हम उठ जाते हैं। अवचेतना में देह के नाम-रूप की सैल्फ, My self बन जाती है तथा उसके अनुसार जगत प्रकट होता है। जीवात्मा उस मानसिकता जीव कोटि के अनुसार स्वयं को देह व जगत अथवा देह सहित जगत मान लेता है। अवचेतना में चेतना का अनुपात मानसिकता के स्तर के अनुसार पृथक्-पृथक् होता है। मानसिकता का प्रकाट्य मेरे (जीवात्मा के) ज़रिए, मेरे लिए ही होता है और उसका मैं अधिग्रहण करता हूँ तथा प्रभावित होता हूँ।

सम्यक्-दृष्टि, जीवात्मा के दृष्टिकोण में देह व जगत के प्रति **'मैं और मेरा'** का भाव न रहने पर ही हो सकती है। युगों-युगान्तरों से देहाध्यासवश हुई देहधारणा के कारण विभिन्न जन्मों-जन्मान्तरों में **'मैं' अमुक-अमुक (देह का नाम-रूप) हूँ,** के भाव से मुझ दृष्टा . 'जीवात्मा' का दृष्टिकोण प्रदूषित हो गया। मुझे दृष्टि-दोष हो गया और मेरी दृष्टि सम्यक् नहीं रही। जितना भी दृश्यमान मायिक जगत है, वह सब प्रपंच है। पर+पंच =प्रपंच अर्थात् जो पाँचों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश) पर आधारित हो, वह प्रपंच है। देह सहित जगत का प्रपंच निराकार में रिकार्ड होता है और विशिष्ट भावानुसार नित्य, नूतन स्वरूपों में प्रकट होता है।

सुबह निद्रा से उठकर जैसे ही **'मैं'** (जीव) देह के साथ स्वयं को नाम-रूप की अवचेतना में पहचानता हूँ, तो देह सहित जगत का प्रपंचमय खेल प्रकट हो जाता है। जब तक मैं स्वयं को देह के साथ नाम-रूप में न पहचानूँ, तब तक मैं उठा नहीं। मेरा स्वयं को देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में पहचानना मेरी **'भूल'** है, क्योंकि **'मैं'** (जीवात्मा) सदा चेतन हूँ। मैं निद्रा में स्वयं को देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में नहीं पहचान रहा था, इसलिए

उस समय मेरे लिए मेरा देह सहित जगत नहीं था, लेकिन वह निद्रा मेरी जड़ता थी, क्योंकि मुझे स्वयं अपना व ईश्वर का भी आभास नहीं था। साथ ही मुझे देह के नाम-रूप की अवचेतना में अपनी पहचान न होने का ज्ञान भी नहीं था अर्थात् मैं अवचेतना में हुई अपनी भूल को भी भूला हुआ था।

निद्रा से उठते ही **'मैं'** (जीव) ने देह के साथ स्वयं को नाम-रूप की अवचेतना में पहचाना और तद्नुसार मेरा उस समय का जगत भी प्रकट हो गया। नाम-रूप की अवचेतना में पहचान की इस भूल को मैं मायावश, अज्ञानवश एवं अवचेतनावश भूल नहीं मानता और स्वीकार कर लेता हूँ, कि मैं देह हूँ। यह निद्रा से मात्र उठना है। इस भूल या अवचेतना (निद्रा से उठना) में ही समस्त पाप-पुण्य, प्रारब्ध, रोग-दोष, सुख-दुःख, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप, आवरण, वैर-वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष आदि हैं। इस भूल की भूल (गहन सुषुप्ति या जड़ता) में यह सब नहीं है। मैं निद्रा में यह भूल जाता हूँ, कि 'मैं देह हूँ।' इसलिए देह के समस्त सुख-दुःख एवं रोग-दोष भी अस्थाई रूप से गहन निद्रा-काल में भूल जाते हैं। कुछ लोग निद्रा से उठकर भूल को भूलाने के लिए तथाकथित जागृति में भी नशे आदि का सहारा लेकर जड़ से हो जाते हैं।

किसी भी भूल से बाहर आने के दो उपाय हैं। एक, भूल को भूल जाऊँ: दूसरे, भूल को भूल मानकर उसके निवारण का प्रयास करूँ। निद्रा की जड़ता से अवचेतना में उठकर मैं किसी भी प्रकार से यह जान जाऊँ, कि मैं जो स्वयं को देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में पहचान रहा हूँ, यह मेरी भूल है। मैं सद्गुरु-कृपा से अपनी यह भूल कबूल कर लूँ और प्रार्थना करूँ, कि ''हे महाप्रभु ! आपकी कृपा से मैं जान गया हूँ कि जो मैं स्वयं को नाम-रूप की देह समझ रहा हूँ, वह मैं नहीं हूँ। मैं कौन हूँ, मैं नहीं जानता, लेकिन तुम जानते हो, मैं कौन हूँ और तुम चाहो तो मुझे जनवा सकते हो। मुझे मेरी वास्तविक पहचान दे सकते हो।'' जाग्रत होने की यह उत्कण्ठा जिज्ञासा का बीज है और सम्यक् दृष्टि की ओर गति है। सद्गुरु की कृपा से मैं एक (जीव) उस एक (परमात्मा) का शरणागत हो जाऊँ तो वह मुझे जनवा देगा,

कि ''जन्म-मृत्यु, जरा-रोग, सुख-दुःख, कर्मबन्धन, पाप-पुण्य, प्रारब्ध आदि मात्र अवचेतना में हुई भूल में हैं। सद्गुरु कहता है, **उत्तिष्ठ ! जाग्रत !** तू चेतन जीवात्मा है; जो अपने पिता परमात्मा की तरह ही सच्चिदानंद एवं सहज सुखराशि है। तू निद्रा से उठ गया है अर्थात् अब तू जड़ नहीं है, तू भूल को भूला हुआ नहीं है। अब तू **'जाग'** अर्थात् तू अपनी चेतना की ओर उन्मुख हो। अपनी भूल को भूल मानकर स्वीकार कर ले, कि तू न देह है न जगत है। यदि भूल को भूल मानते हुए कबूल नहीं करेगा, तो तू मात्र उठा हुआ होगा और यह तेरी अवचेतना होगी। पशु भी निद्रा से उठकर भाग-दौड़ करते हैं, लेकिन वे 'जाग' नहीं सकते। तू मानव है, तुझे ईश्वर की माया में सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह मिली है। तू देह द्वारा जान ले, कि तू देह नहीं है। देह सहित जगत प्रपंच है, लेकिन तू न देह है न जगत है और न यह देह तेरी है। यह देह तुझसे कभी भी छीन ली जा सकती है। यदि उठकर भूल को कबूल कर लेगा, तो तू जाग जाएगा और तुझे अपनी चेतना की अनुभूति हो जाएगी। इसलिए शीघ्रातिशीघ्र इस अवचेतन देह से तू अपने चेतन जीवात्मा-स्वरूप की अनुभूति कर ले।''

देह असद् नहीं है, लेकिन देह के साथ तद्रूपतावश स्वयं को नाम-रूप की अवचेतना में पहचानने में देह व जीवात्मा दोनों **'असद्**' (जीव) से हो गए। मेरी दृष्टि सम्यक् नहीं रही। **'मैं'** (जीव) जब अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में उठता हूँ, तो उस समय की मायिक स्थिति के अनुसार मेरे निराकार मानस का मेरी एक देह के नाम-रूप सहित अनेक नाम-रूपों में प्रकाट्य होता है। मानस निराकार है और निराकार का साकार में प्रकाट्य है, जिसमें **'मैं'** (जीव) एक (देह रूप) और अनेक (जगत रूप) में विचरता हूँ। तद्नुसार प्रभावित होता हूँ। अन्ततः रात्रि में यह एक देह सहित समस्त मेरा साकार जगत पुनः निद्रा रूपी निराकार में विलीन हो जाता है। यह निराकार किसी मायिक विधा में पुनः देह सहित जगत बनकर साकार में प्रकट होता है। हर प्रकाट्य तीन विधाओं (निर्माण, पालन एवं संहार) में अपने भूत-भविष्य एवं वर्तमान सहित स्वयं में पूर्ण होता है।

सुषुप्ति में समस्त साकार, निराकार हो जाता है और निराकार ही पुनः साकार में प्रकट होता है। देह सहित जगत में जो साकार प्राकट्य है, उसके लिए शास्त्र ने **'नित नूतन'** की संज्ञा दी है। नित्य नई देह और नया जगत प्रकट होता है, जिसमें मैं (जीव-सृष्टि में) अपने भावानुसार, ज्ञानवश, अज्ञानवश, मोहवश व अन्यथा विचरता हूँ। निराकार का साकार में प्राकट्य हुआ और दूसरे अपने भावानुसार मेरा साकार में विचरण हुआ। महत्त्वपूर्ण प्राकट्य नहीं है, बल्कि उसमें विचरण का भाव या दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है। वह भाव निराकार मानस पर पड़े प्रभावों का समन्वित स्वरूप होता है जो स्वयं में निराकार है। हमारे सम्पूर्ण जीवन का रसास्वादन, सुख-दुःख, सौन्दर्य आदि हमारी मानसिक वृत्तियों पर निर्भर करता है। इस मानस की शुद्धता आवश्यक है, ताकि जगत को देखने का हमारा नज़रिया या दृष्टिकोण विराट, उदात्त एवं पूर्णतः दैवीय हो जाए। हमें वही नज़र आएगा, जो और जैसा हमारा नज़रिया होगा।

सद्‌गुरु के निर्देशन में जप-तप, यज्ञ-हवन, तीर्थ-यात्रा, सत्संग, ध्यान-समाधि, भजन-कीर्तन, चिन्तन-मनन, स्वाध्याय आदि पुरुषार्थ प्रकरण हमारा नज़रिया बदलने के लिए हैं, ताकि हमारी दृष्टि व दृष्टिकोण सम्यक् हो सके। समस्त साकार प्राकट्य को हम अपने निराकार दृष्टिकोण या नज़रिए से देखते हैं और उस साकार का प्रभाव हमारे ही नज़रिए के अनुसार निराकार मानस पर पड़ता है। समस्त यात्रा निराकार से, निराकार द्वारा, निराकार की निराकार के लिए है। दृश्यमान, साकार एवं प्रपंचमय जगत का समस्त व्यवहार निराकार से, निराकार द्वारा, निराकार में प्रचलित होता है और निराकार मानस को तद्नुसार प्रभावित करता है। साकार प्राकट्य प्रपंच में है, प्रकट न हो तो वह प्रपंच नहीं है। प्रपंच में प्रचलन एवं विचरण है। प्रपंच जब प्रकट होता है, तो उसमें प्रचलन हमारे अपने निराकार दृष्टिकोण के अनुसार होता है। प्रचलन के बाद प्रभाव पड़ता है और यह प्रभाव हमारे दृष्टिकोण को बदलता रहता है। इस प्रकार साकार जगत के प्रपंचमय प्राकट्य में प्रचलन और प्रभाव मानस के निराकार

दृष्टिकोण तथा भावों के अनुसार होता है। यही यह मायिक जगत है।

साकार का समस्त आडम्बर प्रपंच है और हम अज्ञान में साकार जगत की ओर भाग रहे हैं तथा अपने निराकार दृष्टिकोण की ओर ध्यान नहीं देते। देह सहित साकार जगत सतत परिर्वतनशील है अतः यहाँ की विभिन्न अनगिनत विधाओं के प्रति दृष्टिकोण नित्य बदलते रहते हैं। माया ठगिनी नहीं है, हम अपने प्रदूषित एवं राग-द्वेषपूर्ण दृष्टिकोण एवं असम्यक् दृष्टि के कारण ठगे जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, प्रेम, राग, द्वेष, वैर-वैमनस्य, भय, त्रास, अभयता, खुशी, गम, सर्वसम्पन्नता, हर्ष एवं उल्लास सब कुछ हमारा अपना नज़रिया है, जो स्वयं में निराकार भाव हैं। प्रकाट्य, प्रचलन और प्रभाव; प्रपंच का, प्रपंच में एवं प्रपंच द्वारा है। प्रपंच की इस उथल-पुथल में हमें **सम्यक् दृष्टि** चाहिए; जिससे हम समस्त जीवन का आनन्द ले सकें। सम्यक् दृष्टि 'सद्' दृष्टि है।

साकार देह व जगत के प्रकाट्य के लिए चेतना के साथ अवचेतना का स्पर्श आवश्यक है। प्रश्न उठता है, कि इस अवचेतनामयी मानसिक स्थिति का कर्ता-धर्ता कौन है ? एक Recorded Reel लगी है, उसके अनुसार फिल्म स्क्रीन पर आ जाती है। लेकिन Reel की Recording हुई है, तभी तो प्रस्तुति होती है। Recording निराकार में होती है उसके बाद साकार में प्रकाट्य होता है। देह सहित जगत का प्रकाट्य साथ-साथ स्वतः और तदनुसार निराकार से साकार में होता है, जो स्वयं में चमत्कार है। मेरे लिए प्रकाट्य का आधार वह मानसिकता है, जिसमें मेरी देह अवचेतना में जगत सहित प्रकट होती है और इस मानसिकता का आधार पहले से अंकित प्रारब्ध है। तद्नुसार मानसिकता बनती है जिसके अनुसार अवचेतना में **स्व** (देह) और **सर्व** (जगत) का प्रकाट्य होता है। अवचेतना में क्षणिक तद्रूपता हो, **'मैं'** देह सहित जगत का दृश्य देखूँ, रसास्वादन करूँ और फिर अपनी Self में आ जाऊँ। उसके बाद मान लूँ, कि जो देखा वह अवचेतना में प्रकट भ्रम मात्र था। मैं न देह हूँ, न जगत हूँ तो अवचेतना में हुई क्षणिक तद्रूपता देहाध्यास व देहधारणा में रूपान्तरित नहीं होती।

देह सहित जगत में स्व और सर्व को प्रभु के नाम से जो जहाँ, जब, जैसा भी है, स्वीकार करना सम्यक् दृष्टि है। सद् के नाम से स्वीकार करने में चेतन और आनन्द स्वतः ही जुड़ जाएगा। समस्त साकार जगत का आधार एक देह भाव है। 'मैं देह हूँ' कहते ही दृष्टि दोष हो जाता है। इसलिए यदि कुछ छोड़ना है तो देह भाव छोड़ना होगा, क्योंकि देह-भाव ही अवचेतना है। देह भाव छूट जाए, तभी सम्यक् दृष्टि हो सकती है और तभी दृष्टि और दृष्टिकोण शुद्ध हो पाएगा।

दुर्भाग्यवश जीव को अवचेतना में देहाधिपत्य, देहाध्यास की पुष्टि व परिपुष्टि होते-होते देह धारणा हो गई, तो यह अवचेतनामयी देह को अपना स्वरूप मानने लगा। इसने देह के प्रत्येक रूप, स्थिति, स्थान, समय को तदनुसार अपना रूप मान लिया। अवचेतना में देह के साथ तद्रूपता प्रारब्धानुसार होती है। प्रारब्ध जड़-चेतन की **ग्रन्थि** है। जड़ता और चेतना दोनों निराकार हैं। जब मुझ (जीव) को देह रूप में अवचेतना में तद्रूपतावश देह-धारणा हो जाती है, कि 'मैं देह ही हूँ' इस ईश्वर-विमुख स्थिति को जड़ता कहते हैं। उस समय मै प्रारब्धवश तुरन्त काल एवं कर्म-बन्धन में बँध जाता हूँ। यह देह-भाव ही जब देह सहित जगत के रूप में प्रकट होता है, तो कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व का बोझ बनकर मुझे साकार देह सहित जगत की विविध विधाओं के प्रति उत्तरदायी बना देता है। इस प्रारब्ध के कई रूप हैं—पूर्ण जड़ता, घोर जड़ता, अति जड़ता, सामान्य जड़ता आदि-आदि। हमारी बुद्धि ईश्वरीय विमुखता में आच्छादित हो जाती है, लेकिन ईश्वर कभी हमारे विमुख नहीं होता। **'मैं'** देह की धारणा में विमुख **सा** होता हूँ। एक झीना सा आवरण पड़ जाता है। यही जड़ता है और ईश्वर तो विमुख होता नहीं, इसलिए जड़ चेतन की ग्रन्थि पड़ जाती है—इसे प्रारब्ध कहा है।

इसकी चेतना एवं अवचेतना के पारस्परिक अनुपात से इसकी देह सहित जगत समय-समय पर, विभिन्न स्थानों एवं स्थितियों में प्रकट हुआ और उस प्रकाट्य को जीव ने भ्रमवश, अज्ञानवश एवं मोहवश अपना स्वरूप

मान लिया। अवचेतना में विभिन्न मानसिक तद्रूपताओं के अनुसार इसे विभिन्न स्मृतियाँ आती हैं। एक विशिष्ट अवचेतनामयी मानसिक स्थिति में इसकी देह की स्मृतियाँ भिन्न होती हैं और एक ही घटना की स्मृति विभिन्न मानसिक स्थितियों में भिन्न-भिन्न होती है। इन्हीं में यह जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित काल-चक्र में उलझा रहता है।

किसी दृश्य को देखने के लिए दृष्टि चाहिए। दृष्टि (नज़र) को दृश्य (नज़ारा) दिखाने के लिए दृष्टिकोण (नज़रिया) चाहिए। जो भी दृश्य प्रकट हुआ है, वह 84 लाख निराकार मायिक चैनलों या दृष्टिकोणों में से किसी एक से प्रकट हुआ है, इसके बारे में अधिकतर हम मानव अनभिज्ञ रहते हैं। निद्रा से उठकर **'मैं'** प्रकट या अप्रकट रूप से जब नाम-रूप की देह की अवचेतना में आता हूँ, उसी समय मेरे सम्मुख एक दृश्य होता है। इस दृश्य में मेरी अपनी देह भी होती है। हर रोज़ नित नूतन दृष्टिकोण के अनुसार प्रकट या अप्रकट नया दृश्य होता है। मेरे दिल-दिमाग में अदृश्य रूप से चलता अप्रकट जगत भी मेरे लिए दृश्यमान होता है, क्योंकि मैं उसमें विचरता हूँ। एक दृश्य प्रकट रूप से प्रकट होता है और दूसरा अप्रकट रूप से प्रकट होता है। अप्रकट-प्रकट दृश्य में उस समय का मेरा अतीत, भविष्य की योजनाएँ, परियोजनाएँ, कल्पनाएँ, सम्पूर्ण विचार धारणाएँ, सोच, आकांक्षाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ एवं चाहतें आदि मेरे लिए अप्रकट रूप से दृश्यमान हो जाती हैं।

जब मैं सोया हुआ था तब यह सब नहीं था। यह **प्रकट-प्रकट** और **अप्रकट-प्रकट** जगत मेरे उस समय के मायिक दृष्टिकोण के अनुसार होता है, जिससे मेरी देह सहित जगत दृश्यमान हुआ है। मुझे इस दृष्टिकोण का कोई ज्ञान नहीं होता, लेकिन नाम-रूप की देह की अवचेतना में आते ही यह घटना घट जाती है। उस वक्त जो देह सहित जगत प्रकट हुआ, उस समस्त जगत का आधार मेरी नाम-रूप की देह की अवचेतना ही होती है। एक विशिष्ट चैनल में प्रकट जगत का अधिग्रहण एवं उस में मेरा व्यवहार और प्रचलन उस समय के मेरे निजी दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। इस

प्रकार दो दृष्टिकोण हैं—पहला दृष्टिकोण, वह मायिक चैनल है, जिस के अनुसार मेरी देह सहित जगत प्रकट होता है जो अक्सर अज्ञात रहता है। इस प्राकट्य में निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ रहती हैं और यह प्राकट्य नाम-रूप की अवचेतना में आने पर ही होता है। दूसरा दृष्टिकोण मेरा निजी होता है, जिसके अनुसार मैं उस प्रकट जगत में विचरता हूँ। एक समय मैं एक व्यक्ति विशेष से बात भी नहीं करना चाहता था, लेकिन आज उसी से मिलने का मन कर रहा है; चाहे स्वार्थवश, मोहवश अथवा अन्यथा। इस प्रकार प्रकट जगत का अधिग्रहण एवं उसमें प्रचलन अपने जिस दृष्टिकोण के अनुसार होता है मैं उस दृष्टिकोण से अवगत रहता हूँ। हर प्राकट्य में जो मेरा प्रचलन है, वह भी मेरी नाम-रूप की देह की अवचेतना में ही होगा; इसलिए वह अवचेतना की परिपुष्टि है।

नाम-रूप की अवचेतना की **पुष्टि** हुई, तो देह सहित जगत प्रकट हुआ और अवचेतना की **परिपुष्टि** है—मेरा उसमें प्रचलन। जिससे प्रपंच का प्रभाव कोई मानसिकता अथवा दृष्टिकोण बनकर पुनः निराकार मानस में समाहित हो जाता है। जब तक परिपुष्टि नहीं होगी, तब तक उसमें प्रचलन नहीं होगा और प्रचलन नहीं होगा तो उसका प्रभाव भी नहीं होगा। जड़ता एवं समाधि में प्रपंच नहीं है, इसलिए प्राकट्य नहीं है और प्रचलन व प्रभाव का तो प्रश्न ही नहीं उठता। **प्रपंच मात्र अवचेतना में है।**

कृपया एकाग्र करें मैं पुनः वर्णन करूँगा। नाम-रूप की देह की अवचेतना की पुष्टि में निराकार चैनल से देह सहित जगत प्रकट हुआ। इस प्रकट प्रपंच की निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ थीं। इस प्राकट्य में मेरा विचरण और प्रचलन भी नाम-रूप की अवचेतना में हुआ, जिससे अवचेतना की परिपुष्टि हो गई। अवचेतना की परिपुष्टि एवं प्रचलन दृश्यमान होता है। जब मैं कुछ करता हूँ या करना चाहता हूँ अथवा नाम-रूप की अवचेतना की परिपुष्टि में जब कुछ होता है; उसके परिणामस्वरूप मैं प्रभावित होता हूँ, अन्यथा नहीं होता। इसलिए प्रचलन का प्रभाव पड़ता है। अन्ततः समस्त प्रभाव निराकार में समाहित हो जाता है; जो

पुनः किसी मायिक चैनल में देह सहित जगत के प्रपंच के रूप में प्रकट होता है। हम इस श्रृंखला में उलझे रहते हैं, यही हमारा जगत है।

दृश्यमान सृष्टि के चार अंग हैं—दृश्य, दृष्टि, दृष्टिकोण और दृष्टा। किसी विशिष्ट समय में जो हम देख रहे हैं, वह दृश्य होता है और हर दृश्य को हम दृष्टि के द्वारा देखते हैं। तीसरा अंग है—दृष्टिकोण या नज़रिया। हम दृष्टि से दृश्य देखते हैं, लेकिन एक ही दृश्य को विभिन्न लोग पृथक्-पृथक् देखते हैं। क्योंकि दृश्य में हम वह देखते हैं, जो हमारा अपना-अपना दृष्टिकोण या नज़रिया होता है। हमें वह दृश्य वैसा ही लगता है, जैसा हमारा दृष्टिकोण होता है। उदाहरणतः सूर्य भगवान उदय हो रहे हैं, दस व्यक्ति इस दृश्य को देखकर वर्णन करें, तो सबका वर्णन पृथक्-पृथक् होगा। जिसका जो दृष्टिकोण है, उसने उस एक ही दृश्य को, वही और वैसा ही देखा।

दृश्य साकार में दृश्यमान प्रपंच है, जो पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित और संहारित है तथा पंच-महाभूतों में ही विलीन हो जाता है। दृष्टि साकार है, लेकिन दृष्टिकोण निराकार एवं अदृश्य है। चौथा अंग है—दृष्टा। दृष्टा जिस दृष्टिकोण से देखेगा, उसकी दृष्टि वही दृश्य देखेगी और देखना चाहेगी। दृष्टिकोण के बदलते ही दृश्य का अधिग्रहण परिवर्तित हो जाएगा। दृश्य को हम सब अपने-अपने दृष्टिकोण से दृष्टि द्वारा देखते हैं और विभिन्न समय, स्थान और स्थितियों में हमारा दृष्टिकोण अलग-अलग होता है। दृष्टिकोण न दृश्य है और न ही दृष्टि है बल्कि किसी भी दृश्य की आलोचना, प्रत्यालोचना, प्रशंसा अथवा निंदा करने एवं प्रभावित होने का मैकैनिज़्म है। एक व्यक्ति को कभी बहुत पसन्द करते थे आज उससे बिल्कुल मिलना नहीं चाहते, बल्कि सामने पड़ जाए, तो कतरा कर उसे उपेक्षित करते हैं। एक स्थान कभी हमें बहुत पसन्द था, पर आज उस स्थान से दुर्गन्ध आने लगती है। जिस नौकरी या व्यापार को हमने अति उत्साह से अपनाया, उसी नौकरी और व्यापार से तंग आकर बदलना चाहते हैं। जिस धन, स्त्री, सन्तान, पदवी को हम बहुत चाहते हैं, उससे घृणा करने लगते हैं।

जिससे कभी घृणा करते थे, आज पसन्द करने लगते हैं। लोग कहते हैं, कि इस व्यक्ति की कोई अपनी निजता या विचारधारा ही नहीं है, कल कुछ कह रहा था आज कुछ और कह रहा है। यदि **'मैं'** (जीवात्मा) देह रूप में दृष्टा हूँ तो उस साकार दृष्टा की अपनी निजता, अपना दृष्टिकोण या विचारधारा हो ही नहीं सकती। जब तक **'मैं'** (जीव) देह के साथ तद्‌रूप रहेगा तब तक प्रत्येक दृश्य एवं दृष्टिकोण असम्यक्, असद्, परिवर्तनशील, निस्सार, निरूद्देश्य एवं अस्थिर ही होगा।

सम्यक् दृष्टि वस्तुतः **'सद्'** दृष्टि है। '**सद्**' कभी नहीं बदलता देह व जगत सतत् परिवर्तनशील है। हमारी एषणाओं एवं वासनाओं में अतृप्ति एवं आसक्ति इसलिए रहती है, क्योंकि जगत के विषय में हमारा दृष्टिकोण साकार देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में तद्‌रूपतावश बदलता रहता है। हमारा दृष्टिकोण स्थिरता-रहित एवं आधार-रहित है। दृश्यमान साकार दृश्य प्रपंच है। यदि दृष्टा भी साकार है तो उस प्रपंचमय दृष्टा का दृष्टिकोण भी प्रपंच-युक्त ही होगा। वहाँ दृश्य, दृष्टि, दृष्टिकोण और दृष्टा में मात्र दृष्टिकोण निराकार होगा। यह निराकार दो प्रकार का है। एक Recorded और दूसरा Unrecorded. जैसे Unrecorded रील पर फिल्म Record की जाती है। साकर फिल्म की वह Recording निराकार में होती है और उस निराकार Recording को हम सिनेमाघर में पर्दे पर देखते हैं। Unrecorded Reel को यदि सिनेमाघर में चला दिया जाए, तो पर्दे पर साकार में कुछ भी दृश्यमान नहीं होगा। अगर आएगी तो रील आ जाएगी।

एक निराकार रील Unloaded एवं Unrecorded है और दूसरी निराकार रील Recorded और Loaded है। जब **'मैं'** (जीवात्मा) नाम-रूप की अवचेतना में देह के साथ तद्‌रूपतावश साकार दृष्टा होता हूँ, तो यद्यपि दृष्टिकोण निराकार है लेकिन वह Recorded और Loaded होता है इसलिए वही दृश्यमान होकर प्रकट हो जाता है। ***'जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे'*** और इसी में **'मैं'** (जीवात्मा) अजन्मा एवं अमर होते हुए भी जीव-सृष्टि में जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित काल-चक्र में भटकता रहता

हूँ। यह साकार प्रपंचपूर्ण दृष्टा बेचैन एवं अस्थिर होता है और ऐसा ही रहेगा। भटकन और व्यर्थ की इस दौड़ में हम कुछ छिपाना चाहते हैं। **'सद्'** का सामना करने से घबराते हैं इसलिए **'सद्'** से छिपते हैं। असद् को छिपाना चाहते हैं और 'सद्' से छिपना चाहते हैं। क्योंकि देखने वाला दृष्टा स्वयं प्रपंच का बनकर देख रहा है और तद्नुसार प्रभावित हो रहा है। इसलिए यह साकार दृष्टा दृश्य में लिप्त और आसक्त होते हुए, अवश्य ही अभाव में ही रहेगा। क्योंकि तब दृष्टा जीवात्मा नहीं, नाम-रूप की देह में जीव होगा।

जो भी दृश्य है, वह अदृश्य की निराकार में हुई Recording का साकार में प्रकटीकरण है। **एक** वह दैवीय Recorded निराकार है, जो मेरे ज्ञान में नहीं है और जिस चैनल में 'मैं' निद्रा से देह-सहित जगत में उठता हूँ, उस समय प्रकट देह-सहित जगत का दृश्य उस Recorded निराकार का प्राकट्य है। उस प्रकट दृश्य को 'मैं' जिस नज़रिए अथवा दृष्टिकोण से देखता हूँ, वह दृष्टिकोण उससे भिन्न है जिस Recorded चैनल या दृष्टिकोण से वह प्रकट हुआ है।

रात को सोते समय मुझे ज्ञान ही नहीं था, कि सुबह उठने पर क्या प्रकट होगा। जो दृश्य प्रकट हुआ, उसे मैंने जिस नज़रिये से देखा, वह मेरे लिए वैसा ही था और अपने उस नज़रिये के अनुसार ही मैंने उसमें व्यवहार (प्रचलन) किया। इस प्रकार मेरा अपना एक निराकार नज़रिया प्रकट हुआ जो स्वतः प्रकट जगत में मेरे व्यवहार से प्रकट हुआ। इस नज़रिए के लिए बहुत सी बातें जिम्मेदार थीं– जिस वृत्ति या भाव को लेकर मैं सोया था, मेरे attitude, aptitudes, divinity से मेरी निकटता या दूरी, भौतिक जगत की विभिन्न साकार विधाओं में मेरी लिप्तता, मेरे भय, ईर्ष्या, द्वेष आदि-आदि। जगत व्यवहार जिस दृष्टिकोण से करते हैं, वह भी Recorded निराकार है। इसका हमें ज्ञान होता है। यह जो प्रचलन हुआ, यह भी Recorded था। मेरे मन में प्रकट जगत में विभिन्न लोगों के प्रति प्रेम, घृणा, क्रोध आदि जो भी भाव थे प्रकट हो गए, क्योंकि वे निराकार में Recorded थे।

एक साकार के प्रति निराकार (दृष्टिकोण) भिन्न-भिन्न हो गए, जबकि निराकार एक ही है। साकार भिन्न-भिन्न हैं। निराकार अनेक होने से बुद्धि प्रदूषित हो गई, सुकृति (मानव-देह) विकृति हो गई और विरक्ति आसक्ति बन गई। असंख्य आकारों का स्वामी एक निराकार है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का प्रकाट्य एक निराकार से होता है। पंच-महाभूतों में प्रकट, निर्माण, पालन एवं संहार की समस्त गतिविधियाँ और अन्ततः विलय का कारण एवं अस्तित्व **'एक'** निराकार है। एक निराकार का यह समस्त खेल एक साकार के लिए है। जहाँ एक साकार के लिए अनेक निराकार हो जाएँगे, वह विक्षेप एवं घोर त्रुटि है। वहाँ से पाप-पुण्य, आधि-व्याधि-उपाधि, भय-त्रास, मल एवं आवरण की अन्तहीन श्रंखला शुरू हो जाती है।

अध्यात्म का उद्देश्य एवं मूल एक जिज्ञासा है, कि अनेक रूपात्मक दृश्य में विभिन्न दृष्टिकोणों का दृष्टा कौन है ? मैं साकार देहधारी अमुक-अमुक नाम-रूप में व्यक्ति दृष्टा हूँ अथवा मैं निराकार जीवात्मा हूँ। एक समय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण एक व्यक्ति के नहीं हो सकते, लेकिन निराकार जीवात्मा के हो सकते हैं। मानसिकता हमारा अपना निजी दृष्टिकोण है। हमारी भटकन का मुख्य कारण यह है, कि हमें दृश्यों में हमारे अपने दृष्टिकोण के अनुसार विशिष्ट दृश्य चाहिए। उस तथाकथित उद्देश्य की प्राप्ति के बाद यह भटकन और बढ़ जाती है, क्योंकि दृष्टिकोण फिर बदल जाता है। दृष्टिकोण निराकार है तदनुसार दृश्य बदलते रहते हैं और तद्नुसार उन दृश्यों के प्रति हमारे भाव बदलते रहते हैं।

सम्यक् दृष्टि का अर्थ ही यह है, कि देहरूप में मुझे (जीवात्मा को) यह ज्ञान हो जाए कि मेरी देह सहित जगत एक निराकार मानसिक मायिक विधा से स्वतः प्रकट हुआ है। यह प्रपंच है, इसलिए होते हुए भी नहीं है। यदि 'मैं' उस निराकार मानस से इसका अधिग्रहण करता हूँ जिसमें कोई Recording नहीं है तो पाता हूँ कि समस्त प्रपंच और उसका प्रकाट्य, प्रचलन एवं प्रभाव देह रूप में मेरे 'एक'-'अनेक' में है। Unrecorded रील में न एक है, न अनेक है। जीवात्मा का आत्म-स्वरूप Unrecorded निराकार

Reel अथवा आनन्दमय मानस है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का समस्त प्रपंच चौरासी लाख मायिक विधाओं की Recorded Reel से प्रकट होता है। इस Recorded को Unrecorded से देखना, देह के होते हुए देहातीत स्थिति है। Unrecorded निराकार से सम्यक् दृष्टि द्वारा जब मैं Recorded निराकार को देखूँगा, तो समस्त प्रकट दृश्य के प्रपंच के प्रति मेरा दृष्टिकोण सम्यक् होगा और मेरे भीतर का दृष्टा निराकार होगा। फिर जो भी प्रकट हुआ है, उसका मैं आनन्दपूर्वक रसास्वादन करूँगा। जब मैं दृष्टा निराकार हो जाऊँगा तो मेरा अपना निजी दृष्टिकोण आनन्दमय होगा और प्रकट प्रपंच में मेरा प्रचलन दैवीय ही होगा। वह प्रचलन लीला होगी जो मेरे दृष्टिकोण को तद्नुसार ही प्रभावित करेगी, कि यह सब मेरे इष्ट की लीला है। माया में प्रकट प्रपंच की हर विधा मात्र आनन्द ही आनन्द होगी।

इस मायिक प्रपंच के रसास्वादन के लिए आनन्द का प्राकट्य होना परमावश्यक है। आनन्द के प्राकट्य के लिए मेरे निराकार मानस की वह स्थिति होनी चाहिए, जिसमें मैं देह और जगत को अपने से परे मानूँ और अनुभव करूँ। देह व जगत हो, प्रपंच हो, लेकिन न मैं देह हूँ, न जगत हूँ और इसका मुझे आभास एवं अनुभूति हो; यही आनन्द की स्थिति है। यह मेरी चेतना होगी। मैं देह हूँ यह भाव मेरी अवचेतना है। न मैं देह हूँ न जगत हूँ और इसका मुझे आभास ही नहीं है, तो यह मेरी जड़ता है। साकार जगत के प्रपंच की Non-consciousness की consciousness समाधि है। निद्रा में भी प्रपंच की Non-consciousness होती है। देह और जगत का अभाव होता है, लेकिन इस स्थिति की हमें Consciousness नहीं होती, इसलिए आनन्द नहीं होता और वह जड़ता है। आनन्द के आभास एवं अनुभूति के लिए मुझे देह सहित जगत की Non-consciousness की Consciousness होना आवश्यक है। यह एकान्त अथवा समाधि स्थिति है; वहाँ देह व जगत का पूर्णतः अभाव हो जाता है और इस स्थिति का मुझे ज्ञान होता है। देह के होते हुए उसके अभाव (एक+अन्त एकान्त) में सब कुछ का अभाव हो जाता

है। यह मेरी चेतना है। इस आनन्दमय स्थिति से जब योगी प्रपंच में उतरता है, तो उसका दृष्टिकोण बिल्कुल बदल जाता है। देह सहित जगत एक विशिष्ट दृष्टिकोण या मायिक चैनल में है; इसके प्रति वह सतर्क एवं जागरूक होता है। इसका अधिग्रहण एवं इसके प्रति उसका व्यवहार और उसमें प्रचलन के प्रति उसका दृष्टिकोण बिल्कुल तटस्थ एवं निर्लिप्त होता है। समाधि या चेतना में उसकी देह भी **'मैं मयी'** हो जाती है। पहले उसकी **'मैं'** भी **देहमयी'** हो कर अवचेतन हो गई थी।

सम्यक् दृष्टि इस प्रपंच के प्रति मेरा दृष्टिकोण बदल देगी। जन्मों-जन्मान्तरों में 'मैं देह हूँ' के देह भाव ने मुझे दृष्टि-दोष से ग्रसित कर दिया; मेरी सम्यक् दृष्टि आच्छादित हो गई। नाम-रूप की अवचेतना की पुष्टि में प्रकट प्रपंच के प्रति दृष्टि-दोष के कारण परिपुष्ट अवचेतना में जो भी मेरा प्रचलन हुआ, वह मुझे और-और आच्छादित करता रहा। **सम्यक् दृष्टि मेरा दृष्टिकोण बदल देगी, कि न मैं देह हूँ न मैं जगत हूँ।** इस अनुभूति के आनन्द से सम्यक् दृष्टि का प्रस्फुटन होगा। उस सम्यक् दृष्टि द्वारा बदले दृष्टिकोण से नाम-रूप की अवचेतना में देह सहित जगत के प्रकट प्रपंच में यदि मेरा **'प्रचलन'** होगा, तो वह सद् होगा। देह की अवचेतना में आते ही सद्गुरु-कृपा से मैं चिन्तन करूँगा, कि देह मेरी नहीं है, तो देह किसकी है ? मैं देह नहीं हूँ तो मैं कौन हूँ ?

मैं सुषुप्ति की जड़ता में नाम-रूप की देह से स्वयं को पहचानने की भूल को भूला रहता हूँ, निद्रा से मात्र उठने में अवचेतना में भूल हो जाती है, कि मैं देह हूँ। लेकिन मैं जागृति में चेतन होकर भूल को कबूल कर लेता हूँ, कि मैं देह नहीं हूँ। मैं परमात्मा का हूँ और देह भी उसकी है। इस भाव के आते ही देह भी सद् हो जाती है। मैं (जीवात्मा) तो सद् हूँ ही। मैं देह हूँ, यह असद् है एवं अवचेतना है। यह भूल है। इसका सद् यह है, कि मैं **'सद्'** हूँ और देह **'सद्'** है। मैं सदा जाग्रत हूँ और विशुद्ध चेतना हूँ। देह से पहले भी मैं था, देह के बाद भी मैं हूँगा और देह के दौरान भी मैं हूँ। देह की हर स्थिति के साथ **'मैं'** लगा रहा हूँ, इसका अर्थ है, मैं हर स्थिति से परे हूँ। इस प्रकार

मैं देह से देह का सद् ग्रहण करके अपने विशुद्ध स्वरूप की अनुभूति करता हूँ।

सच और झूठ दोनों असद् में हैं। सद् हमेशा ही सद् है। देह का सद् यह है, कि देह न केवल प्रपंच है, बल्कि देह सहित समस्त जगत के प्रपंच का आधार है। सद्गुरु कहता है, ''हे मानव ! सम्यक् दृष्टि द्वारा देह के साथ तेरी नाम-रूप की अवचेतना में पहचान ही तुझे प्रपंच का ज्ञान करा देगी। सुषुप्ति में तू अपनी भूल (नाम-रूप की अवचेतना) को भूला हुआ था, इसलिए प्रपंच को भी भूला हुआ था। निद्रा से उठकर तू अपनी भूल को भूल मानकर स्वीकार कर, तब तू पंच-महाभूतों पर आधारित देह सहित जगत में प्रकट प्रपंच की तीनों विधाओं (निर्माण, पालन एवं संहार) का आनन्द लेगा और प्रभु की लीलाओं की वाह-वाह करेगा।'' जब भूल की कबूल सिद्ध हो जाती है, तो वह देह भी सिद्ध हो जाती है।

हमने सिद्धि की परिभाषा दी थी—''सद्गुरु द्वारा देह के अन्तिम सद् की स्वीकृति की प्रामाणिकता, पुष्टि एवं सत्यापन को सिद्धि कहते हैं।'' देह के अन्तिम सद् की स्वीकृति स्वयं की नाम-रूप में पहचान की भूल की कबूल ही है, कि मैं देह नहीं हूँ। मैं जन्म-मृत्यु से रहित, अवधि से परे, प्रपंच से परे, मायातीत, शाश्वत् जीवात्मा हूँ। देह प्रपंच है, मायिक है, जन्म-मृत्यु वाली, नश्वर एवं सुनिश्चित अवधि में बँधी है। देह अन्ततः भस्मी बन जाएगी। मैं (जीव) देह की अवचेतना में जब अपनी देह की भस्मी के विषय में चिन्तन करता हूँ तो अपनी देहातीत स्थिति की अनुभूति करता हूँ। देहातीत, न तो देह का अतीत है और न देह के बाद है, बल्कि देह से परे है। देह है; लेकिन **'मैं'** और **'भस्मी'** दोनों देहातीत हैं।

मैं देह हूँ और मैं देह नहीं हूँ, दोनों में **मैं** के साथ देह Common है। इसलिए देह भी स्वयं में सद् है। जब तक नाम-रूप की अवचेतना में पहचान की भूल कबूल होकर सिद्ध नहीं होगी, तब तक एकान्त की अनुभूति जीव को नहीं होगी। तहेमन एवं रूह से यह भूल कबूल हो जाए। इस भूल को जान जाऊँ और मान जाऊँ, कि मैं हूँ, लेकिन मैं देह नहीं हूँ। देह है, जगत भी है, मैं

जीवात्मा इसका दृष्टा हूँ। **'देह है'** यह देह का अस्तित्व है और मैं हूँ, यह **'मैं'** (जीवात्मा) का अस्तित्व है। सद्गुरु कृपा से इस सद् की स्वीकृति की पुष्टि, प्रामाणिकता एवं सत्यापन सिद्धि का वह अदृश्य दैवीय दस्तावेज है; जिसके बिना सम्यक् दृष्टि होना सम्भव नहीं है। इस स्थिति की प्राप्ति व अनुभूति मात्र कृपा-साध्य है। इसके लिए जीव को आर्तनाद करते हुए प्रार्थना करनी होगी कि ''प्रभु मुझे मेरी देह की भस्मी से आत्मसात् कर दो। मैं देह भाव में देह को धारण कर चुका हूँ। देह मेरी है, तो देह की भस्मी भी मेरी है। प्रभु आपकी कृपा एवं शक्ति से मैं अपनी देह की भस्मी (संहार) देह के दौरान देखना चाहता हूँ। अपनी देह की भस्मी मैंने कभी नहीं देखी।'' फिर एक न एक दिन कृपा अवश्य होती है।

प्रकट प्रपंच स्वयं में पाँच ईश्वरीय विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति एवं ऐश्वर्य) से युक्त है। इन पाँच विभूतियों का स्रोत विभूत्यातीत विभूति ही **'वैराग'** है। वैराग, शिव की अतिशक्ति है, जिससे पाँचों प्राणों की महाशक्ति का अभ्युदय हुआ। पंच प्राणों की महाशक्ति एवं अतिशक्ति वैराग में परस्पर क्रीड़ा हुई, जिससे पंच प्राण (समान, उदान, अपान, प्राण एवं व्यान) क्रमशः—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश, इन पंच-तत्त्वों के रूप में प्रकट हुए। सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण, पालन और संहार पंच-महाभूतों में ही होता है। इस सबका स्रोत शिव की अतिशक्ति **'विरक्ति'** है। विरक्ति स्वयं में प्रपंच-रहित है और प्रकाट्य प्रपंच सहित है। विरक्ति जीवात्मा का स्वरूप है, जहाँ देह सहित प्रपंचमय जगत का पूर्ण अभाव है, जहाँ कुछ नहीं है। जीवात्मा चेतना है और अवचेतना में प्रपंच है तथा प्रपंच में निर्माण, पालन एवं संहार का प्रकाट्य है। **'विरक्ति'** आनन्दमयी, सद् एवं चेतनामयी है एवं प्रपंच रहित है। विरक्त भाव में प्रपंच के होते हुए प्रपंच रहितता का आभास होता है। सद् चेतन आनन्द के प्रस्फुटन, आभास, प्रकाट्य एवं अनुभूति के लिए यह अनुभूतिगम्य होना आवश्यक है, कि मैं प्रपंच रहित हूँ :— ''***निराकार रूपं शिवोऽहम् शिवोऽहम्***''

प्रपंच रहित जड़ता या सुषुप्ति से उठने पर अवचेतना में प्रकट प्रपंच

की आसक्ति होती है और **'मैं'** (जीव) देह मय होकर प्रपंच में जकड़ा जाता हूँ। मेरी समस्त दौड़ प्रपंच की आसक्ति में साकार जगत की प्राप्तियों की ओर हो जाती है, क्योंकि निद्रा में प्रपंच रहित होते हुए भी मुझे विरक्ति के आनन्द की अनुभूति नहीं हुई। निद्रा की जड़ता से प्रपंच में आकर जीवात्मा अपनी पाँच विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति एवं ऐश्वर्य) को प्रपंच में देखना चाहता है। समाधि से उठने पर अवचेतना में प्रकट प्रपंच के प्रति विरक्त भाव होता है, क्योंकि जीवात्मा अपनी प्रपंच रहित चेतनामयी एवं आनन्दमयी अभावमय स्थिति की अनुभूति से सराबोर होता है। उस 'मैं मयी देह' सहित जगत के प्रपंच में आकर जीवात्मा प्रपंच को पंच (खण्डित) कर देता है और वह समस्त प्रपंच (जन्म-मृत्यु, उन्नति-अवनति, मान-अपमान, त्रास, सुख-दुःख, हानि-लाभ) आनन्दमय हो जाता है, जिसे जीवात्मा अपने प्रभु की लीला-रूप में दृष्टाभाव से देखता है और रसास्वादन करता है। महापुरुष लीला करने के लिए देह धारण करते हैं। इसलिए समाधि की चेतनावस्था में अपनी विरक्ति की अनुभूति करके जब वे प्रपंच में आते हैं, तो प्रपंच को आनन्दित करते हैं और पाँचों विभूतियाँ स्वतः प्रपंच में समय-समय पर प्रकट होती रहती हैं। प्रपंच में जो तथाकथित सुख-दुःख हैं, वे जीवात्मा के अभावमय आनन्द-स्वरूप से ही प्रकट होते हैं।

आनन्द मिश्रित सुख परम सुख है। निद्रा की जड़ता में प्रपंच रहित जीवात्मा ईश्वर विमुख होता है। समाधिस्थ योगी प्रपंच रहित होकर अपने सच्चिदानंद अभावमय स्वरूप की सम्मुखता में विरक्ति के आनन्द से ओत-प्रोत होता है। समाधिस्थ को यह ज्ञान होता है कि मैं प्रपंचरहित हूँ। अर्थात् प्रपंच है, लेकिन मैं उससे परे हूँ। यहाँ जीवात्मा की परमात्मा से सम्मुखता होती है और आनन्द का प्रकाट्य होता है।

जहाँ नाम-रूप की अवचेतना में स्वयं को पहचान कर प्रपंच में लिप्त हो गए, वहीं से अशुद्धता का पदार्पण हो जाता है। इस असद् पहचान से सम्यक् दृष्टि समाप्त हो जाती है। दृष्टि (नज़र) दृष्टिकोण (नज़रिया) दृष्टा और दृश्य (नज़ारा) सब असद् हो जाता है। पंच महाभूतों के प्रपंच में मेरा

(जीव का) विचरण मेरे अपने मनोभाव के अनुसार होगा। मनोभाव निराकार है। प्रकाट्य स्वयं में निराकार का, निराकार से, निराकार (जीवात्मा) के लिए है। प्रकाट्य के बाद इसका प्रभाव भी निराकार रूप से मानस में समाहित हो जाता है। समस्त साकार प्रपंचमय सृष्टि के प्रकाट्य की यात्रा निराकार से, निराकार द्वारा, निराकार की, निराकार के लिए है।

किसी प्रकाट्य से प्रभाव रूप में मेरा निराकार भाव ही दूसरे प्रकाट्य में मेरा प्रचलन या विचरण बनता है। प्रकाट्य, प्रपंच, प्रचलन और प्रभाव की श्रंखला जन्मों-जन्मान्तरों में चलती रहती है; जिसका आधार निराकार देहभाव है। देह के साथ तद्‌रूपता सी में हम इस प्रपंचमय साकार प्रकाट्य में अपनी ही सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य ख्याति आदि विभूतियाँ जन्मों-जन्मान्तरों में खोजते रहते हैं और भूल जाते हैं, कि ये विभूतियाँ मेरे अपने ही विरक्त, अभावमय आनन्द-स्वरूप से प्रस्फुटित होती हैं। हमारी प्राप्तियाँ ही हमें प्रदूषित करती रहती हैं। जितना प्रपंच है, वह सब असम्यक् ही है। इसमें सम्यक् दृष्टि और दृष्टिकोण हो ही नहीं सकता। अवचेतना में जितना भी संशोधन, परिवर्तन, परिवर्द्धन, नवीनीकरण कर लूँ, वह असम्यक् ही होगा। **सम्यक्** दृष्टि **स्वयं में महायोग है**, **मोक्ष है** और **समस्त मान्यताओं की समाप्ति है**। यह तब सम्भव होगा, जब **'मैं'** (जीवात्मा) अपने विरक्त एवं अभावमय आनन्दस्वरूप की अनुभूति कर लूँगा। **न मैं देह हूँ न जगत हूँ, यह पूर्ण सम्यक् दृष्टि है।** यदि मैं देह हूँ, तो जगत भी हूँ। यह सम्यकता प्रधान असम्यक् दृष्टिकोण है, जिसमें सम्यकता की ओर गति रहती है। लेकिन मैं देह हूँ और जगत मुझसे पृथक् है, की दृष्टि **घोर असम्यक् है**। देह सहित जगत के प्रपंच का मुझे आभास ही नहीं है और इसका ज्ञान भी नहीं है, वह जड़ता है।

'मैं' जीवात्मा का **'शब्द'** रूप में प्रकाट्य है। **'मैं'** कोई देह नहीं है, इसलिए मैं को देखा नहीं जा सकता, केवल सुना जा सकता है। **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं में सच्चिदानंद, परमात्मा का इकलौता मानस पुत्र उसी की भाँति अजर, अमर, देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत,

सम्बन्धातीत, माया के तीनों गुणों से अतीत और ब्रह्माण्डातीत है। जीवात्मा अभावमय, आनन्दमय, निर्लिप्त एवं विरक्त मानस है। देह व जगत रहित Unloaded एवं Unrecorded निराकार मानस मुझ जीवात्मा का स्वरूप है और मेरा आत्म-दर्शन है। इसका दृष्टिकोण भी Unloaded और Unrecorded होगा। इस दृष्टिकोण से वह हर दृश्य की वाह-वाह ही करेगा, कि ''प्रभु ! जो चाहे दिखा दो सब कुछ आनन्दमय ही है।'' यदि देह है, तो साकार दृश्य तो होगा और जगत भी होगा, लेकिन **'मैं'** (जीवात्मा) देहातीत हूँ। देह सहित जगत मुझ जीवात्मा के मनोरंजन एवं विलास के लिए है जिसमें मेरी कोई लिप्तता अथवा आसक्ति नहीं होगी।

जीवात्मा स्वयं में चेतन भस्मी है। चुटकी भर भस्मी के आधार पर टिमटिमाती हुई लौ इसका स्वरूप है। जो पंच-महाभूतों से निर्लिप्त है। जब हम अपने इस चेतन स्वरूप से विमुख हो जाते हैं, तो अपनी ही विभूतियों को अवचेतनामय आडम्बर पूर्ण प्रपंच में पाना चाहते हैं। एकान्त की स्थिति का अनुभव करने के बाद जो देह होगी, वह दिव्य देह होगी, जो हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्वसम्पन्नता, भक्ति, मस्ती, ईश्वरीय मोह, साहस, उत्साह, कृपा और आनन्द से परिपूरित होगी। उस विदेह 'मैं मयी' देह में निराकार दृष्टा की दृष्टि सम्यक् होगी और दृश्य मात्र लीला होगी।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(21, 23 , 29 , 30 नवम्बर व 14 दिसम्बर 2008 तथा 17 से 19 फरवरी 2009)

चेतनावचेतन

(भाग एक)

पंच-महाभूतों पर आधारित प्रकट जगत प्रपंच है। इस प्रकाट्य की निर्माण, पालन और संहार तीन विधाएँ हैं। इस मायिक प्रपंच के समस्त कारणों का कारण (कारणं-कारणानाम्) मात्र ईश्वर है। 'मैं' ईश्वर का एकमात्र मानसपुत्र स्वयं में चेतन और सहज सुखराशि निराकार जीवात्मा हूँ। जब मैं (जीवात्मा) ने देह के साथ नाम-रूप में तद्रूपता की, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, तो यह अवचेतना समस्त प्रपंच का आधार होती है। अतः साकार प्रकाट्य में देह के साथ नाम-रूप में पहचान, मेरा (जीवात्मा का) चेतना से अवचेतना (जीव-सृष्टि) में पतन है। अवचेतना प्रपंच की जननी नहीं है, लेकिन प्रपंच के जनन और प्रकाट्य का आधार है। अवचेतना न होती तो प्रकट अथवा अप्रकट रूप में कोई प्रपंच भी न होता।

गहन निद्रा में मुझे नाम-रूप की अवचेतना नहीं होती, इसलिए देह सहित जगत की अवचेतना भी नहीं होती। लेकिन मुझे देह सहित समस्त जगत की अवचेतना न होने का ज्ञान भी नहीं होता। इसलिए निद्रा की जड़ता में मेरे लिए कोई प्रपंच और साकार प्रकाट्य नहीं होता। जो देह सहित जगत मात्र अवचेतना में है, उसकी अवचेतना न होना तो अच्छा है, लेकिन निद्रा की जड़ता में देह सहित जगत की non-consciousness की consciousness भी नहीं होती। इसलिए गहन निद्रा की स्थिति को **जड़ता** कहा है। इस जड़ स्थिति में मुझे देह सहित जगत के साथ अपना और ईश्वर का भी कोई आभास नहीं होता।

चेतना (समाधि) में मुझे अपने नाम-रूप की देह सहित जगत की non-consciousness की consciousness होती है। **'मैं'** हूँ लेकिन न मैं देह हूँ, न जगत हूँ। अर्थात् देह और जगत है लेकिन मैं देह और जगत नहीं हूँ। मेरे लिए जब देह होगी तो जगत भी होगा। देह रूप में मेरे एक के साथ अनेक हैं ही। एक (व्यष्टि), अनेक (समष्टि) के बिना हो ही नहीं सकता। यदि मैं व्यष्टि हूँ तो समष्टि भी हूँ। व्यष्टि-समष्टि में द्वैत नहीं, अद्वैत है। लेकिन अवचेतना में हुई भूल में जब मैं (जीवात्मा) ने एक नाम-रूप की देह को ही अपना स्वरूप मान लिया तो जो जगत प्रकट-प्रकट (बाह्य) और अप्रकट (आन्तरिक मन में) प्रकट हुआ, उसमें मुझ से भूल पर भूल यह हुई, कि मैं व्यक्ति रूप में अलग हूँ और जगत अलग है।

निद्रा की जड़ता में मेरे लिए 'कुछ नहीं' था। वस्तुतः मेरा स्वरूप यह 'कुछ नहीं' है, लेकिन 'कुछ नहीं' होने का मुझे आभास नहीं था। उस जड़ता की स्थिति में अपनी पहचान पा सकना सम्भव ही नहीं था। फिर मैं निद्रा से उठा तो स्वयं को नाम-रूप की अवचेतना में पहचाना तथा स्वयं को एक व्यक्ति मानते हुए जगत को स्वयं से पृथक् मान लिया। इस प्रकार मुझ से **भूल दर भूल** होती रही और मैं जन्मों-जन्मान्तरों में स्वयं अपनी ही पहचान की तलाश में दर-दर भटकने पर विवश हो गया। इस भूल दर भूल में 'कुछ नहीं' (जीवात्मा) 'सब कुछ' (देह सहित जगत के प्रपंच) की दलदल में फंसता, धंसता, फिसलता चला गया। भूल में भूल होते ही मेरी अपनी समष्टि जो मेरे लिए ही थी, मुझ व्यष्टि (देह रूप में 'मैं') के गले पड़ गई। संसार का यह मेला मेरे लिए तुरन्त स्वतः ही झमेला बन गया।

देह मेरे लिए थी और जगत सहित थी तथा जगत, देह के बिना नहीं था। स्वयं को अवचेतना में एक देह को मानते हुए और उस देह के साथ ही प्रकट जगत को पृथक् मानकर मेरे लिए जो हुआ-हुआ था, मैं वह सब कर्ता भाव से करने लगा। एक से अनेक में उलझ गया। प्रारब्ध, रोग-दोष, आधि-व्याधि,-उपाधि, वैर-वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष, भय, त्रास, मल, विक्षेप, आवरण की अन्तहीन श्रृंखला यहीं से शुरू हो गई। मेरा विशुद्ध आत्मस्वरूप क्रमशः

और-और आच्छादित होता रहा। लेकिन उस स्वरूप की सद्-स्मृति मेरी चेतना से लुप्त नहीं हुई। इसलिए ज्ञात-अज्ञात रूप से मैं साकार देह सहित जगत के 'एक-अनेक' में अपने सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति एवं वैराग से ओत-प्रोत आत्म-स्वरूप को खोजते हुए भटकने लगा। जब वह नहीं मिला तो अनेक से और अनेकानेक होने लगा। स्वयं में अजन्मा होते हुए भी पुनः पुनः जन्मता रहा और अजर-अमर होते हुए भी पुनः पुनः शैशव, बचपन, यौवन, वृद्धावस्था, मृतकावस्था के काल्पनिक काल-चक्र में भटकता रहा। यह मकड़जाल बढ़कर और भी घनीभूत होता रहा।

मैं **'देह सहित जगत'** रहित अपना **'एकान्त'** स्वरूप खो बैठा। एकान्त स्थिति को निद्रा की जड़ता में पाया नहीं जा सकता था। निद्रा से उठते ही अवचेतना में भूल हो गई, कि मैं देह हूँ। मैं एक से अनेक और अनेकानेक होने लगा। यह बिल्कुल विपरीत दिशा थी। देह सहित साकार दृश्यमान जगत के प्रपंच में अपने निराकार व अदृश्य स्वरूप की झलक पाना सम्भव नहीं था। भ्रम में और-और भ्रमित होते हुए अनेकानेक हो कर मैं स्वयं अनेक (नेकी रहित) हो गया तथा समस्त विकृतियों से ग्रसित हो गया। किसी जन्म में विशिष्ट कृपावश कोई सद् पुरुष मिला जिसने मुझे मेरी भूल से अवगत कराया। उसके सानिध्य व सद् श्रवण के बाद भी जन्मों-जन्मान्तरों के परिपक्व देहाध्यास के कारण मैं अपनी भूल स्वीकार नहीं कर पाता।

सद्गुरु कहता है, कि ''अवचेतना में तू 'एक' (देह) हुआ तो अनेक भी होगा ही। यह दूसरी बात है, तूने अनेक को अपने से पृथक् मान लिया। अब तू इसी एक (देह रूप) से एकान्त में आ, क्योंकि तू देह नहीं है और देह तेरी नहीं है। एकान्त तेरा वह स्वरूप है, जहाँ तू न एक देह है, न अनेक है। तेरा स्वरूप उस एकान्त में छिपा है, क्योंकि एकान्त स्वयं में अनेकान्त भी है। देहसहित जगत के प्रपंच की इस दलदल से बाहर होने का आभास 'एकान्त' में होगा।'' सद्गुरु कहता है, कि **'उत्तिष्ठ-जाग्रत !'** निद्रा में तू एक-अनेक नहीं था, लेकिन इस स्थिति का तुझे ज्ञान नहीं था। जड़ता में तूने देह सहित

जगत के प्रपंच की दलदल से बाहर होने की स्थिति के आनन्द का अनुभव नहीं किया। निद्रा से उठकर तू एक-अनेक की दलदल में पुनः भटकने लगता है। तो सोने से तुझे क्या लाभ हुआ। तू अवचेतना से जड़ता में गया और पुनः अवचेतना में आ गया। यह अवचेतना फिर तुझे निद्रा की जड़ता में ले जाएगी। इसलिए अब तू एकान्त में उस स्थिति का अनुभव कर, कि देह और जगत हो, लेकिन तू न देह हो न जगत हो। निद्रा में तेरी एक ऐसी मानसिक अवस्था स्वतः हुई अथवा निर्मित की गई, कि कुछ क्षणों के लिए तू अपनी अवचेतना में हुई भूल को ही भूल गया। भूल थी, लेकिन तू भूल गया। निद्रा से उठने में तुझसे भूल में भूल (मैं देह अलग हूँ, जगत पृथक् है) होती गई। मृत्यु चिर निद्रा है। पुनः जन्म-जन्मांतरों में तू भूला हुआ ही होगा। यह स्मृति भ्रमवती है। इसमें तू स्मृति भगवती (अपना विशुद्ध स्वरूप) ढूंढ रहा है।''

सद्गुरु कहता है, कि ''तू देह है, यह तेरी भूल है। इसे कितनी देर भूलेगा, जब तू निद्रा से उठेगा तो भूल ज्यों की त्यों रहेगी। इसलिए अब तू उठकर अपनी इस भूल को कुबूल कर और सद्गुरु कृपा से इस कुबूल (स्वीकृति) को सिद्ध कर। इसके लिए पहले तुझे वह 'देह' जिसे तूने जन्मों-जन्मान्तरों से अपने साथ लपेटा हुआ है, उसे सिद्ध करना होगा। पहले देख यह देह क्या है? यह देह-दर्शन ही तुझे आत्म-दर्शन में ले जाएगा। यह देह ही महापुराण है, जो आत्म-चिन्तन का द्वार है। फिर तुझे मालूम चलेगा, कि तू देह नहीं है; तू विशुद्ध जीवात्मा है। देह ही तुझे तेरा स्वरूप खोजकर देगी।'' कृपया एकाग्र करें, मैं पुनः सविस्तार वर्णन करूँगा।

देह के नाम-रूप की अवचेतना में आते ही दो प्रकार का जगत स्वतः प्रकट हो जाता है – प्रकट-प्रकट जो सम्मुख दृश्यमान होता है और दूसरा अप्रकट-प्रकट जगत जो ख्याल या मानस में रहता है। देह सहित यह प्रकट-प्रकट जगत और अप्रकट-प्रकट जगत नित-नूतन होता है। यहाँ देह के साथ तद्रूप जीव भ्रमित होकर अपने आनन्द की चमक खो बैठता है। निद्रा की जड़ता की स्थिति से थोड़ा बाहर आता है, तो अर्द्ध सुषुप्तावस्था

(Semi-sleep) की स्थिति में देह रूप में उठा सा होकर अवचेतना की सी स्थिति में स्वप्न देखता है। इस स्वप्न-सृष्टि का कोई सिर पैर नहीं होता, लेकिन इस सृष्टि का भी निर्माण, पालन और संहार होता है। जीवात्मा, जीव भाव में इसका अवलोकन करता है और इसकी देह पर आधारित सृष्टि में हर प्रकार से उसकी देह और जगत परस्पर पृथक् ही होते हैं। इसकी मानसिकता जड़-अवचेतनता की होती है। इष्ट कृपा से इस स्थिति को हमने **जड़तामयी अवचेतना** की संज्ञा दी है। इसमें जड़ता और अवचेतना दोनों होते हैं, लेकिन जीव चेतना से बहुत दूर होता है। इस स्थिति का दृष्टा, निर्माता, पालनकर्ता, संहारकर्ता और कारण स्वयं परमात्मा है। देह के साथ तद्‌रूपता, जीवात्मा को जीव कोटि में उतार देती है।

निद्रा से उठने पर नाम-रूप की अवचेतना में इसकी देह का प्रकाट्य होता है और तदनुसार, साथ-साथ स्वतः ही प्रकट और अप्रकट रूप से जगत का भी प्रकाट्य होता है। अवचेतना में (जीव) स्वयं को नाम-रूप की देह तो मान ही लेता है, जो बहुत बडी भूल है। जो जगत जैसा भी है, इसके साथ इसकी एक देह की अवचेतना में प्रकट हुआ है, इसके साथ ही चलता है और इसके साथ ही लय हो जाता है। उस जगत को अपने से पृथक् मानने से अवचेतना में जब इसकी देह सहित जगत का लय होता है, तो यह अवचेतना ही निद्रा रूपी जड़ता में रूपान्तरित हो जाती है। इस प्रकार अवचेतना का अन्त जड़ता में होता है। जड़ता से जड़ अवचेतना (स्वप्न) अथवा अवचेतना (तथाकथित जागृति की सृष्टि) का प्रस्फुटन होता है और पुनः अवचेतना का समाहन जड़ता में हो जाता है। यदि जीव स्वयं को नाम-रूप की देह के साथ पहचानते हुए उसी देह की अवचेतना में प्रकट जगत को स्वयं से भिन्न मानेगा तो यह अवचेतना, जड़ता में रूपान्तरित होगी ही। इस प्रकार जड़ता, जड़-अवचेतना, अवचेतना और जड़ता में ही युगों-युगान्तरों से विभिन्न जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित काल-चक्र में एक ही जीव भटक रहा है।

जड़ता में जब अवचेतना का अंश आता है उस अर्द्धसुषुप्तावस्था में

ऊट-पटांग स्वप्न आते हैं। उस समय अवचेतना, जड़ता से लिप्त रहती है। अवचेतना में जीव जब उठता है, तो प्रारब्ध, आधि, व्याधि, उपाधि, भय, त्रास, विक्षेप की अन्तहीन श्रंखला में स्वयं को पाता है। अज्ञानतावश, दुर्भाग्यवश अवचेतना में हुई भूल को ही भुला देना चाहता है। जैसे कबूतर, बिल्ली को देखकर आँखें बन्द कर लेता है। यह विविध दुःखों की श्रंखला से बचने के लिए साकार जगत की विविध विधाओं के नशे में अथवा शराब, अफीम आदि मादक द्रव्यों का सहारा ले कर जड़ सा हो जाना चाहता है। यह अवचेतना ज़डता में ही रूपान्तरित होती है। जड़ता को हटाने के लिए फिर अवचेतना में आता है। इस सबका प्रकटकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता भी ईश्वर ही है।

कभी अवचेतना में ही इसे अपनी इस भटकन से मुक्ति पाने की तीव्र जिज्ञासा हो जाती है, तो पारब्रह्म परमेश्वर सद्‌गुरु के रूप में प्रकट हो जाता है। वह सद्‌गुरु को अपनी स्थिति बताता है, कि ''प्रभु मैं धक्के खा रहा हूँ, जो कुछ दिन में पाता हूँ शाम को थक-थका कर खोना चाहता हूँ और जो कुछ पाया है, अगले दिन उससे अधिक पाना चाहता हूँ।'' सद्‌गुरु भक्ति द्वारा, ज्ञान-ध्यान द्वारा, प्राणायाम व विशिष्ट पूजा प्रकरणों द्वारा, उपदेश द्वारा इसे इसके स्वरूप की हल्की सी झलक दिखलाता है। अब इसकी अवचेतना को चेतना का स्पर्श मिलता है। **इस चेतन-अवचेतना (चेतनावचेतना) में इसका विवेक जाग्रत हो जाता है।** इसकी देह होती है, जगत भी होता है लेकिन चेतनता की झलक पा कर अवचेतना में हुई भूल को जीव स्वीकार कर लेता है। जब भूल कुबूल हो जाती है, तो धीरे -धीरे सद्‌गुरु कृपा से भूल समाप्त भी हो जाती है। विवेक बुद्धि से यह विचार करता है, कि ''मैं देह हूँ तो जगत स्वतः साथ-साथ, तदनुसार प्रकट हुआ है वह जगत भी मैं ही हूँ।'' चेतन अवचेतना के बाद समाधि इसकी चेतना की स्थिति है। उसे इस स्थिति का चस्का पड़ जाता है। यही आत्म दर्शन है। यहीं आत्मानुभूति हो जाती है। पहले देह मयी **'मैं'** अब चेतन-अवचेतना से चेतना में प्रवेश कर 'मैं मयी' देह हो जाती है। इन पाँचों स्थितियों ज़डता (गहन सुषुप्ति),

ज़डतामयी अवचेतना (स्वप्न सृष्टि), अवचेतना (तथाकथित जागृति की सृष्टि), चेतन-अवचेतना (सद्गुरु का सद्निर्देशन में किए जाने वाले प्रकरणों की सृष्टि) एवं चेतना (मैं मयी देह पर आधारित सृष्टि)) का महादृष्टा, निर्माण, पालन एवं संहारकर्ता मात्र ईश्वर है। किसी के हाथ में कुछ नहीं है। इस प्रकार सद्गुरु की कृपा से **'मैं'** जाग्रत हो जाता हूँ। मेरे मन में मानव-जीवन का अर्थ जानने की जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है।

अवचेतना न तो जड़ता है और न ही चेतना है। जड़ता से ऊपर और चेतना से निम्न स्थिति अवचेतना है। जो अवचेतना में है, वह भ्रम है और भ्रम अवचेतना में ही है। यह अवचेतना का सद् है। जड़ता में कोई भ्रम नहीं है, चेतना में कोई भ्रम नहीं है। रज्जू में सर्प का भ्रम वहाँ होता है, जहाँ न पूर्ण प्रकाश हो और न घुप्प अन्धकार हो। प्रकाश और अन्धकार के बीच की स्थिति (semi प्रकाश या semi अन्धकार) में ही रस्सी में सर्प का भ्रम होगा। पूर्ण प्रकाश में रस्सी या सर्प स्पष्ट दिखाई देगा। पूर्ण अन्धकार में रस्सी या सर्प कुछ भी बिल्कुल दिखाई ही नहीं देगा। इसलिए दोनों स्थितियों में भ्रम नहीं होगा। जहाँ पूर्ण प्रकाश भी न हो और पूर्ण अन्धकार भी न हो, भ्रम वहीं होगा। भ्रम का ज्ञान होगा तो भ्रम दूर हो सकता है। यदि यह ज्ञान हो जाए, कि मैं अपना वास्तविक स्वरूप खो चुका हूँ और जो मैं नाम रूप की देह से स्वयं को पहचान रहा हूँ, यह अवचेतना है व मेरा भ्रम है, तो भ्रम का निवारण हो सकता है। यह देह व जगत मैं नहीं हूँ, तो मैं कौन हूँ? यह न मैं जानता हूँ और न अपनी बुद्धि से जान सकता हूँ। मेरी जो यथार्थ देह है, वह जन्म-मृत्यु में बँधी देह नहीं है।

अवचेतना में हुए एक भ्रम से अपनी देह का यथार्थ, अपना स्वरूप एवं ईश्वर के श्री चरणों की धूलि का अधिकार गवाँ कर मैं अपने विषय में, ईश्वर के विषय में और देह के विषय में पूर्णतः भ्रमित हूँ। फिर मेरे किसी कार्य का महात्म्य ही क्या है? कर्म की परिभाषा जानने के लिए हमें भ्रमित अवस्था में हो रहे अथवा किए जा रहे कर्मों का महात्म्य पूर्णतः छोडना होगा। ''हे प्रभु! इतनी उत्कृष्ट मानव-देह क्या आपने इस कर्म के लिए दी है जो मेरे बिना भी

हो सकता है। जो मैं कर रहा हूँ, वह सब तो मेरे बिना भी होता था और देहावसान के बाद अथवा यदि मैं जीते जी छोड़ दूँ तो भी होता रहेगा, तो मेरा कर्म क्या है? जिसको मैं अपना कर्म समझ रहा हूँ, उसका अर्थ क्या है।'' अर्थ जानने की यह उत्कण्ठा आपके द्वारा हो रहे या किये जा चुके अथवा किए जा रहे समस्त कर्मों को निरर्थ कर देगी।

सर्वप्रथम जो हो चुका है, वह निरर्थ लगने लगे, जो अब आपके द्वारा हो रहा है और जो आगे होगा, वह भी व्यर्थ लगने लगे। तभी 'अर्थ' जानने की उत्कण्ठा जाग्रत होगी, इससे पहले नहीं होगी। आप जो भी हैं, जो थे और बन सकते हैं, सब करना, पाना, खोना और होना जब अर्थहीन लगने लगता है, तभी आप वास्तविक **जीवनार्थ** की ओर प्रेरित होते हैं। साथ ही आप जान जाएँ, कि अपनी उत्कृष्टतम शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियों से जो भी पाया है, आप उसका अर्थ जानने में असमर्थ हैं। you must feel your insufficiency in sufficiency and you must declare yourself insufficient in your super most extream efficiency. सक्षमता में अक्षमता की यह अनुभूति जब बेचैन कर देती है, तो दैवीय अधिनियमानुसार वह पारब्रह्म परमेश्वर सद्गुरु (साकार नाम-रूप में) प्रकट हो जाता है।

जिज्ञासु सद्गुरु से पूछता है, कि इस सब मायिक साकार जगत का अर्थ क्या है? तो सद्गुरु कहता है, कि ''तू जो अर्थ जानने का इच्छुक होकर मेरी शरण में आ गया है, यही तेरे जीवन की सार्थकता है। अर्थ का अर्थ (अर्थार्थ) ही तेरे जीवन का यथार्थ है। अब तू सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दे। यदि तेरे लिए, तेरे द्वारा हुए और किए गए कृत्यों का महत्त्व वास्तव में समाप्त हो चुका है, वे तुझे निरर्थ लगने लगे हैं और तू उनका अर्थ जानना चाहता है, तो यह जो तू मेरी शरण में आ गया है, यही तेरे जीवन के अर्थ का अर्थ है। तू अर्थार्थी है, तू यथार्थी है, तू अन्यार्थी हो ही नहीं सकता। अब तेरी सद्गति ही होगी''

''सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणंव्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्योः मोक्षिष्यामि मा शुचः।।''

सद्गति का आरम्भ 'अर्थ' से होता है। जिसने अर्थ को छुआ नहीं उसकी **'सद्'** के अतिरिक्त ही गति है। वह निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित व जीव-सृष्टि के अधोगति युक्त काल-चक्र में अवचेतनावश भ्रमित हुआ घूमता रहता है। जिसने **'अर्थ'** को छू लिया, सद्गुरु उसको अपना ले लेता है। वह अर्थ से धर्म, काम और मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। यही मानव-जीवन की सार्थकता है। तब नाम-रूप की देह की अवचेतना ही चेतना में प्रविष्टि दिला देती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(25 नवम्बर एवं 8 दिसम्बर, 2008 एवं 15.16 मई 2009)

चेतनावचेतन

(भाग दो)

भाव समूह को स्वभाव कहते हैं। मानव-मन स्वभाव का केन्द्र है। यह 'स्व' भाव है, इसलिए इसे बदला नहीं जा सकता। जन्मों-जन्मान्तरों से देह के साथ तद्रूपता मेरा (जीव का) स्वभाव है। स्वभाव वश देह के साथ तद्रूपता, अवचेतना में मेरा दुर्भाव एवं भ्रम है। जैसा भ्रम होगा वैसा भ्रम में होगा। जो भ्रम में होगा उसमें हम लिप्त हो जाएँगे। मैं (जीवात्मा) चेतन व निराकार हूँ और देह अवचेतना में साकार है। जब मैं (जीवात्मा) ने साकार देह के साथ स्वयं को पहचाना तो मैं चेतन से **अवचेतन सा** हो गया और जीव-सृष्टि में उतर आया। चेतन कभी अवचेतन हो ही नहीं सकता। लेकिन अवचेतन सा हो कर भ्रम हुआ और भ्रम में जो भी हुआ वह अवचेतना में हुआ। इसी अवचेतना के भ्रम में जो 'देह सहित जगत' है ही नहीं, उसका आभास सा होने लगा। काल-बन्धन, कर्म-बन्धन, प्रारब्ध, आधि-व्याधि, उपाधि, जरा, जन्म-मृत्यु, रोग, दुःख-सुख, पाप-पुण्य, वैर-वैमनस्य, राग-द्वेष, की अन्तहीन श्रंखला यहीं से शुरू हो गई। एक भ्रम ने इतना कुछ कर दिया। वहाँ हम फँस गए।

सद्गुरु भ्रम को भ्रम से निकालता है। काँटे को निकालने के लिए कांटा या कांटे जैसी कोई वस्तु चाहिए। काँटा निकल जाए तो फेंक दिया जाता है। विष को निकालने के लिए विष चाहिए। अमृत पिया हो तो विष का असर नहीं होगा, लेकिन अगर विष चढ़ा है, तो उसके उन्मूलन के लिए विष चाहिए। घातक को मारने के लिए मारक चाहिए। तद्रूपता को नष्ट करने

के लिए तद्‌रूपता चाहिए। धारणा को हटाने के लिए अवधारणा चाहिए। सद्‌गुरु कहता है, कि "तू कल्पनाओं में भ्रमित है। तूने अपना जन्म होते नहीं देखा और दूसरों को पैदा होते देख कर अपने पैदा होने की कल्पना कर ली। तूने या किसी ने भी स्वयं को मरते नहीं देखा है और न देख पाने की सम्भावना है। लेकिन तू मृत्यु से भयभीत है। तूने अपने को सोया हुआ भी नही देखा, लेकिन तू कहता है कि मैं सोया था। सोने से पहले रात्रि 11 बजे जब तू सोने लगा तो उठा हुआ था और जब सुबह 5 बजे तू उठा, तो उठा हुआ ही है। इसलिए तू सोया ही नहीं। तू उठे हुए से ही उठा है। सुबह 5 बजे जो तू उठा है वह वो नहीं है, जो रात्रि 11 बजे सोने से पहले उठा हुआ था। बीच के समय में दिन बदलने, मौसम बदलने में जादू और चमत्कार हो गया। तूने यह बीच का समय नहीं देखा इसलिए तुझे लगता है, कि मैं वही हूँ। इसी प्रकार तूने अपने को मरते भी नहीं देखना। देह के साथ तद्‌रूपता सी में तू काल्पनिक स्थितियों से तद्‌रूप सा हो गया है। मृत्यु के बाद तेरी भस्मी भी तो बनेगी। अब तू उसके साथ भी तद्‌रूप हो जा। जैसे तूने मृत्यु को धारण किया है उसी प्रकार भस्मी को भी धारण कर।"

सद्‌गुरु स्वभाव को स्वभाव से और तद्‌रूपता को तद्‌रूपता से दूर करता है। देह के साथ तद्‌रूपता विकृति है। भस्मी के साथ तद्‌रूपता से यह **विकृति** ही **विरक्ति** में रूपान्तरित हो जाती है। चेतन, अवचेतन नहीं हो सकता। जीवात्मा को अवचेतना सी में, देह **सी** के साथ तद्‌रूपता **सी** हुई। देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में मेरी तद्‌रूपता सी में मुझे कर्तापन एवं कर्म का अहंकार हो गया। अतः अवचेतना **सी** के कारण जो लक्षण प्रकट हुए वे लक्षण **से** नहीं थे परन्तु वास्तविक लक्षण थे। जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, पाप-पुण्य और अनन्त दुःखों की श्रंखला पक्की हुई। कोई वास्तव में फँसा हो तो उसे निकालना सहज होता है। सद्‌गुरु इस देह के साथ तद्‌रूपता सी को 'भस्मी' की तद्‌रूपता से दूर कर देता है।

नाम-रूप की देह काल से बँधी है। इससे स्वयं को पहचानना मेरा भ्रम था, इसलिए कर्म-बन्धन और काल-बन्धन दोनों मानव-देह में मेरे होश

सम्भालने से होश जाने तक के मध्य वाले खण्ड में हुए। मैं (जीवात्मा) किसी एक नाम-रूप से बँधा नहीं है। नाम-रूप का बन्धन न जड़ता में है और न चेतना में है। मात्र अवचेतना में है। दृष्टि दोष न हो और पूर्ण प्रकाशित कक्ष हो, वहाँ सब कुछ स्पष्ट दिखेगा और भ्रम नहीं होगा। घुप्प अन्धकार में जब कुछ दिखाई ही नहीं देगा तो वहाँ भी कोई भ्रम नहीं होगा। जहाँ न अन्धकार है न प्रकाश है, वहाँ भ्रम (रज्जू में सर्प) का भ्रम हो सकता है। अतः भ्रम, मात्र अवचेतना में है और अवचेतना में जो है, सब भ्रम ही है। अवचेतना में भ्रम होने का **'ज्ञान'** चेतना में ही होगा। जड़ता और चेतना के बीच की कड़ी अवचेतना है। मुझे अवचेतना में भ्रम हुआ। मेरा ब्रह्ममय स्वरूप पूर्णतः आवृत व आच्छादित हो चुका है। मैं उससे बाहर नहीं आ पा रहा हूँ। मुझे पक्का वहम हो चुका है, कि मैं देह हूँ। देह के साथ तद्रूपता सी में हुआ 'भ्रम' मेरा स्वभाव बन चुका है। जैसे किसी को रोगी होने का भ्रम हो और डाक्टर कहे तुम बिल्कुल ठीक हो, तो उसे वह डाक्टर ठीक नहीं लगेगा। डाक्टर का यह कथन, कि तुझे रोग नहीं है, रोग का वहम है, उसके रोग में वृद्धि करेगा। कुशल चिकित्सक उसके रोगी होने के भाव को महत्त्व देते हुए विशिष्टतम इलाज करने का भ्रम फैलाएगा।

सद्गुरु भी भ्रम का इलाज भ्रम से करता है। मुझे अपने देह होने का भ्रम तब हुआ, जब मैं न जड़ था न चेतन था। मैं अवचेतना में था। जड़ और चेतन में परस्पर कोई एकरूपता नहीं हो सकती, लेकिन दोनों स्थितियों में भ्रम नहीं था। सद्गुरु इस भ्रम का विशेषज्ञ है। वह दो प्रकार के भ्रम का प्रयोग करता है, एक जड़ता प्रधान भ्रम और दूसरा चेतना प्रधान भ्रम। पुराणों की कथाएँ, भगवान के अवतारों की रसपूर्ण विविध लीलाएँ चेतना प्रधान भ्रम के अन्तर्गत आती हैं। जब हम अपनी देह के नामरूप की अवचेतना में संसार के सम्बन्धों, आर्थिक स्थितियों, देह के रोगों, विविध धर्मों के पारस्परिक वैमनस्य आदि में उलझ जाते हैं, तो यह जड़ता प्रधान भ्रम है। सद्गुरु इस जड़ता प्रधान भ्रम को पौराणिक कथाओं, यज्ञ-हवन, नाम-जाप, तीर्थ-यात्रा, भजन-कीर्तन, विविध देवी देवताओं के पूजा अनुष्ठान आदि

द्वारा चेतना प्रधान भ्रम में रूपान्तरित कर देता है। ये पौराणिक कथाएँ काल्पनिक कहानियाँ नहीं हैं। रामचरित मानस, श्रीमद् भागवत आदि की कथाओं में जब आनन्द आने लगता है, तो हम भगवान की लीलाओं के साथ जुड़ जाते हैं। जब उनसे जुड़ जाते हैं तो भ्रम हट जाता है। देह में आपके विचारों व धारणाओं में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो जाता है। हम इनके माध्यम से इनका हिस्सा बन जाते हैं और हमारे नाम-रूप की अवचेतना में कल्पित गाथा (हो**गा**-हुआ **था**) समाप्त होने लगती है। सद्गुरु द्वारा निर्देशित पाठ-पूजा, सेवा, ध्यान, चिन्तन आदि में लगने से जड़ता प्रधान भ्रम, चेतना प्रधान भ्रम में रूपान्तरित हो जाता है। धीरे-धीरे जगत (सन्तान, पति-पत्नी, प्रौपर्टी, पद, प्रतिष्ठा आदि) की लिप्तता चेतना प्रधान भ्रम से दूर होनी शुरू हो जाती है। सद् के साथ जुड़ कर वह असद् भी सदासद् (सद्+असद्) बन जाता है।

दृश्य और दृष्टि साकार की है, लेकिन दृष्टा और दृष्टिकोण निराकार है। यह दृष्टिकोण असम्यक् तब हुआ, जब दृष्टा साकार हो कर देखने लगा। यदि दृष्टा साकार है तो दृष्टिकोण, दृष्टि और दृश्य सब कुछ भ्रममय एवं दोषपूर्ण ही होगा। एक ही दृश्य को देखकर एक दिन प्रसन्नता होती है, दूसरे दिन मूड खराब हो जाता है। Consciousness का अर्थ है confusion. जब मैं देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में तद्रूप सा होता हूँ, तो भ्रम होता है। क्योंकि देह मेरे साथ तद्रूप नहीं होती। जब मैं तद्रूप सा हुआ तो मैं अवचेतना में था और मुझे भ्रम हुआ। जब मुझे भ्रम हुआ तो मैं अवचेतना में था। अवचेतना में भ्रम ही होता है, यह दृष्टि मुझे चेतना में आकर मिली। मैं अवचेतना में हूँ इसका ज्ञान मुझे चेतना में आकर हुआ। जब मैंने **'भ्रम'** देखकर स्वयं को देखा, तो मुझे ज्ञात हुआ कि मैं अवचेतना में हूँ।

मैं अवचेतन हुआ तो भ्रमित अवश्य हूँगा, लेकिन यदि मैंने पहले भ्रम को देख लिया, कि यह भ्रम है तो मैं चेतना से अपनी अवचेतना का दृष्टा बन जाता हूँ। जब यह ज्ञान हो जाए, कि यह भ्रम है तो इसका अर्थ है कि मेरे लिए वह भ्रम नहीं रहा। पहले अवचेतना में जो देख रहा था वह भ्रम था, लेकिन मुझे ज्ञान नहीं था, कि वह भ्रम है। भ्रम का ज्ञान होना ही चेतन

स्थिति है। पहला भ्रम जड़तापूर्ण था और भ्रम का ज्ञान होने पर देखा जाने वाला भ्रम चेतनापूर्ण होगा। देह मेरे साथ तद्रूप तब होगी, जब देह चेतनामयी होगी।

'मैं मयी' देह की यह मान्यता परिपक्व हो जाती है, कि यदि मैं देह हूँ तो समय-समय पर इसके साथ प्रकट जगत भी 'मैं' ही हूँ और अपने विशुद्ध स्वरूप में न मैं देह हूँ न जगत हूँ। पहले 'मैं' देहमयी थी, वह देह अभाव में ही रहती है। यह अभाव भी भ्रम है। जब मैंने अनुभव कर लिया, कि यह सारा भ्रम है, क्योंकि मैं देह के साथ अवचेतना में तद्रूप सा हूँ। मैं तो निराकार जीवात्मा हूँ, मैं साकार देह के साथ तद्रूप हो ही नहीं सकता। फिर मेरे लिए साकार देह सहित समस्त दृश्य भी चेतनामय हो जाता है। चेतन स्थिति से जब मैं 'भ्रम' का दृष्टा बनता हूँ, तो देह का तनिक अवलम्बन मात्र लेकर उसका रसास्वादन करता हूँ।

जड़तामय भ्रम और चेतनामय भ्रम दोनों भ्रम हैं, लेकिन दोनों बिल्कुल पृथक् हैं। मैं अवचेतना में हूँ, तो भ्रम ही भ्रम है। यह जड़तामय भ्रम है। मुझे इसलिए भ्रम है क्योंकि मैं अवचेतना में हूँ, यह चेतनामय भ्रम है। नाम-रूप में होते हुए भी मैं चेतनामय हो जाता हूँ। वह देह, विदेह देह होती है। जब यह ज्ञान हो गया, कि भ्रम अवचेतना में है तो वही अवचेतना, चेतना में रूपान्तरित हो जाती है। चेतन 'मैं' और अवचेतन 'देह' दोनों परस्पर मिलकर चेतनावचेतन (चेतन+अवचेतन) हो जाते है। इस प्रकार सद्गुरु भ्रम का भ्रम से उन्मूलन करता है।

माया में देह सहित साकार जगत प्रकट होता है और इसका सद् परिवर्तनशीलता है। अपने चेतन व अपरिवर्तनीय स्वरूप से मैं (जीवात्मा) इसके नित नूतन परिवर्तन का रसास्वादन कर सकता हूँ। सद्गुरु कहता है, कि ''देह की परिवर्तनशीलता के क्रम में परिवर्तन के एवज़ में प्रकट देह के ही एकमात्र अपरिवर्तनीय स्वरूप (भस्मी) से जब तू स्वयं को पहचानेगा, तो तुझे तेरे अपरिवर्तनीय स्वरूप की अनुभूति हो जायेगी। नाम-रूप की देह के साथ तनिक, भ्रमित होकर किंचित तदरूप सा होते हुए अवलम्ब मात्र पर्याप्त

है, नहीं तो तू साकार जगत की विविध विधाओं और कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की मायिक सृष्टि का रसास्वादन नहीं कर पाएगा। देह के परिवर्तनों से घबरा जाए तो तेरी देह का एक अपरिवर्तनीय स्वरूप भी है। वह है देह का निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य '**भस्मी**'। तू नित्य कुछ क्षण उसे देख लेना, फिर तुझे परिवर्तनों का आनन्द आने लगेगा।''

देह सबकी पृथक्-पृथक् है, लेकिन **'मैं'** एक ही है। जब तक **'मैं'** अपनी देह के साथ 'मैं' नहीं लगा सकता, तब तक कोई साकार देह मैं नहीं लगा सकती। यह मेरी 'मैं' और मेरी देह का विस्तार है। जब एक देह के साथ एक मैं लगाई तो देह अनेकों नाम-रूपों में प्रकट हुई और **'मैं'** एक ही रही। न केवल देहें, समस्त प्रकृति अपने विभिन्न स्वरूपों के साथ तब प्रकट हुई, जब मैं (जीवात्मा) ने देह के साथ **'मैं'** लगाई। साकार में सब कुछ मेरे लिये जैसा मैं देखना चाह रहा हूँ, नाम-रूप की देह की अवचेतना में आते ही प्रकट होता रहता है।

साकार अनेक हैं और निराकार एक ही है। मैं एक है और असंख्य व अनेकानेक देहों की **भस्मी** एक ही है। 'मैं' प्रारम्भ है और भस्मी अन्तान्त है। प्रारम्भ में **'मैं'** न लगे तो मेरे लिये न देह है न जगत है। **'मैं'** एक और भस्मी एक, मध्य में मुझ एक जीवात्मा की देहरूप में अनेकता है और अनेकों में **'मैं'** एक हूँ। अनेक हैं तो मैं एक हूँ ही। जिस विधा में 'मैं' उतरता हूँ, मेरा जगत उसी विधा का होता है। प्रभु की इस अनेकता का अपना सौन्दर्य है। देह के साथ क्षणिक तद्‌रूपता के बिना इन साकार बहुरंगी, विविध विधाओं का रसास्वादन सम्भव ही नहीं है। हर परिवर्तन मेरे अपने अपरिवर्तनीय अभावमय जीवात्मा-स्वरूप का आनन्दमय प्रकाट्‌य है। मैं स्वयं चेतन हूँ। मैं (जीवात्मा) एक ही हूँ और निराकार हूँ। सच्चिदानन्द एवं सहज सुख राशि हूँ। सर्वोत्कृष्ट साकार कृति मुझे दी गई मानव देह है। देह सहित जगत प्रकाट्‌य है और मेरे लिए मेरे इष्ट का रचाया खेल है। यदि स्वप्न में यह ज्ञान हो जाए, कि यह स्वप्न है, तो स्वप्न की वह देह यथार्थ देह है। यदि स्वप्न में यह ज्ञान न हो कि यह स्वप्न है, तो स्वप्न की वह देह अन्यार्थ है।

स्वप्न से उठने के बाद स्वप्न का वर्णन करते समय भी मुझे ज्ञान नहीं होता, कि मैं अब वो स्वप्न वाला व्यक्ति नहीं हूँ। मैं स्वप्न की देह के दुःखों और सुखों से पूर्ण मानसिकता को काफी देर तक ढोता रहता हूँ। स्वप्न की देह द्वारा हुए कर्मों के विषय में भी सोचता हूँ, कि मुझसे पाप हुआ या पुण्य हुआ। स्वप्न का सद् यह है, कि यह स्वप्न है, जो निद्रा में उभरा, कुछ देर चला और निद्रा में ही समाहित हो गया। जिसमें, मैं स्वप्न का वर्णन कर रहा हूँ वह भी स्वप्न है। इस सद् में सुफल ही सुफल एवं आनन्द ही आनन्द है।

सद्गुरु का सान्निध्य एवं उसके श्री मुख से निःसृत ब्रह्म शब्दों का श्रवण जीवन से जड़तामय भ्रम का उन्मूलन कर देता है। हमें जीवन का आनन्द आने लगता है। सद्गुरु साकार दृश्यों द्वारा हमारे भीतर के दृष्टा को निराकार स्थिति में ले जाता है। सद्गुरु दृश्यों से दृष्टा भाव को बदल देता है। श्रीमद् भागवद् महापुराण में सद्गुरु शुकदेव जी ने लगातार सात दिनों तक विष्णु भगवान के विभिन्न अवतारों तथा श्री कृष्ण की लीलाओं के विविध दृश्य परीक्षित के सम्मुख रखे। इन पौराणिक कथाओं के श्रवण से परीक्षित का देह का मोह छूट गया। परीक्षित को भृंगी ऋषि के श्रापवश सात दिन बाद मरना तो था ही। लेकिन भगवान की लीला कथाओं के श्रवण से परीक्षित का देह भाव विभिन्न स्वरूपों (राजा, पुत्र, पिता, पति, शिष्य आदि) सहित निर्मूल हो गया। उसके भीतर का दृष्टा, देह में होते हुए भी विदेह हो गया और परीक्षित को जीते जी मोक्ष मिल गया।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(18 – 19 मई 2009)

लगाव-अलगाव

सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड जो दृश्यमान हैं, वे सब ईश्वर की माया है। इस माया में उलझन का एकमात्र कारण यह है, कि हम मायापति (ईश्वर) को भूल जाते हैं। माया तो महतारी है और विविध स्वरूपों में समस्त साकार प्रपंच की अधिष्ठात्री एवं स्वामिनी है। ईश्वर के सद्, चेतन एवं आनन्द को रूप दे कर साकार में प्रकट करती है। प्रभु की आज्ञा से एवं आनन्द में, समस्त प्रपंच का प्रकाट्य, संशोधन, परिवर्तन, परिवर्द्धन और पालन करती हुई संहार करती है। आनन्द अदृश्य है एवं उसका माया रूप में प्रकाट्य दृश्यमान होता है। इस समस्त साकार मायिक प्रपंच का एकमात्र व सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि एक मानव-देह है, जिससे प्रभु ने, मुझ जीवात्मा को नवाज़ा है। यह देह स्वयं में कल्पनातीत एवं अनिर्वचनीय उपलब्धि है। इसके एक-एक रोम, एक-एक धड़कन, एक-एक श्वास एवं प्रत्येक स्थिति, अवस्था, परिस्थिति, समय व स्थान का स्वामी प्रभु ही है। एक मानव-देह समस्त प्रपंच का आधार है। इसके जन्म और मृत्यु का काल है और इसका हर परिवर्तन पूर्णतः काल के अधीन है। समय, स्थान व स्थिति—काल की तीन विधाएँ हैं, यह काल स्वयं में कालेश्वर द्वारा निर्देशित व संचालित है।

जब मैं (जीवात्मा) भ्रमवश देह के साथ तद्रूप सा हो जाता हूँ, तो वहाँ अहं उत्पन्न हो जाता है। यह अहं मेरे अभाव, असमर्थता एवं आसक्ति का द्योतक है। अहंकार एवं ममकार दोनों अभाव में होते हैं। समस्त मायिक प्रपंच चेतना से, आनन्द में प्रकट हुआ **'सद्'** है। सच्चिदानन्द

परमात्मा की सम्पूर्ण साकार संरचना, पालन एवं संहार आनन्द में ही होता है। इस खेल का प्रारम्भ, मध्य एवं अन्त आनन्द में, आनन्द द्वारा, आनन्द के लिए ही है। जीवात्मा (मैं) परमात्मा का मानस पुत्र है। जब अज्ञानवश मैं स्वयं को सम्पूर्ण साकार मायिक जगत के प्रपंच की प्रतिनिधि देह के साथ पहचानता हूँ, तो मेरी चेतना का अवचेतना में पतन हो जाता है। **मैं** (जीवात्मा) 'अभावमय' था, लेकिन अवचेतनावश '**अभाव में**' हो जाता हूँ। अभाव में होकर भी अपनी अभावमयता की स्मृति रहती ही है। अपने उस अभावमय स्वरूप को पाने के लिए आजीवन ये देह से, देह द्वारा और देह के लिए जन्मों-जन्मान्तरों में धन, सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा, नाम-यश और न जाने क्या-क्या एकत्र करता रहता है ! इसको कभी सन्तुष्टि नहीं मिलती, क्योंकि मूलतः यह अभाव में ही रहता है और अभावमय नहीं हो पाता।

जैसे ही जीवात्मा स्वयं को समस्त प्रपंच की प्रतिनिधि एवं संघनित रूप देह के साथ नाम-रूप में पहचानता है, तो स्वतः, तुरन्त व साथ-साथ उस समय की मानसिक स्थिति के अनुसार जगत के प्रपंच का प्रकाट्य होता है। यह प्रकाट्य दो प्रकार का होता है—एक प्रकट-प्रकाट्य, जो दृश्यमान होता है। इसे हम अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अधिगृहीत कर सकते हैं। दूसरा अप्रकट-प्रकाट्य, जो अदृश्य रहता है और हमारे दिल-दिमाग में भूत, भविष्य एवं वर्तमान के ख्यालों, विचारों, कल्पनाओं, योजनाओं, परियोजनाओं आदि के रूप में उभरता है। यह प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट प्रपंच, नित्य नवीन होता है। स्वयं को देह मानना जीवात्मा की अवचेतना में हुई भूल है। इस भूल के साथ एक और भूल (भूल पर भूल) होती ही है, कि जगत जो उस देह के साथ ही प्रकट हुआ था, वह पृथक् लगने लगा। अर्थात् देह के साथ लगाव होने से जगत से स्वतः अलगाव हो गया। धीरे-धीरे देह से हुआ लगाव जगत से हुए अलगाव में कैंसर की तरह फैलने लगा। मेरी चेतना तुरन्त अवचेतना में रूपान्तरित हो गई। इसमें मैं अपनी निराकारता भूल गया। देह सहित जगत प्रपंच है, चाहे वह प्रकट-प्रकट हो चाहे अप्रकट-प्रकट हो। जितना मैं देह से लगाव करता

रहा उतना ही जगत से मेरा अलगाव होता रहा। प्रकट रूप से प्रकट जगत मुझे प्रपंच दिखा रहा था, साथ ही साथ अप्रकट रूप से प्रकट जगत मुझे भीतर ही भीतर खा रहा था एवं नोच रहा था। यह अप्रकट रूप से प्रकट जगत मुझे अपने स्वरूप का चिन्तन नहीं करने देता एवं मुझे एकान्त में नहीं जाने देता।

मैं सविस्तार वर्णन करूँगा, कृपया एकाग्र करें। एक दिन **था** जब मेरी देह बीज (भ्रूणावस्था) रूप में माँ के गर्भ में भी पदार्पित नहीं हुई थी और एक दिन **होगा** जब यह देह नहीं होगी। तब देह रूप में मेरा कुछ नहीं रहेगा। तो देह रूप में मेरे होने का अर्थ ही क्या है और यह देह है, तो क्यों है ? यह जिज्ञासा देह के स्रोत एवं देह के सारे प्रकरणों को कम्पित कर देगी। अतीत से अतीत के पार (अतीत्यातीत) देह ले जाएगी और भविष्य से भविष्य के पार (भविष्यातीत) भी देह ही करेगी। इस प्रकार मैं स्वतः ही वर्तमानातीत (अकाल) हो जाऊँगा। देह में हर वर्तमान के साथ भिन्न-भिन्न एक अथवा अनेक अतीत और भविष्य होते हैं। ऐसा कोई वर्तमान नहीं है, जो भूत और भविष्य से रहित हो। हर वर्तमान भूत और भविष्य की सापेक्षता में होता है। वर्तमान कभी भविष्य था और वर्तमान ही अतीत हो जाएगा। देह थी नहीं और देह होगी नहीं। ''मैं था, मैं हूँ और मैं रहूँगा'' यह वक्तव्य मैं देह की सापेक्षता में ही देता हूँ। मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ और मैं (जीवात्मा) अतीत, भविष्य, वर्तमान सबसे परे, अकाल हूँ। 'मैं' (जीवात्मा जो हूँ, जो हूँ और जो हूँ) ने देह जो थी नहीं और रहेगी नहीं उसके साथ लगाव किया। न केवल लगाव किया बल्कि अधिपत्य (देह मेरी है) और अध्यास (मैं देह हूँ) कर लिया।

देह के साथ लगाव और जगत के साथ अलगाव के उपरान्त मुझे समस्त जगत के अलगाव के कुछ अंश में लगाव हुआ। 'मैं' एक था और जगत अनेक, यद्यपि एक सहित अनेक का प्राकट्य एक की वजह से ही अवचेतना में हुआ। लेकिन एक देह के साथ अवचेतना में लगाव के कारण प्रकट जगत से जो अलगाव हुआ, उस अलगाव के कुछ अंश में मुझे

लगाव हो गया। ये मेरे माँ-बाप हैं, ये बेटा-बेटी, मौसी, चाची, मित्र, शत्रु, भाई, बहन, लडकी-दामाद, बहू, ससुर, बॉस, घर, जमीन, देश, धर्म, कर्म आदि-आदि हैं। अलगाव में लगाव होने से अलगाव परिपुष्ट हो गया। मैं यह हूँ, मैं यह नहीं हूँ। मैं ब्राह्मण हूँ, वह शूद्र है। मेरा पद ऊँचा है, उसका नीचा है। मेरा आर्थिक स्तर बहुत ऊँचा है, वह गरीब है। यह मेरा देश है, वह विदेश है। यह मेरी संस्था है, जो सबकी भलाई में लगी हुई है। ये हमारी प्रतिभाएँ हैं, हम डाक्टर हैं, हम फिल्म बनाते हैं, हम कलाकार हैं, आदि-आदि। इस प्रकार धर्म और ईश्वर के नाम पर भी अलगाव हो गया। बेगानों को जब अपना बनाया, तो कई अपने बेगाने हो गए और सब कुछ ऊटपटांग हो गया। प्रपंच में प्रपंच उभरने लगा। इस प्रकार जहाँ अलगाव में लगाव हुआ तो शेष अलगाव परिपुष्ट हो गया। देह के लगाव के साथ जगत के अलगाव में लगाव होने से लगाव पर लगाव हुआ और लगाव भी परिपुष्ट हो गया। अलगाव परिपुष्ट हो कर मेरा प्रतिरोधी बन गया और लगाव परिपुष्ट हो कर मेरा कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व बन गया। इसलिए देह मुझ से कुपित हो गई और तद्विपरीत हो गई। परिणामतः, रोग-दोष, वैर-वैमनस्य, प्रेम-घृणा, स्पर्धा, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध आदि भाव मेरे मानस में उद्वेलित होने लगे और धीरे धीरे ये भाव, मेरा स्वभाव बन गए।

भौतिक जगत से अध्यात्म में उतरने के लिए भौतिक जगत की साकार विधाओं का मन्थन करना होता है। दूध के कण-कण में जिस प्रकार घी छिपा है उसी प्रकार दृश्यमान मायिक जगत के कण-कण में दिव्यता छिपी हुई है। मन्थन द्वारा दूध से घी प्रकट किया जा सकता है और प्रकट होने के बाद प्रकट घी का फिर मन्थन नहीं होता। घी, मन्थनातीत होने के साथ जिस दूध या दही से प्रकट हुआ है, उससे भी अतीत हो जाता है। दूध से मन्थन के उपरान्त प्रकट घी कभी दूध नहीं हो सकता और दूध में मिलाया भी नहीं जा सकता। दूध से घी निकलता है लेकिन दूध से बाती नहीं जलती। ज्योति, घी से ही जलती है। दूध में घी है, लेकिन घी में दूध नहीं

है। दूध की अमूल्यता घी की वजह से है। यही प्रपंच और अप्रपंच का भेद है। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड के प्रपंच में जो भी खेल है, वह पंच-महाभूतों के संगम से निर्मित है और संहार के समय इसका विलय भी पंच-महाभूतों में हो जाता है। जैसे सिनेमाघर में हम फिल्म देखते हैं, तो जो कुछ भी पर्दे पर साकार दृश्य प्रकट होते हैं उनके पीछे एक निराकार में Recorded Reel होती है। रील में फिल्म Recorded है, लेकिन अप्रकट है। उसी की साकार प्रस्तुति पर्दे पर होती है। इसी प्रकार सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का पंच-महाभूतों में प्रकट साकार प्रपंच, निराकार Recording का साकार में प्राकट्य है। बिना निराकार Recording के साकार में कुछ प्रकट हो ही नहीं सकता। निराकार में अंकित रील होगी, तो साकार फिल्म प्रकट हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। लेकिन यदि प्रकट हुई है, तो रील होना अवश्यम्भावी है। यह रील पहले से ही Recorded होती है।

जगत का प्रपंच जो प्रकट है, उसे हम अपनी पाँचों ज्ञानेद्रियों द्वारा देख, सुन, सूंघ, चख और स्पर्श कर सकते हैं। यह सब निराकार में माया के चौरासी लाख चैनलों में पहले से ही Recorded है। **इनमें से विशिष्ट निराकार Recording साकार में कब, कैसे, कहाँ प्रकट होगी, कोई नहीं जानता; लेकिन यदि प्रकटीकरण होगा तो निराकार से, निराकार Recording का ही होगा।** यह सब निराकार के हाथ में ही है। हम मानव-देह से तद्रूपता के कारण साकार प्राकट्य में ही भटकते रहते हैं। आजीवन साकार की सीमित सीमाओं का विस्तार करते रहते हैं। अति बुद्विजीवियों की समस्त दौड़ सीमित से सीमित तक ही रहती है। जगत का प्रकट प्रपंच खेल है, मात्र अस्थाई मनोरंजन के लिए है। दो प्रकार के प्रकट हैं। एक प्रकट हो गया है और दूसरा हो सकता है। यदि हम दूसरा एपीसोड नहीं देखना चाहते तो हमें रील बन्द करवानी पड़ेगी या परिवर्तित करवानी पड़ेगी। यदि प्राकट्य में कोई change, manipulation, renovation, modification, extention, diversion चाहता हूँ, तो मुझे निराकार से ही operate करना होगा।

यज्ञ-हवन, जप-तप, ध्यान-समाधि, तीर्थ-यात्रा, भजन-कीर्तन उस अदृश्य एवं निराकार Recording के साकार प्रकाट्य के आनन्दमय दर्शन के लिए परम सद्गुरु कृपा से होते हैं। जब हम साकार प्रकाट्य में भ्रमित होते हुए उस प्रपंच के परिवर्तन, परिवर्द्धन, modification के लिए भाग-दौड़ करते हैं, तो दैवीय अदालत की 1008 धाराओं के अन्तर्गत सजाएँ भुगतते हैं। हर पल दैवीय संस्थान अदृश्य एवं सूक्ष्म रूप से हमारी निगरानी करते रहते हैं। मानव-देह लेकर हम अपने हिसाब से इसका प्रयोग नहीं कर सकते। फिर यह साकार का प्रपंच ही हमारे लिए तनाव का हेतु बन जाता है। हर प्रकाट्य 'सद्' है लेकिन उसमें हमारी अपनी भाग-दौड़ **'असद्'** है।

जब हम उस निराकार को, जो 84 लाख Recorded चैनलों या मायिक विधाओं का पति है, उसे साकार अथवा निराकार में मान कर पूर्णतः उसके शरणागत हो जाते हैं; तो हर प्रकट प्रपंच 'सद्' हो जाता है। सद् से मिला असद् (सद्+असद) सदासद् हो जाता है। साकार प्रकाट्य का निराकार हमारी मान्यताओं और शरणागति पर आश्रित नहीं है, लेकिन यदि हम साकार में प्रकट प्रपंच के प्रयोग, परिवर्तन, परिवर्द्धन आदि के लिए अपनी समस्त मान्यताओं और धारणाओं को त्याग कर उसकी शरण में, उसी की कृपा से चले गए, तभी साकार का भोग एवं रसास्वादन सम्भव होगा। सच्चिदानन्द की सम्पूर्ण सृष्टि सच्चिदानन्द ही है। सच्चिदानन्द से जुड़ा हुआ प्रपंच भी सच्चिदानन्द है। इसे भ्रमवश असद् एवं नश्वर कह कर इसकी नश्वरता को ही हम हृष्ट-पुष्ट व तुष्ट करते रहते हैं।

भस्मी, साकार देह का निराकार तत्त्व है, जो पांचो तत्त्वों से अतीत तत्त्वातीत तत्त्व है। 'मैं' और 'भस्मी' दोनों स्वयं में निराकार हैं और साकार देह के हैं। देह होगी तो भस्मी होगी और सारी देहों की भस्मी 'एक' ही होगी। 'मैं' भी सबकी एक ही है और सबकी अपनी एक देह होगी तो अन्य देहें होगीं। इसलिए देह भी एक ही है। एक मिनट की झपकी से मेरी अपनी देह सहित समस्त जगत मेरे लिए समाप्त हो जाता है। जगत का समस्त प्रपंच तब होता है, जब मैं एक देह रूप में होता हूँ। मैं एक हूँ, तो जगत है।

हर युग में प्रभु की सतोगुणी, रजोगुणी व तमोगुणी सभी शक्तियाँ रहती हैं। ये प्रपंच या माया का अपना सन्तुलन है; किसी में सात्विकता अधिक रहती है, किसी में रजोगुणी और किसी में तमोगुणी शक्तियों का वास अधिक रहता है। इनका अधिष्ठाता, निर्देशक, सम्पादक, प्रतिपालक और सन्तुलन कर्ता निराकार परमात्मा है। उसे साकार या निराकार किसी में भी मानकर उसका शरणागत होना परमावश्यक है, तभी साकार रूप से प्रकट प्रपंच के लगाव-अलगाव का रसास्वादन सम्भव होगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(5 से 10 दिसम्बर, 2008)